राग संगीत की उत्पत्ति एवं विकास का विश्लेषणात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल् उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

1998

निर्देशिका
डा० गीता बनर्जी
पूर्व विभागाध्यक्ष
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्त्री
कु० निशा श्रीवास्तव

राग संगीत की उत्पत्ति

एवं

विकास का विश्लेषणात्मक

अध्ययन

1998

निर्देशिका

डा0 गीता बनर्जी

प्रस्तुतकर्त्री

कुमारी निशा श्रीवास्तव

घोषणा-पत्र

मैं **कुमारी निशा श्रीवास्तव** घोषणा करती हूँ कि मेरे द्वारा प्रस्तुत शोध '**राग संगीत की उत्पत्ति एवं विकास का विश्लेष्णात्मक अध्ययन**' विषय पर किया गया शोध मेरे स्वंय के प्रयासों का प्रतिफल है।

इस शोध कार्य को मैंने **डा० गीता बनर्जी** जी के मार्ग दर्शन में पूर्ण किया है।

निशा श्रीवास्तव

(कुमारी निशा श्रीवास्तव)

डा० गीता बनर्जी
पूर्व विभागाध्यक्ष
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **कु० निशा श्रीवास्तव ने 'राग संगीत की उत्पत्ति एवं विकास का विश्लेषणात्मक अध्ययन'** विषय पर यह शोध प्रबन्ध मेरे निर्देशन में डी०फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत किया है।

इस शोध प्रबन्ध की विषय वस्तु पूर्णतः मौलिक एवं शोध-परक है। अतः मैं संस्तुति करती हूँ कि इस शोध प्रबन्ध को परीक्षाणार्थ प्रेषित किया जाय।

११.६.९८.

गीता बनर्जी
(डा० गीता बनर्जी)
निदेशिका

राग संगीत की उत्पत्ति एवं विकास का विश्लेषणात्मक अध्ययन

संलग्न-सूची

बन्दिशें

राग चित्र

16. बसंत

17. मारवा

18. सारंग

19. भीम पलासी

20. पूर्वी

21. काफी

22. विहाग

23. भैरवी

xxx

अनुसंधान की प्रेरणा तथा विषय चयन -

हमारी हिन्दुस्तानी संगीत में रागों को बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। राग के आधार पर ही शास्त्रीय संगीत को स्थिर रूप प्राप्त है। यह संगीत कला का प्रदर्शित करने का तथा भावों का ऐसा माध्यम है, जिसमें भाषा, भाव, स्वर, लय, कल्पना तथा कलाकार की कुशलता इन सभी का सुचारू रूप से सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। अत्यन्त लोकप्रिय तथा सदियो पूर्व प्रचलित राग संगीत की उत्पत्ति तथा विकास के सम्बन्ध मे विद्वानो में मतभेद पाये जाते हैं तथा प्रामाणिक एवं तर्क सम्मत आधार का प्राय. अभाव मिलता है, जिसे इस ग्रन्थ में ऐतिहासिक तथ्यों के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

राग संगीत की उत्पत्ति एवं विकास के विस्तृत रूप को जानने की रुचि सदैव मुझे रही है, इसी को लक्ष्य करके ही संगीत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय की रीडर एवं विभागाध्यक्षा डा० गीता बनर्जी ने मुझे राग तथा उसके शोध कार्य की ओर प्रेरित करते हुए मेरे द्वारा पी०एच०डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत किये जाने वाले शोध प्रबंध का विषय एवं शीर्षक हिन्दुस्तानी संगीत में - **'राग संगीत की उत्पत्ति एवं विकास का विश्लेषणात्मक अध्ययन'** रखने का सुझाव दिया।

इसी शीर्षक से सन 1993 में मैंने राग विषयक शोध कार्य डा० गीता बनर्जी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संगीत विभाग की रीडर एवं विभागाध्यक्ष के मार्ग दर्शन में आरम्भ करके सम्पन्न किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ उसी का संशोधित रूप है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में राग शब्द की उत्पत्ति के अर्थ की व्याख्या विस्तार से की गयी है। प्राचीन ग्रन्थों मे रागों के उल्लेख के साथ राग की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मत प्रस्तुत करके मैंने अपने मत से राग की परिभाषा का व्यापक रूप से समझाकर विस्तृत एवं अधिक स्पष्ट किया है।

मैंने राग की परिभाषा का बदला हुआ रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

योऽयं ध्वनि विशेषस्तु स्वर वर्ण विभूषित:

तथा च जातीनाम् दश (त्रयोदश) लक्षणे. लक्षित:

रञ्जको जनचित्तानां स च राग उदाहृत:

परम्परा से प्रचलित राग परिभाषा में दूसरी पंक्ति को जोड़कर राग संगीत की उत्पत्ति को पूर्ण रूप से स्पष्ट करना, यही मेरा उद्देश्य है। उसके पश्चात, राग उत्पत्ति को बताकर उसके इतिहास का वर्णन है। राग, परिभाषिक अर्थ मे कौन सी शताब्दी में प्रचार में आया तथा इसके श्रेय किस ग्रन्थकार को दिया जाना चाहिए, इस विषय में विभिन्न मतों का समर्थन एवं खण्डन है।

संगीत में राग की उत्पत्ति को (ग्रन्थ के आधार पर) प्रस्तुत किया गया है। उन सभी तत्वों पर प्रकाश डाला गया है, जिनके आधार पर राग विकसित होता है, तथा उसे स्थिर रूप प्राप्त है।

रागों के प्रचार में आने से उनकी संख्या में वृद्धि हुई तथा उनके लक्षणों में भिन्नता पायी गयी, उन्हें क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित रखने के लिए वर्गीकृत करने की आवश्यकता

हुई और इन्हीं राग वर्गीकरण के प्रकारों को दर्शाते हुए मैंने उनकी प्राचीनता को सिद्ध करने का प्रयास किया है। हृदय के भावों को स्वरों द्वारा मूर्त रूप देना और तत्जन्य रसानुभूति का आस्वादन करना और कराना यही राग का मूल उद्देश्य है। इसी को लक्ष्य करके एवं भावपक्ष को महत्व देते हुए राग तथा रस के सम्बन्ध को स्पष्ट किया है।

परम्परा का निर्वाह यही हमारी प्राचीन धरोहर है। प्राचीन परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखन के लिए राग तथा उनके गायन-वादन के समय में नियमितता स्थापित कर विभिन्न मतों को प्रस्तुत किया है। लेकिन समयानुसार उसमें परिवर्तन होना स्वाभाविक है।

इस प्रकार संगीत में राग के प्रत्येक पहलू पर विचार करते हुए राग संगीत की उत्पत्ति एवं विकास का विस्तृत अध्ययन के सम्बन्ध में प्रामाणिक एवं मौलिक मत स्पष्ट करत हुए मैंने उपसंहार किया है।

मैं उन सभी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती हूं, जिनसे प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से मुझे सहायता मिली है। विशेष रूप से मैं अपनी निर्देशिका तथा गुरू डा० गीता बनर्जी की अत्यन्त आभारी हूं, जिन्होंने अपना अमूल्य समय तथा समय-समय पर मार्ग दर्शन कर शोध कार्य पूर्ण करवाने हेतु मुझे प्रोत्साहित किया है।

मैं माननीय पं० रामाश्रय झा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय संगीत विभाग के भूतपूर्व विभागाध्यक्ष रहे हैं, उनके प्रति भी मैं कृतज्ञ हूं, जिन्होंने संगीत सम्बन्धी संस्कृत ग्रन्थों

की जटिल टिप्पणियो से मुझे अवगत कराते हुए अपना परामर्श एवं प्रोत्साहन दिया तथा हर संभव सहायता दी।

अंत में मैं अपने माता-पिता तथा बहनों की भी आभारी हूं कि उन्होंने मुझे संगीत शास्त्र के अध्ययन के लिए प्रेरित किया।

कु0 **निशा श्रीवास्तव**

प्रथम अध्याय

राग संगीत का अर्थ और उसकी व्याख्या एतिहासिक परिपेक्ष मे तथा विभिन्न ग्रन्थो के आधार पर राग संगीत का अर्थ निर्धारण और उसमे अन्तर्हित सूक्ष्म विशेषताओं का अध्ययन।

राग की उत्पत्ति तथा विकास पर अधिक या विस्तृत विचार करने से पूर्व हमे राग सगीत की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे जानना आवश्यक है। सगीत म राग शब्द मूलत संस्कृत भाषा का है। इसकी उत्पत्ति रज्जभावे धम इस प्रकार हुई है। इस उत्पत्ति स स्पष्ट होता है कि रंजकता से ही राग है, किन्तु सगीत म राग के कई अर्थ है। गीतं के क्षेत्र में जिस जनचित्त रजक ध्वनि विशेष की प्रतिष्ठा है, उस ध्वनि विशेष के वाचक 'राग' शब्द का अविर्भाव रज्ज धातु से होता है। रज्ज रागे - रंगने के अर्थ मे रज्ज धातु का प्रयोग बताया गया है। इसी धातु म धम् प्रत्यय जुड़कर सगीत में राग शब्द बनता है। जिसका अर्थ है 'रंग'। रंगना क्रिया और 'राग' या रग सज्जा (नाम पद) की यह मूल अर्थ भावना बडी महत्वपूर्ण है। 'जनचित्त रजन' वाह्य रूप से 'अंगराग' के प्रयोग से वस्तुतः मनुष्य प्राणी के चित्त मन अथवा शरीर को किसी एक रंग में रंगा ही तो जाता है। संगीत का 'राग' भी हमें अपने रंग मे रंग लेता है। किसी एक तत्व मे रंग जाना ही अलौकिक आनन्द की स्थिति है, जैसे भक्ति के क्षेत्र मे श्याम रंग मे रग जाना ही भक्त का चरम प्राप्य है।

---

1. निबद्ध सगीत से उद्धृत निबन्ध, पृ0 257

मंतग की वृहदेशी मे सर्वप्रथम राग शब्द परिभाषिक रूप से प्रयुक्त हुआ है। मतगानुसार राग इस प्रकार है -

स्वरवर्ण विशेषेण ध्वनिभेदेन वा पुन

रज्यत ये य कश्चित् सराग. सभत सताम्[1]

अर्थात विशिष्ट स्वर वर्ण (मान क्रिया) से अथवा ध्वाने भद के द्वारा जो जन रजन मे समर्थ है वह राग है।

या

योऽसौ ध्वनि विशेषस्तु स्वरवर्ण विभूषित:

रञ्जको जन चित्ताना स च राग उदाहृत[2]।

अर्थात षडज इत्यादि स्वरा तथा स्थायी इत्यादि वर्णो से विभूषित एसी ध्वनि की रचना जिससे मनुष्य के मन का रजन होता है। उसे मतग ने राग कहा है।

अन्य विद्वानों ने भी गीत के राग की परिभाषा को भिन्न अर्थो में प्रस्तुत किया है। कल्लिनाथ ने कश्यप मत से राग परिभाषा को स्वीकार किया है। जो राग स्थायी, अरोही, अवरोही और संचारी चारों वर्णो से शोभित होता हो, वह सब कछ (वर्ण चतुष्टम्) जहा दिखायी देता हो वो राग है।

---

1. वृहदेशी पृ0 81, श्लोक 280
2. वृहदेशी पृ0 81, श्लोक 281

कल्लिनाथ का मत है कि -

चतुर्णामपि वर्णाना यो राग. शोभनो भवत्

स सर्वो दृश्यते येषु तेन रागा इति स्मृता.[1]।

रंजन के कारण ही राग की सज्ञा 'राग' है, यही राग की उत्पत्ति है -

इत्येव राग शब्दस्य व्युत्पत्ति रभिधीयत

रजनाज्यायते रागो व्युत्पति समुदाहत ।[2]

राग शब्द अश्वकर्ण जैसे शब्दों के समान रूढ मन्थ इत्यादि शब्दो क समान यौगिक अथवा पंकज शब्द के समान योग रूढ़ है -

अश्वकर्णादिवद्रूढ़ा यौगिको वापि मन्थवत्

योग रूढ़ोऽथवा रागो ज्ञेयः पङ्कजशब्दवत्।[3]

राग शब्द के रूढ़त्व के लिए कल्लिनाथ का कथन है कि यदि किसी व्यक्ति को कोई राग नहीं भाता तो वह राग उसके लिए रजक नहीं, परन्तु उस अरंजक राग को भी रूढी के कारण राग ही कहा जाता है।

---

1. संगीत रत्नाकर, पृष्ठ-7, अडयार स0 कश्यप मत से कल्लि टीका से उद्धृत ।
2. वृहदेशी पृ0 81, श्लोक 283
3. वृहदेशी पृ0 82, श्लोक 284

संगीत समयसार में राग की परिभाषा इस प्रकार बतायी गयी है -

स्वर वर्ण विशिष्टेन ध्वनि भेदन वा पन

रज्यते येन सच्चितंस रागः सम्मत सताम्।[1]

पण्डित व्यकटमुखी के अनुसार - जो स्वर प्रबन्ध श्रोताओ के मन का रजन करते है, उन्हें पण्डित व्यकटमुखी ने राग कहा है -

रञ्जयन्ति मनासीति रागा [2]

पण्डित अहोबल ने रजक स्वर संदर्भ को राग कहा है -

रञ्जक. स्वर सदर्भो राग इत्यभिधीयते।[3]

कुछ मध्यकालीन ग्रन्थकारों ने भी राग की परिभाषा का बताया है। मध्य कालीन ग्रन्थकारों में श्री कठ ने राग की उत्पत्ति तथा उसकी परिभाषा को बताया है -

सुरासुराणां नरकिन्न राणां निरतर मानसरञ्जनेन

रागो भवत् पऽ. कण शब्द तुल्यो व्युत्पत्ति मादाय च योगरूढ़

रम्यध्वनि विशेषस्तु सर्व वर्ण विराजित.

स रागो गीयते तज्जेजंगन्मानस रञ्जक.[4]

---

1 संगीत समयसार प्रथम अध्याय, पृ0 19

2. चतुर्दण्डिप्रकाशिका राग प्रकरण पृ0 56

3. संगीत पारिजात पृ0 97।

4 रस कोमुदी, रा0अ0 पृ0 13।

सगीत मे राग की प्राचीन परिभाषा को प0 भातखण्ड जी ने 'याऽय ध्वनि विशषस्तु' को मानते हुए राग परिभाषा दी है।

प्राचीन तथा आधुनिक सभी ग्रन्थकारों ने राग की परिभाषा को प्राय एक से ही माना है। जिसके अनुसार ध्वनि की ऐसी विशिष्ट रचना जो स्वर वर्ण से विभूषित हो, राग कहलाती है।

वैसे इस परिभाषा से यह ज्ञात होता है कि स्वर वर्ण से विभूषित ध्वनि की विशिष्ट रचना राग है, किन्तु ध्वनि की स्वरवर्ण से विभूषित रचना को गीत भी कहा जा सकता है।

गीत से तात्पर्य यह साधारण अर्थ में गीत है[1] जो गाया जा सकता है, वह गीत है। यहां गीत का सम्बन्ध रत्नाकरोक्त प्रबन्धाध्याय में वर्णित गीत भेद से कथमपि नहीं है। यहां रंजक स्वर संदर्भ को गीत कहा है। रंजकः स्वर संदर्भः गीतमित्याभिधीयते[1] तथा धुन भी (धुन वाद्यों के संदर्भ में तथा गीत के बोल न होने पर गायन के संदर्भ में भी)। अतः उपर्युक्त राग की परिभाषा में प्रयुक्त 'ध्वनि की विशिष्ट रचना' से तात्पर्य तो स्पष्ट नहीं हो पाता। वैसे ध्वनि की विशिष्ट रचना का तात्पर्य समझने के लिए कल्लिनायोक्त जिस वचन का सहारा या आधार लिया जा सकता है, जिसके अनुसार कल्लिनाथ गीत तथा राग से भेद बताते हैं कि 'नवनु' गीत रागियोः को भेद इति चेत्, उच्यते दशलक्षणलक्षितं गीतं रागशब्देनाभिधीयते' अर्थात

---

1. संगीत रत्नाकर प्रबन्ध (पृ0 203 श्लोक)

दस लक्षणों से लक्षित गीत राग है।

संगीत में राग में जाति के दान लक्षण ग्रह अंश न्यासादि प्रयुप्त होने का तो कल्लिवाथ के वचनों से स्पष्ट होता है। रागों तथा जातियों के रूप को देखते हुए यह भी ज्ञात होता है कि जाति के दस (त्रयोदश शारंगदेव के अनुसार) लक्षणों का भी राग में होना अनिवार्य है। अतः राग परिभाषा का बदला हुआ रूप ग्रन्थकारा के द्वारा इस प्रकार होना चाहिए -

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णा विभूषितः

तथा च जातीनाम् ग्रहां शादि दश (त्रयोदश) लक्षणैः लक्षित.

रञ्जको जनचित्तानां स च राग उदाहत. [1]

अर्थात ध्वनि की ऐसी रचना जो स्वर वर्ण के साथ जाति के ग्रहांशादि दस (त्रयोदश) लक्षणों से लक्षित हो तथा जो लोगों के चित्त का अनुरंजन करती हो वही राग हैं।

'राग' शब्द कई बार नाट्यशाला में कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, रंजकता के अर्थ में राग शब्द का प्रयोग नाट्यशास्त्र में इस प्रकार बताया गया है -

---

1. संगीत रत्नाकर अ0 पृ0 32, व्यक्तिटीका ।

यथा वर्णाद्वते चित्रं न शोभोत्पादंन भवेत्

एवमेव विना गानं नाट्यं रागं न गच्छति।[1]

अर्थात जिस प्रकार वर्णों (रागों) के बिना चित्र की शोभा में वृद्ध नहीं होती, उसी प्रकार संगीत विहीन नाट्य रंजकता को प्राप्त नहीं होता।

कालिदास चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (शासनकाल 385-413 ई0स0) के दरबार के नवरत्नों में से एक थे। संगीत का प्रचार प्रचार कालिदास के समय में था। 'संगीत शाला में स्वर, वर्ण, गीति मूर्छना तान राग वस्तु तथा अभिनय की विधिवत शिक्षा दी जाती थी, संगीत के संदर्भ में राग शब्द का उल्लेख कालिदास की कृतियों में एकाधिक बार उपलब्ध है। राग गायन का प्रयोग नाट्य की संधियों में प्रयोग किया श्लोक से स्पष्टतः अभिव्यक्ति है -

तौ संधिषु व्यजितवृत्तिभेदं रसान्तरेषु प्रतिबद्ध रागम्

अपश्यता मप्सरसां मुहूर्तं प्रयोग माघ ललितां गहारम्[2]

इस श्लोक से तात्पर्य कालिदास का अभिप्राय प्रतीत होता है कि शिव पार्वती के विवाद के अनन्तर जो नाट्य प्रयोग अप्सराओं के द्वारा प्रस्तुत किया गया था, वह ललित अंगहारों से सम्पन्न था, उसकी संधि स्थानों पर विविध नाट्य वृत्तियों के साथ ही विभिन्न रसों के अनुकूल रागों का प्रयोग किया जा रहा था।

---

1. नाट्यशाला अ0 32, पृ0 389, श्लोक 425

2. शाकुन्तल अध्याय-5

3. कुमार संभव - 7/91

राग शब्द का पारिभाषिक अर्थो में प्रयोग अभिज्ञान शाकुंतल में अनेक बार हुआ है।

नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार ग्रीष्म ऋतु के अनुकूल गीत गाने का नटी को कहता है। सभा में बैठे हुए श्रोताओं के चित्त को आनन्दमग्न करने के लिए गीत गाने का प्रयोजन था। सूत्रधार जब नटी का गान सुनता है, तब वह नटी से कहता है -

आर्य । साधुगीतम् अहोराग बद्धचित्त वृत्ति रालिखित इव सर्वतो रंगा।

अर्थात आर्य। बहुत सुन्दर गीत गाया। तुम्हारे रागयुक्त इस मनोहर गीत से आकृष्ट चित्रवाला यह रंगास्थलवर्ती दर्शक समाज चित्रलिखित सा प्रतीत हो रहा है। यहां राग शब्द का प्रयोग रूढ़ार्थो में कहा जा सकता है।

यह तो सत्य ही है कि कालिदास की कृतियों में राग रूढ़ार्थो में प्रयुक्त हुआ है, जिससे स्पष्ट होता है कि कालिदास के समय में राग परम्परा प्रचलित थी, किन्तु राग शब्द का कई अर्थों में कालिदास ने प्रयोग किया है।

शकुन्तला के अधरों का वर्णन करते समय दुष्यन्त ने कहा है -

ऊधरः किसलय रागः कोमल विटपानु कारिणी बाहू

---

1. शाकुंतलम् प्रथम अंक

2. अभिज्ञान शाकुंतलम् प्रथम अंक पृ0 22, श्लोक 19

अर्थात् इसका अधर किसलय के समान वर्ण (रंग) का है तथा दोनों कोमल भुजाएं शाखाओं की अनुकारिणी हैं। यहां राग शब्द का अर्थ रंग के अर्थ में प्रयुक्त प्रतीत होता है। नारदीय शिक्षा में तो राग शब्द का प्रयोग चार बार प्रयुक्त हुआ है। तीन बार द्वितीय कंडिका में तथा एक बार चतुर्थी कंडिका के प्रथम प्रपादक के अन्तर्गत।

नारद ने तान, राग स्वर ग्राम मूर्च्छना के लक्षण बतायें हैं : -

तान राग स्वर ग्राम मूर्च्छनानां तु लक्षणम्

पवित्रं पावनं पुण्यं नारदेन प्रकीर्तितम्।[1]

नारद के अनुसार तान राग स्वर ग्राम तथा मूर्च्छना जो कि स्वर मण्डल का निर्माण करते हैं, पवित्र तथा पावन है। यहां पर 'राग' रूढ़ अर्थ में प्रयुक्त न होकर स्वर के अर्थ में है।

प्राचीन ग्रन्थों में रागों का उल्लेख देखने से यह तो ज्ञात हो जाता है कि राग परम्परा का आरम्भ पौराणिक समय तक हो चुका था और इस समय तक राग अपनी आरम्भिक अवस्था में था।

रागों के विकास क्रम को देखते हुए जब हम संगीत में राग के आरम्भ की खोज करते हैं तो हम पाते हैं, रागों के विकास में ग्राम रागों का विकास प्रथम

---

1. नाट्यशास्त्र द्वि0 कंडिका श्लोक 2, पृ0 15

हुआ। इन्हें ग्राम राग क्यों बताया या कहा गया? इन्हें केवल राग के नाम से ही क्यों सम्बोधित नहीं किया ? इन प्रश्नों के जवाब में यही कहा जा सकता है कि ये ग्राम राग प्राचीन है तथा तत्कालीन समय में जाति गायन का प्रचार था। जातियों का सम्बन्ध ग्राम तथा मूर्च्छना से है तथा इन्हीं जातियों से ग्राम रागों की उत्पत्ति भी कही गयी यथा -

जाति सम्भूत तव्वाद् ग्राम रागाणाम्

अर्थात् ग्रामों से सम्बन्धित होने के कारण इन्हें ग्राम राग कहा गया।

पण्डित भातखण्डे जी का कथन है कि जिन रागों की उत्पत्ति मूर्च्छनाओ से होती है, उन्हें ग्राम राग कहा जाना उचित है। अतः शार्ङ्गदेव के आधार से तथा उपर्युक्त विद्वानों के कथन से यह स्पष्ट होता है कि ग्राम राग तथा राग एक ही है, जिसका विकास ई०स० की आरम्भिक शताब्दी में आरम्भ हुआ।

हिन्दुस्तानी संगीत में राग गायन (वादन संगीत) का आधार है। जब हम इतिहास के पन्ने को रागों की उत्पत्ति का इतिहास जानने के लिए उलटते हैं तो हम पाते हैं कि बहुत से ऐसे राग हैं, जिनकी उत्पत्ति प्रादेशिक धुनों तथा वन्य लोक धुनों से हुई है।

हिन्दुस्तानी संगीत का ढांचा कोई ऐसी इमारत की तरह नहीं है, जो एक

---

1. बृहद्देशी वृत्ति, श्लोक 321, भरत के अनुसार ।
2. रागों के विषय में विवेचन हेतु दृष्टव्य द्वितीय अध्याय

वार निर्मित हो गयी सो हो गयी। संगीत हमेशा से ही परिवर्तनशील नहा है तथा इसमें निरन्तर परिवर्तन अपेक्षित है। ग्रन्थकारों ने अपने ग्रन्थों में अपने समय के संगीत को या पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों के ग्रन्थों के आधार से अपने ग्रन्थों की रचना की है, जिससे हमें प्राचीन इतिहास का ज्ञान होता है। बहुत से ऐसे राग हैं, जिनका विकास लोक धुनों से हुआ है।

प्रत्येक प्रदेश के गांवों में भी संगीत का प्रचार रहता है। लोक कवियों पर आधारित रंजक ऐसी धुनों का विस्तार होता है तथा कालान्तर में उन्हें राग के नियमों में बांधकर राग की संज्ञा दे दी जाती है ऐसा कहा जा सकता है।

उदाहरणार्थ जोड़ी राग की उत्पत्ति गड़ेरिया या किसानों द्वारा गायी जाने वाली धुन से कहा गया है। मूलतः यह धुन तुरूष्क लोगों में प्रचलित थी, जो वहां से भारत आये थे तथा भारतीयों को यह धुन छोड़ गये।

इसी प्रकार शक राग एक धुन थी, जो मध्य एशिया के वन्द लोक धुनों में से एक थी प्राचीन राग पुलिंग भी धुन था जो पुलिंद नामक लोगों में प्रचलित धुन थी।

---

1. वृहदेशी भाषा रागों का वर्णन ।

गुर्जरी राग की उत्पत्ति को भी विदेशी धुनों से सम्बन्धित कहा गया है, जिसकी उत्पत्ति सम्भवतः गुर्जर देश की ग्रामीण जनजाति में गाये जाने वाली धुन से हुई है। ये जाति मध्य ऐशिया के मरूस्थलीय प्रदेश में रहने वाली थी। गुर्जर लोग भारत के शक तथा यवनों के बाद आये थे।[1]

'मिथिला के राजा नान्यदेव ने भी गुर्जरी को एक प्रादेशिक धुन कहा है।

हमारे आधुनिक संगीत में भी इस प्रकार धुनों को ग्रहण किया जाता है तथा उसे धुन या राग के नामों से सम्बोधित किया जाता है, जैसे पूर्वी धुन, पहाड़ी, पीलू आदि रागों की उत्पत्ति इसी प्रकार की कही जा सकती है। लोक प्रचलित धुनें किसी व्यक्ति विशेष की कृति नहीं होती। जिन धुनों में कोई सामान्य धर्म पाया गया उन्हें एक जाति के अन्तर्गत रखकर कालांतर में उनमें राग के गुण देखकर राग की संज्ञा प्रदान की जाती है।

भारतीय परम्परा यह भी रही है कि जब हम किसी विषय की खोज करते हैं तो अपनी उत्पत्ति को देवी देवताओं से जोड़ देते हैं, संगीत का जीव 'राग' के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की धारणायें प्रचलित हैं। नारदकृत संगीत मकरन्द तथा पं० दामोदर कृत संगीत दर्पण जो कि 1625 के आस पास लिखा गया में राग की

---

1. संगीत रत्नाकर भाग-2, रा०अ०पृ० 135, कल्लि टीका।

उत्पत्ति का सम्बन्ध शिव तथा शक्ति से जोड़ा गया है -

शिव शक्ति सभायोगाद्रागाणा सम्भवे भवते्

पचास्यात् पन्च रागाः स्युः षष्ठस्तु गिरिजामुखात्[1]

शिव तथा शक्ति इन दोनों के योग से ही राग उत्पन्न हुए। महादेव के पांच मुखों से पांच राग तथा छठां राग पावर्तती के मुख से निकली। शिव से जब नाट्य (नृत्य) का आरम्भ किया तो उनके मुख से भी राग, बामदेव मुख से बसंत, अघोर मुख से भैरव, तत्पुरूष मुख से पंचम, ई शान मुख से मेघ, नृत्य के प्रसंग में पार्वती के मुख से नट्टनारायण राग उत्पन्न हुआ।

कुछ रागों के विषय में राग दर्पण में बताया गया है कि ये राग किसके द्वारा गाये जाते थे, जैसे -

शंकरा भरण को सर्वप्रथम महोदय ने गाया था। लंका ध्वांने को पहले-पहले हनुमान ने गाया था। खम्भावनी को पहले भरत ने गाया था, सोरठ, मल्हार और केदार को मिला देने से नाग धुन हो जाता है, नाग लोक में यह प्रचलित हुआ।

रागों की उत्पत्ति के विषय में पन्द्रहवीं शताब्दी के शुभकर विरचित संगीत दामोदर में है। इस ग्रन्थकार ने रागों को कृष्ण तथा गोपियों से सम्बन्ध बताया है।

---

1. संगीत दर्पण रा0आ0 पृ0 73

संगीत दामोदर के अनुसार -

गोपीभिर्गीत मारब्ध मैकेकं कृष्ण सानिधौ

तेन जातानि रागाणां सहस्त्राणि च षोडव:

रागेषु तेषु षटनिशद्रागा: जगति दिश्रुता

कालक्रमेण तथापि ह्रास एवं तु दुष्यते।[1]

अर्थात सोलह हजार रागों की रचना गोपियों तथा कृष्ण के द्वारा हुई है। कालक्रम से इन रागों का ह्रास हुआ तथा प्रचार में 36 राग रह गये।

xxx

---

1. संगीत दामोदर, पृ0 34

द्वितीय अध्याय

राग संगीत की उत्पत्ति एवं क्रमिक विकास ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में।

संगीत में राग की उत्पत्ति कब और कैसे हुई? और राग गायन कब से प्रचलित हुआ, तथा इसे किसने प्रचलित किया? यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है। कुछ विद्वान स्पष्ट मत प्रकट करते हुए कहते हैं कि राग का आरम्भ कब से हुआ तथा दक्षिण भारतीय संगीत के शब्दकोश में कहा गया है कि राग शब्द कालिदास के समय से प्रचार में आया। इस प्रकार सदियों से प्रचलित राग परम्परा की उत्पत्ति के विषय में मतभेद दूर करने के लिए कश्यप नामक ग्रंथकार के नाम का आश्रय लेना उचित प्रतीत होता है।

कश्यप के राग वर्णन की चर्चा करने वाले मंतग, नान्येव, अभिनव, शारंगदेव, कल्लिनाथ, सिंहभूपाल कुम्भ आदि ग्रन्थकार है। अर्थात् प्राचीन ग्रन्थकारों ने कश्यप के राग वर्णन को मानते हुए उसे अपने ग्रंथों में स्थान दिया है।

कश्यप के रागों का सर्वप्रथम उल्लेख मंतग की वृहद्देशी से होता है। गीतियों का वर्णन करते हुए मंतग ने कश्यप की राग परिभाषा को इस प्रकार बताया है -

चतुर्णमपि वर्णानां योगा रागः + शोभना।[1]
स स्वां दृष्यते येन तेन रागा इति स्मृताः।[2]

---

1. डिक्शनरी आफ साउथ म्यूजिक पेज 344
2. वृहद्देशी पृ0 94

कश्यप की इस राग परिभाषा से सिद्ध होता है कि राग पारिभाषिक रूप मे चौथी, पाचवी शताब्दी मे प्रचार मे आया। कौशिक राग का उल्लख रामायण, नाट्यशास्त्र, नारदीय शिक्षा तथा कालिदास कृत कुमार संभव में हुआ है, जो इस निष्कर्ष की पुष्टि करता है कि ई0 5 तक इस राग का सर्वात्रिक प्रचार था।

मतंग की वृहद्देशी में कश्यप का मतोल्लेख कौशिक, मालव कौशिक, तथा नर्त आदि रागो के सम्बन्ध मे हुआ है। कश्यप के अनुसार राग, अंश, न्यास, उपन्यास अल्पत्व आदि दश लक्षणो से लक्षित है।

कश्यप के शब्दो में -

क्वचिंदशः क्वचिन्दासः षाडवौडदिते क्वचित्

अल्पत्व च बहुत्वं च ग्रहापन्यास सयुतम्

मन्द्रतारो तथा ज्ञात्वा योजनीय मनिषिभिः

ग्रामरागाः प्रयोक्तव्या विधिवद् दशरूपके।[1]

राग प्रकरण में नान्य देव ने अधिक प्राय कश्यप तथा मतंग को उदधृत किया। नान्यदेव के विवेचन में कश्यप का संदर्भ इस प्रकार है -

अस्माभिः कश्यपादेवः निगद्यते[2]

---

1 वृहद्देशी पृ0 103-104

2 भरत भाष्य पृ0 237, राग वर्णन, प्रकरण तृतीय श्लोक 8।

यद्यपि कुछ रागो के नामों का उल्लेख कश्यपपूर्व ग्रन्थो म हुआ है। किन्तु उसका स्वरूप जानने क लिए उन ग्रन्थों में राग का कोई वर्णन नहीं, कवल कुछ राग नामो क आधार पर राग का आरम्भ रामायण काल, या भारतादि ग्रन्थकारो के समय से हुआ। यह सिद्ध करना उचित प्रतीत नहीं होता, हां इतना अवश्य ही कहा जा सकता है कि नाट्य शास्त्र जैसे विशद ग्रन्थ मे राग के विकास क बीज अन्तार्निहित थे, जिनका प्रस्फुटन क्रमशः हुआ तथा कश्यप के समय तक यह राग प्रणाली स्थिर होकर उसे एक नया पारिभाषिक रूप प्राप्त हुआ। रागों का उल्लख प्राचीन ग्रन्था में हुआ, किन्तु रागों के उल्लेख से यह नहीं कहा जा सकता कि रागो का स्वरूप उस समय केसा था। कश्यप का ग्रन्थ अनुपलब्ध होने से रागों का स्वरूप जानने के लिए वृहद्देशी पर निर्भर करना पड़ता है।

वृहद्देशी की रचना 7-8 ई0 में हुई ऐसा प्रतीत होता है। मतंग के शब्दों मे राजमार्ग के जिस रूप का वर्णन भारतादि ग्रन्थकारों ने नहीं किया, उसे वे निम्न प्रस्तुत करते हैं : -

राग मार्गस्य यदरूप यन्नोम्तं भरतादिभि

निरूप्यते तदस्माभिर्लक्ष्य संयुतम्।[1]

इसके पश्चात मतंग के राग परिभाषा को दिया है। राग के सामान्य तथा विशेष इस प्रकार के दो लक्षण बतातेहुए मतंग ने कहा है -

---

1. वृहद्देशी पृ0 81, श्लोक 279

2. वृहद्देशी पृ0 81, श्लोक 282-283

सामान्यं च विशेषश्च लक्षणं द्विविधं मतम्

चतुर्विधं तु सामान्यं विशेषश्चांश कादिकम्

इत्येवं रागशब्दस्य व्युत्पत्तिरभिधीयते

रञ्जनाज्जायते रागो व्युत्पतिः समुदाहता।[1]

प्राप्त वृहद्देशी में मंतग ने शुद्ध भिन्न, गौड़ राग तथा साधारणी गीते के अन्तर्गत 32 रागों के नाम तथा वर्णन दिया है।[2]

उपर्युक्त 32 रागों के अतिरिक्त वृहद्देशी में अन्य और राग थे, ऐसा प्रतीत होता है, इन रागों का वर्णन नान्य ने भरतभाष्य में किया है। किन्तु प्राप्त वृहद्देशी में नान्य द्वारा बताये हुए रागों का वर्णन नहीं है।[3]

रागों के इतिहास की कड़ी में एक नाम भरतभाष्यम् का नाम भी उल्लेखनीय है - ।

भरत भाष्यम् का कर्ता नान्यभूपाल मिथिला (तिर्हूत) का नरेश था। नामदेव ने मिथिला का शासन ई०सं० 1097 से 1133 तक किया। भरत भाष्यम् में भरतोक्त संगीत का विवेचन विस्तार से दिया गया है।

राग प्रकरण में नामदेव से अधिक प्राय कश्यप तथा मतंग को उद्धृत करते

---

1. वृहदेशी पृ० 81, श्लोक 279

2. वृहदेशी पृ० 81, श्लोक 282-283

3 मंतग के रागों के नाम परिशिष्ट के अन्तर्गत देखा जा सकता है।

हुए कश्यप के सन्दर्भ को इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

अस्माभिस्तु कश्यपादि भी रागा अभ्यनुज्ञाता

भरतभाष्य में रागों का वर्णन किया गया है, जिसमें ग्राम राग, मूल राग, उपराग, भाषा, विभाषा, अंतरभाषा क्रियांग आदि रंज वर्गों की व्याख्या की गयी है। ऐसा प्रतीत होता है कि शारंगदेव के रागों का वर्गीकरण जिन दस भागों में किया है, उसका आधार नान्यदेव द्वारा बताये हुए राग वर्ग होवें। कुछ रागों के वर्णन में उस राग की उत्पत्ति किस जाति से हुई। यह भी बताया गया है राग में प्रयुक्त होने वाले विशेष स्वर कम्पित स्वर तथा गमकों का प्रयोग किया गया है, प्रत्येक राग वर्णन के पश्चात् नान्यदेव के आलाप तथा रूपकम् को प्रस्तुत किया है। इस प्रकार भरत भाष्य के उपलब्ध संस्करण में 52 रागों का वर्णन है।[1]

प्रसिद्ध विश्वज्ञानकोषा जिसे मानसोल्लास (या अभिलषितार्थी चिन्तामणि) कहते हैं में संगीत के दो अध्याय है। इस ग्रंथ को राजा सोमेश्वर द्वारा रचा गया है। सोमेश्वर विक्रमादित्य के पुत्र थे -

विक्रमादित्य पुत्रेण सोमभूपके भाषितः।[2]

सोमेश्वर का शासनकाल 210 संवत् 1049 से 1058-59 अर्थात् सन् 1127 ई0 से 1138 तक रहा और मानसोल्लास की रचना उन्होंने शक संवत् 1051

---

1. द्रष्टव्य परिशिष्ट

2. मानसोल्लास पृ0 171, श्लोक 1493, विंशति 4, अ0 16

अर्थात्त सन ।।29 ई0 में थी। मानसोल्लास में पांच विर्शति है। प्रत्येक विशति में बीस अध्याय हैं -

रागों का वर्णन चतुर्थी विज्ञप्ति के सोलहवें विनोद (अध्याय) में किया गया है। अनेक स्वरों, गमक, नाद तथा अनेक प्रकार के अक्षर, राग तथा ताल से पूर्ण गीत सुनने का राजा के लिए आदेश किया है, किन्तु इसमें राग वर्गीकरण की पद्वति का कोई वर्णन नहीं है -

नाना प्रबन्ध रचितं नानारागविनिर्मितम्

नानाताल समायुक्तं गीत माकर्णयेष्नृपं।[1]

सोमेश्वर ने अवसर के अनुसार गाये जाने वाले गीतों का वर्णन किया है। विवाह के समय मंगलपूर्ण गीत गाने का आदेश दिया है, उसी प्रकार प्रौढ़ जनों के प्रिय गीत का उल्लेख हुआ है -

सोमेश्वर ने 5 शुद्ध, 5 भिन्न, 3 गौड़, 8 राग तथा 7 साधारण राग कहे हैं। मान सोल्लास में इन रागों के नामों का ही उल्लेख होता है।[2]

सोमेश्वर का कथन है किन सब रागों का प्रयोग मुनियों के द्वारा होता था, इन रागों का प्रयोग विनोद के लिए नहीं होता था, अतः इनका वर्णन सोमेश्वर

---

1. मान सोल्लास पृ0 12 श्लोक 171, विशतिप, अध्याय-16

2. मान सोल्लास पृ0 12 श्लोक 114, विशति 4, अध्याय-16

ने नहीं किया -

नामतो गदिता सर्व रागा मुनि समीरेता

विनोद नोपयुज्यते तस्माल्लक्ष्म न लक्ष्यते

विनोद ये प्रयुज्यत्ते तेषां लक्षणमुच्यते।[1]

रागों के विषय में वर्णन करने वाला अन्य ग्रन्थ सोमराज कृत संगीत रत्नावली है।

संगीत रत्नावली की रचना सोमराज द्वारा सन् 1180 ई0 में हुई। नौ भागों में विभक्त चतुर्थ अध्याय में बयालीस रागों का वर्णन तथा पंचम अध्याय में देवी रागों का वर्णन है[2] सोमराज के राग वर्णन का नमूना इस प्रकार है : -

वंसती गूर्जरी चैव देवशाखा च तोडिका, पंचमश्च धनासीच रागो गौडश्च सप्तम.

षड्यादि स्वरयोगः स्यात्पदादौ च स्वराक्षरम् यत्र श्री सोमराजेन सोम कीर्ति रस कोर्तितः

अत्र चञ्चप्पुटस्तालो नान्दीनाम तथापरः। सिद्धनन्दन संज्ञानु प्रोक्तः प्रतापशेखरः

जयमंगल इत्यनः सोमवल्लभ एव च, सोमकीर्तिः क्रमपैवे वसन्ताः दिषु सप्तसु

सोमकीर्ति प्रबन्धोऽयं गीयमानो यथाविधिनेतुः श्रोतश्च गातुश्च जायन्ते सर्वसम्वदः[2]

बारहवीं शताब्दी तक आते-आते राग का तथा उसमें प्रयुक्त होने वाले प्रबन्धों का पर्याप्त विकास हो चुका था। संगीत कला के इतिहास की दृष्टि से जयदेव

---

1. भरत कोश से उदधृत

2. भरत कोश से उदधृत

कृत गोविन्द अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है। इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि म जो गीत लिखे गये हैं, उनके रागो तथा तालों को संक्षिप्त रूप से शास्त्रीय शब्दो मे प्रकट किया गया है और उन नृत्यों का भी उल्लेख दिया गया है, जिनके साथ उनको गाया जाता था। गीत गोविन्द की रचना बारह सर्गों में हुई है तथा इनमें रचित पदों में तेरह रागो का प्रयोग है। मालव गौड़, गुर्जरी, बसन्त, रामकली, कर्नाट, देशाण्य, गौडकरी मालव, भैरवी, वराडी, विभास का प्रयोग हुआ है। इन गीतो मे राधा कृष्ण के प्रेम सम्बन्धी वर्णन है, जिन्हें राग तथा ताल में बद्ध करके गाया जाता था। उदाहरण के लिए जयदव का पद इस प्रकार है : -

नितम्बिनी चुम्बित वस्त्र पदमः शुकद्युतिः कुण्डलवान् किरीटी,
संगीत शालां प्रविशन् प्रदोषे मालाधरो मालव रागराजः।[1]

तेरहवीं शताब्दी के आरम्भिक काल में (1210 ई0 1247 ई0 सं0) में शारंगदेव का संगीत रत्नाकर ग्रन्थ लिखा गया जो रागों की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। पडित शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर की रचना 7 अध्यायों में की है। प्रथम चार अध्याय जो राग की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पडित शारगदेव ने संगीत रत्नाकर की यद्यपि 7 अध्यायों में रचना की है। प्रथम स्वराध्याय, द्वितीय राग विवेकाध्याय, तृतीय प्रकीर्णकाध्याय, चतुर्थ प्रबन्धाध्याय, पंचम तालाध्याय, षष्ठ वाद्याध्याय तथा सप्तम नर्तनाध्याय, प्रथम चार अध्यायों की संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है, जो कि राग की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है : -

---

1. दृष्टव्य गीत गोविन्द, प्रथम प्रबन्ध ।

प्रथम स्वराध्याय -

प्रदार्थ संग्रह प्रकरण -

ग्रन्थ का परिचय -

प्राचीन ग्रन्थकार, संगीत लक्षणादि विषय प्रवश-प्रतिज्ञा - वस्तु संग्रह पूरे ग्रन्थ की विषय वस्तु का अध्यायों के क्रमानुसार संग्रह या सक्षेप में निर्देश ।

2 पिण्डोत्पत्ति प्रकरण

3. नाद, स्थान, श्रुति, स्वर, जाति, कुल देवत ऋषि, छन्द, रस प्रकरण। नादोत्पत्ति और उसके भेद, नाद के 22 भद, सारणा चतुष्ट्य द्वारा 22 श्रुतिया की स्थिति। द्वादश विकृत स्वर, सप्त स्वरों के मयुरादि पशु पक्षियों से सम्बन्ध, स्वरों के वादी इत्यादि चार भेद।

3. ग्राम मूर्च्छना क्रम तान प्रकरण -

ग्राम का लक्षण और उसके भेद, मूर्छना और उसके भेद, चतुर्विद्य मूर्छना, तान निरूपण. तानों की संख्या, प्रस्तार, नष्टोष्टि विधि, दोनों ग्रामों की तानो के नाम तान नामों का प्रयोजन ।

5. साधारण प्रकरण -

साधारण का लक्षण, स्वर साधारण और जाति साधारण ।

6. वर्णाकार प्रकरण -

वर्ण का लक्षण और भेद अलंकार, उनकी अनन्तता तथा प्रयोजन।

7 जाति प्रकरण -

जाति के शुद्ध और विकृत भेद, जातियों के ग्राम विभाग, जातियो के लक्षण उनकी व्याख्या तथा विवरण गीतियां इत्यादि।

8. गीतियां प्रकरण -

कपालों के शुद्धा जातियों के अनुसार 7 भेद, कम्बल गान, गीति सामान्य का लक्षण तथा उसके भेद।

जातियों क प्राचीन रूप को शारंगदेव ने ही प्रस्तुत किया है। जातियों के 12 लक्षण (ग्रह अंग आदि) जातियों के प्रस्तार, अक्षिप्तिका सहित, उनमे प्रयुक्त होने वाले तालों का विस्तृत वर्णन है, जिससे प्राचीन जाति गायन का अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रकरण के अन्त में प्राचीन कपाल तथा कम्बल गायन का वर्णन है -

प्रथम अध्याय में शारंगदेव के राग में लगने वाले सभी तत्वों को स्पष्ट किया है, जिसके आधार पर राग का रूप तैयार होता है। प्राचीन समय मे जाति गायन तथा राग गायन में प्रयुक्त होने वाले स्वर, प्राचीन वर्गीकरण की ग्राम, मूर्छना पद्धति, स्वरों की स्थिति, तान का प्रयोजन, वर्ण अलंकार इन सभी बातो का विस्तार पूर्वक वर्णन पं0 शारगदेव ने किया है।

प0 रत्नाकर ने द्वितीय राग विवेकाध्याय के प्रथम प्रकरण के अन्तर्गत ग्राम राग और उनके विभाग, उपराग, राग, भाषा, विभाषा, अन्तर भाषा, के लक्षण बताते हुए इन रागों का वर्णन किया है। ग्राम रागों के वर्णन मे उनकी उत्पत्ति जाति से बताते हुए उसमें लगने वाले स्वर, मूर्छना, वर्जित स्वर, राग के ग्रह अंश, न्यास स्वर, राग में प्रयुक्त होने वाले अलंकार, वर्ण, रस, मूर्छना तथा गायन समय का निर्देशन किया है। रागो के लक्षण के उपरान्त, का आलाप रूपकम् करण तथा अक्षिप्तिका का उनके स्वर लिपि के साथ वर्णन है।

इसी अध्याय में दूसरे प्रकरण में रागांग, भाषांग आदि शब्दों का स्पष्टीकरण, देशी राग व उनके नाम, भाषा आदि का मतंग तथा अन्य ग्रन्थकारों के मत से निरूपण प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय प्रकीर्णकाध्याय में लेखक के संगीत सम्बन्धी सामान्य बातों का वर्णन किया है, जैसे वाग्येयकार के लक्षण, गीत के गुण दोष, गायन का लक्षण, गायन के दोष शब्द के गुण और दोष, गमक, प्रसिद्ध दस स्थान, 33 गुण जनित प्रसिद्ध स्थाय, 20 असंकीर्ण स्थाय, 33 संकीर्ण स्थाय, मिश्र स्थाय, आलाप्ति का लक्षण और उसके विभाग, रागालप्ति वृदं का लक्षण और भेद कुतप का लक्षण और भेद।

राग वर्णन में राग में प्रयुक्त होने वाले गमक तथा स्थायों का वर्णन रत्नाकर में है। चतुर्थ प्रबान्धाध्याय के अन्तर्गत गान्धर्व का लक्षण, गान का लक्षण और उसके निबद्ध अनिबद्ध भेद, धातु के प्रबन्ध के अवयव के रूप मे निरूपण, धातु के भेद,

प्रबन्ध के भेद और अग प्रबन्ध की जाति भेद गीत के गुण दोष आदि का वर्णन है।
।

पंचम तालाध्याय मे मार्ग ताल प्रकरण प्रकरणाण्य गीत प्रकरण, तथा देशी ताल प्रकरण का वर्णन है। षष्ठ अध्याय वाद्याध्याय है, चारों प्रकार के वाद्यों के भेद प्रभेद और उनकी वादन विधि का वर्णन तथा वाद्यों के गुण दोष एव वादनों के गुण दोषों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

सप्तम नर्तनाध्याय में नाट्योत्पति, नाट्य का मोक्ष साधनप्व नाट्य नृत्य और नृत्त की व्याख्या है। शारंगदेव के संगीत रत्नाकर की इस संक्षिप्त सूची से यह विश्वास प्राप्त हो जाता है कि यह ग्रंथ सचमुच संगीत का आधार ग्रन्थ है। जिसमें संगीत के सभी विषयों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। संगीत रत्नाकर पर प्राय सात टीकायें लिखी गयी हैं, किन्तु इस समय संस्कृत की दो ही टीकायें कल्लिनाथ द्वारा रचित कलानिधि तथा सिंह भूपाल द्वारा रचित संगीत सुधा उपलब्ध है।

शारगदेव प्रथम अध्याय में उन सब राग में लगने वाले तत्वों का स्पष्ट उल्लेख होता है, जिनके आधार पर राग का रूप तैयार होता है। रत्नाकर को प्राचीन काल का अंतिम ग्रन्थ माना जा सकता है। इस काल तक राग गायन का एक युग समाप्त हो जाता है, ऐसा कहने में कोई आपत्ति नहीं है। रत्नाकर के अनुसार ही इस समय सब मिलाकर 264 से अधिक राग प्रचार मे थे, किन्तु शारंगदेव ने सब रागों का वर्णन नहीं किया है। उनके ग्रन्थ में 119 रागों का वर्णन उपलब्ध है, परन्तु

नाम 264 रागों के हैं।[1]

शारंगदेव के समकालीन संगीत के एक जैन आचार्य हुए, जिनके विषय में उनके संगीत समयसार ग्रन्थ नामक ग्रन्थ से तथा सिंह भूपालकृत संगीत रत्नाकर की टीका से ज्ञात होता है। संगीत समयसार की रचना नौ अध्यायों में हुयी है। प्रथम अध्याय में स्वर निरूक्ति, ग्राम, मूर्च्छना, जाति सप्तगीत तथा ग्राम रागों का कथन है। चतुर्थ प्रकरण में रागांग, भाषांग, क्रियांग तथा उपांग रागों के लक्षण बताने के बाद 101 रागों के नाम बताये हैं।[2] पार्श्वदेव द्वारा प्रस्तुत लोक व्यवहार सिद्ध राग का उदाहरण स्वरूप तोड़ीराग में हम देख सकते हैं -

अंग षाडव रागस्य सम्पूर्णश्च समस्वर·
षडजतारश्च मन्द्रश्च न्यासांश ग्रहमध्यम
तोडिनाम प्रसिद्धोऽयं रागो हर्षे प्रयुज्यते।[1]

अर्थात तोड़ी राग षाडव राग का अंग है, सम्पूर्ण है, इसमें मण्डावाधे षडज है, इसका न्यास, अंश और ग्रह स्वर मध्यम है, इनका प्रयोग हर्ष में होता है।

---

1 संगीत रत्नाकर में 30 ग्राम राग 8 उपराग, 20 राग, 96 भाषा, 20 द्विभाषा, 4 अन्तर भाषा, 21 पूर्व प्रसिद्ध तथा अधुना प्रसिद्ध रागांग, 20 भाषांग, 15 क्रियांग 30 उपांग कुल मिलाकर 264 रागों के नाम बताये हैं। दृष्टव्य परिशिष्ट।

2. दृष्टव्य परिशिष्ट

जिस तरह दक्षिण भारत की संगीत कला के शास्त्रकारो ने ग्राम मूर्छना और जाति के आधार पर रागों को रचने और राग रागिनी एव पुत्र की काल्पनिक व्यवस्था मे रागों के वर्गीकरण करने का भी परित्याग कर दिया। संगीत सार क लेखक विद्यारण्य (सन 1320 से सन 1380 ई0 तक) संगीत, कला के वे प्रथम शास्त्रकार है, जिन्होने पन्द्रह मेलों और उनसे जन्य रागों को नियमानुसार व्यवस्थित रूप मे प्रकट किया है। राग दर्पण मे रागो का वर्णन मानकुतूहल के अनुसार करने के पश्चात फकिरूल्ला ने अन्य रागों को बताया है, जो अमीर खुसरो, शेख बहाउद्दीन जकारिया, मुल्तानी तथा हुसैनशाह आदि गायनाचार्यों क आधार पर लिखा है। अमीर खुसरो न सब रागा म बारह राग चुने तथा उनके नाम 12 तालो के आधार पर रखे।

बरारी, मालरी और हुसैनी को मिलाकर अमीर खुसरो ने दीवाली नाम रख दिया। अमीर खुसरो ने रागों का मिश्रण करके उनके नाम वही रख, जेसे खुसरो ने यमन और वसंत को मिला दिया और उसका नाम वसंती रखा। तात्पर्य यह है कि अमीर खुसरो ने पराशिया के तथा हिन्दुस्तान के रागों को मिलाकर रागों की रचना की, खुसरो द्वारा बनाये हुए सकीर्ण राग मजीर, साजगिरी 5 मान, इरशाक मुआफिक, धनम, झीलफ, फरागना, सरपर्दा, फिरोदस्त तथा मानम है।[1]

संगीत के इतिहास में खुसरो के व्यक्तित्व को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है और कहा जाता है कि उसने गोपाल, नायक को पराजित किया था। खुसरो

---

1. रागनाम, ओ0सी0 गांगुली के 'रागस ओर रागिनीस' से उद्धृत।

तथा गोपाल नामक के पारस्परिक साक्षात् की कहानी सर्वप्रथम औरंगजब कालीन लेखक फकिरूल्ला के ग्रंथ संगीत दर्पण में मिलती है। अमीर खुसरो जिस युग म अपनी काव्य साधना कर रहे थे। उस युग में वहा राजस्थानी और अपभ्रंश से विकासत हिन्दी का ही बोलबाला था और इन्हीं भाषाओं मे कविगण अपनी रचनाये किया करत थे। खुसरा भाषा के क्षेत्र मे भी एक नया प्रयोग किया, उन्होंने नूतन शैलियो मे हल्की, फुल्की भाषा में मनोरजन के नाना प्रकारों को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत किया।

खुसरा का ब्रजभाषा में रचा हुआ गीत इस प्रकार हे . -

मोरा जोबना नवेलरा गयो है गुलाल
कैसे गर दीनी बकस मोरी माल
सूनी सेज डरावन लागे
बिरहा अगिन मोही डस डस जाय।[1]

इस गीत से खुसरो के समय मे गाये जाने वाले गीत की एक झलक मिलती है, किन्तु राग गायन भी इसमें कोई कल्पना नहीं होती है।

अलाउद्दीन खिलजी 1294 ई0 मे देवगिर पर चढ़ायी की थी। उस समय वहां रामदेव नामक राजा राज्य करता था, उसी का दरबारी गायक गोपाल नायक रहते थे। इसी समय गोपाल नायक तथा अमीर खुसरो की संगीत प्रतियोगिता हुयी। खुसरो के छल और चातुर्य द्वारा गोपाल नायक को पराजित होना पड़ा और उसने अपनी हार

---

1. संगीत जरनल अप्रैल 1962, कवि संगीतज्ञ खुसरो लेखक हलधर प्रसाद इनु।

स्वीकार कर ली। किन्तु अमीर खुसरो हृदय से उसने विद्वता का लोहा मानता था। अत वह वापस आते हुए गोपाल नायक को अपने साथ दिल्ली ले आया। दिल्ली में गोपाल नायक को गायक के रूप मे पूर्ण सम्मान प्राप्त हुआ।

गोपाल नायक कोई निरक्षर गायक मात्र न थे। संगीत शास्त्र के मर्मज्ञ पंडित, प्रमाणिक वाग्येयकार और कला के व्यावहारिक रूप में साक्षात अवतार थे। कुछ ऐसे ध्रुपद मिलते हैं, जिनमे गोपाल नायक अलाउद्दीन को सम्बोधित कर रहे हैं। निम्नलिखित ध्रुपद में गोपाल नायक द्वारा अलाउद्दीन के प्रताप का वर्णन है -

धकदलन रे प्रल्बनाद, सिंघनाद बल अपबल वम्कअर
कुडानर्धार आडानमिलवत चपलनचाप अचपल ऽम्कअर
गीत गावत नाईक गोपाल विद्यावर
र्सा निसाही अल्लावदी तर्पडिलीनरेस ज्म्के
वसुधासुचित तु अन्तम्कधर।[1]

गोपाल नायक अपने युग के महापुरूष थे, उन्होंने आलाप, ठाय, गीत और प्रबन्ध को चतुर्दण्डि कहा है। गोपाल नायक के पहले चतुर्दण्डि शब्द का प्रयोग स्थायी, आरोही, सचारी के समुदाय के लिए होता था।

---

1. संगीत चिन्तामणि पृ0 234 प्रथम खण्ड ।

संगीत के प्रायोगिक इतिहास की दृष्टि से सन 1300 ई0 से 1800 ई0 तक के समय में अनेक प्रकार के परिवर्तन का समय माना जाता है। मुसलमान शासक संगीत के ग्रन्थों को समझने में असमर्थ थे, लेकिन वे प्रायोगिक संगीत में अपना योगदान दिया। 1300 ई0 में हम्मीर ने श्रृंगार हार नामक ग्रन्थ की रचना की। हरमीर शाकभरी के राजा थे, अपने ग्रन्थ में अर्जुन, याष्टिक, रावण, दुर्गाशक्ति, अनिल कोहल कम्बल, गणपति तथा जयसिंह का प्राचीन संगीत के ग्रन्थकारों के रूप में उल्लेख करते हैं, हम्मीर का कहना है कि जातियों की उत्पत्ति सामवेद से हुई है।

हम्मीर ने बावन देशी राग बताये हैं, श्री राग के वर्णन का नमूना इस प्रकार है : -

षाड्जे षाड्जी समुद्भूतं श्री रागं स्वल्प पंचमम्

स न्यासांश ग्रहं मन्द्रगांधार तारमध्यमम्

समशेष स्वर वीरे शान्ति हम्मीर भूपस्ति।[1]

लगभग 1320 ई0 सन् मेंमोक्ष देव संगीत के आचार्य हुए मोक्षदेव ने 50 प्रवर्तक राग बताये हैं, जो उस समय प्रचार में इनका राग वर्णन इस प्रकार है। श्री राग को प्रथम राग कहते हुए इस प्रकार वर्णित किया है : -

गहांशषडजं सुधियान्तदन्तं, गमन्द्रक टम्कभवं यदड: गम्

श्री राग संज्ञ जगदुर्भतार समानशेष स्वर मल्पंमतत्। 2

---

1. भरतकोष पृ0 682

2. भरतकोष पृ0 682

इसी समय (चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में) रागों के इतिहास में मिलने वाला ग्रन्थ नारद का संगीत मकरंद है।[1] संगीत के इतिहास में रागों के वर्णन में पंडित मंडली का उल्लेख आता है। सुल्तान शाही (जो कि कदम में राज्य करते थे) के सन 1429 ई० में एक सभा आयोजित की थी, जिसमें पंडित मंडली द्वारा रागों पर चर्चा हुई है। भरत कोष के राग वर्णन में इनके नाम का उल्लेख तथा राग वर्णन पाया जाता है। पन्द्रहवीं शताब्दी (1458-1499) में जौनपुर के बादशाह सुल्तान हुसैन शाह शर्की संगीत के अत्यन्त कला प्रेमी हुए। इन्होंने ख्याल गायकी (कलावती ख्याल) का अविष्कार किया एवं अनेक नवीन रागों जैसे जौनपुरी, तोड़ी, सिंधु भैरवी, रसूली तोड़ी। 12 प्रकार के श्याम जौनपुरी, सिंदूरा की रचना की।

प्रायः इसी समय में एक पुस्तक संगीत दामोदर शुभकर के द्वारा रची गयी। इसमें लेखक ने रागों की उत्पत्ति कृष्ण तथा उनकी सोलह हजार स्त्रियों से कही है। इस ग्रन्थ मं दो प्रकार से राग रागिनी वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। एक मत से 6 राग, 30 रागनियां तथा इसी मत के अनुसार 36 राग बताये गये हैं। ग्वालियर का संगीत, संगीत की इतिहास की दृष्टिसे महत्वपूर्ण है।

गायक की वर्तमान ध्रुपद रीति का आरम्भ राजा मानसिंह ने किया था,

---

1. इस ग्रन्थ का काल निश्चित नहीं है, राम कृष्ण कवि थे इस ग्रन्थ का समय 7वीं से 11वीं शताब्दी के बीच माना है, किन्तु इस ग्रन्थ में बताये हुए राग रागिनी वर्गीकरण को देखकर इसे चौदहवीं शताब्दी से पहले नहीं माना जा सकता है।

ऐसा कहा जाता है।

मुगलपूर्व तथा हर्षवर्धन के पश्चात भारत में कलाओं का जो विकास हुआ, उसमें ग्वालियर का स्थान प्रमुख है।

फकिरूल्ला लिखते हैं कि - राजा के हृदय में यह बात उत्पन्न हुई कि उच्च कोटि के गायक एक स्थान पर कठिनाई से बहुत समय पश्चात एकत्रित होते हैं। इसलिए यह उचित है कि रागों की संख्या तथा इनके प्रकार विस्तारपूर्वक तथा व्याख्या सहित लिपिबद्ध कर लेना चाहिए। इस विचार से राग रागिनी तथा उनके पुत्रों का विस्तार पूर्वक वर्णन करके मानकुतूहल की रचना राजा के नाम से की गयी।[1]

राग दर्पण के अनुसार मानकुतूहल में अनेक रागों के नाम हैं। कहा जाता है कि मान सिंह के दरबार के प्रमुख गायकों में हृदय जंगम गायक था, जिसकी गायन में सदैव बैजू से प्रतियोगिता रहती थी। इससे उत्तेजित होकर बैजू ने होरी रामक गायकी की एक नवीन प्रणाली का अविष्कार किया जो बहुत ही आकर्षक प्रमाणित हुई। इसके अलावा उसने गुजरी तोड़ी, मृगरंजनी टोड़ी, मंगल गूजरी आदि नये रागों को बनाया।

----

1. मानसिंह और मान कुतूहल पृ0 75

अकबर संगीत कला का बहुत प्रेमी था। आइने अकबरी में अकबर की राज्य सभा में 36 संगीत कलाकारों के नामों का उल्लेख है।

अकबर के शासन काल में संगीत की बहुत उन्नति हुई। इसी काल में तानसेन का नाम अमर हो गया। तानसेन की प्रकृति अत्यन्त सरल विनीत एवं विनम्र थी। ईश्वर गुरू और गुणियों के परम भक्त थे, उनका पौराणिक एवं साहित्यिक ज्ञान भी ठोस था। मियां की सारंग, मियां की मल्हार, नामक राग का उन्होंने अविष्कार किया। तानसेन रचित ध्रुपद का नमूना इस प्रकार है : -

इन अखियन मन में विरह को बेल भई
सींच सींच जल असुअन पानी री दिन दिन होत चाह नई
उलहत पातन नए सो बूंद पाताल गई
तानसेन प्रभु तुमरे दरस बिन सब तन क्षीण भई।

तानसेन मूर्छना पद्धति के पंडित थे। रागमाला नामक हस्तलिखित ग्रन्थ में तानसेन का एक ध्रुपद प्राप्त है। जिससे प्रतीत होता है कि संगीत रत्नाकर के स्वराध्याय को तानसेन गुरू शिष्य परम्परा को प्रसाद से जानते थे। ध्रुपद निम्न हैं:-

धैवत पंचम मधिम गंधार रिखब खरज सुर साधि साधि साधि गुन निषाद रे
तेरहो अलंकार बाईस मूर्ति साधि बाद उचारे सारिगमपधनिस सुघर सनिधपमगरे

---

1. राजकल्पद्रुमांकुर पृ0 322, तानसेन रचित बिहाग का ध्रुपद।

त्रिविधि त्रिविधि त्रिविधि सुरन मधि तृतीय तृतीय तृतीय विर्तन जानत विदमान रे
सप्त सुर तीनि ग्राम इकईस मूर्छना, छत्तीस भेद नादवाद तानसेन विधान रे।[1]

अकबर के ही समय में एक विद्वान और हुए जिनका नाम पुंडरेक विट्टल था। इन्होंने संस्कृत में चार ग्रन्थों की रचना की। इन्होंने यद्यपि दक्षिण के मुखारी मेल को ही अपना शुद्ध सप्तक माना, किन्तु उनका संगीत उत्तर भारतीय संगीत से भी मिलता है। इनके चार ग्रन्थ सद्रागचंद्रोदय, रागमाला, रागमंजरी, नर्तन निर्णय है।

सद्रागचन्द्रो के पुण्डरिक विट्ठल ने कुछ ऐसे रागों का वर्णन किया है जो उत्तरी और दक्षिण संगीत पद्धतियों में एक जैसे हैं लेकिन रागमाला और रागमंजरी में वह स्पष्ट रूप से उत्तर भारत के संगीत की ही व्याख्या करते हैं।

पुण्डरीक ने अपने रागों का वर्णन 19 थाटों के अन्तर्गत किया। पुण्डरीक विट्ठल की दूसरी पुस्तक रागमाला में रागों का वर्गीकरण प्रमुख स्त्री तथा पुत्र रागों में किया है। प्रत्येक राग की 5 भार्या तथा 5 पुत्र हैं।

अपने तीसरे ग्रन्थ राग मंजरी में पुण्डरीक विट्ठल ने उसी शुद्ध संतक

---

1. संगीत चिन्तामणि, प्रथम खण्ड पृ0 69 से उद्धृत ।

का आधार एवं शुद्ध एवं विकृत स्वरों के नाम और वर्णन का सही राग अपनाया है, जैसा कि रागमाला में ग्रन्थ के अन्त में पुण्डरीक कुछ ऐसे फारस के रागों का उल्लेख किया है, जो सम्भवतः मुसलमानों द्वारा हिन्दुस्तानी संगीत में प्रचलित किये गये हैं।

1575 ई0 में जाम शत्रुशल्य के आश्रित एक ग्रन्थकार श्री कंठ हुए हैं, जिन्होंने रस कोमुदी नामक ग्रन्थ की रचना की, यह पुस्तक दो खण्डों में विभाजित है ।

षडज को सब रागों का ग्रह माना जाता था -

षडज एव ग्रहः सर्वरागपु परिकीर्तितः।[1]

श्री कंठ का शुद्ध स्वर सप्तक मुखारी था। इन्होंने सात शुद्ध स्वरों के साथ सात ही विकृत स्वर कहे हैं। जिन्हें कौशिक नि, काकली नि, च्युतस, साधारण ग, अन्तर ग, च्युत म, तथा च्युत प कहा गया। हिन्दुस्तानी संगीत की उन्नति में सुल्तानों तथा सम्राटों का योगदान रहा है।

इब्राहिम आदिलशाह बीजापुर के सुल्तान, संगीत प्रेमी तथा सरस्वती के उपासक थे। उनके द्वारा लिखित पुस्तक नौरस संगीत की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण

---

1. रस कौमुदी पृष्ठ 11, श्लोक 184 से उद्धृत ।

ग्रन्थ है। इस पुस्तक में इब्राहिम आदिलशाह द्वारा रचित उर्दू भाषा के गीत हैं। प्रत्येक गीत के लिए इब्राहिम के राग तथा रागिनी का उल्लेख किया है, जिससे यह ज्ञात होता है कि वे राग रागिनी पद्धति को मानने वाले थे। इब्राहिम ने ध्रुपद का प्रचार किया और अपना स्वयं योगदान दिया। परम्परा से चले आ रहे ध्रुपद में चार भाग में स्थाई, अन्तरा, संचारी, काआभोग थे, किन्तु इब्राहिम के गीतों में केवल तीन भाग संचारी अन्तरा तथा आभोग है। इनके ग्रन्थ नौरस में 59 गीत हैं, जिनमें सरस्वती, गणेश, तथा हिन्दु देवताओं का वर्णन है। इब्राहिम की यह पुस्तक उत्तर भारतीय संगीत पर आधारित है।

अकबर के उत्तराधिकारी जहांगीर के शासन काल में भी संगीत की उन्नति हुई। जहांगीर के दरबार में विलास खां, छत्तर खिां, खुर्रमदाय, मक्खू, परवेजदाद, और हमजान प्रसिद्ध गायक थे। इसी काल में दक्षिण भारत के राजमुंदी स्थान निवासी पंडित सोमनाथ ने संगीत का ग्रन्थ राग विबोध लिखा। इसमें अनेक वीणाओं का वर्णन किया है तथा रागों का वर्गीकरण 23 प्रवर्तक रागों में किया है। यह दक्षिण संगीत पद्धति का ग्रन्थ है। इसमें 6 राग, 30 रागनियों तथा प्रत्येक राग के पांच पुत्र का वर्णन इसमें प्राप्त होता है। इस प्रकारइसमें 66 रागों का उल्लेख है। सोमनाथ के राग रामामात्य के रागों से भिन्न है।

शाहजहां के समय में भी संगीत की उन्नति हुई। शाहजहां के समय में लगभग 1625 में दामोदर मिश्रा द्वारा संगीत दर्पण ग्रन्थ लिखा गया। रागों के अध्याय

लेखक ने बीस प्रमुख राग बताये हैं : -

श्री राग, नट्ट, बंगाल, भाषा, मध्यम, षाडव, रक्तहंस, कोल्हहास, प्रसव, भैरव, ध्वनि, मेघ, सोम, कामोद, आम्रपंचम, कंदर्प, देशाख्य, कुकुभ कौशिक तथा नट्ट नारायण।

पं० दामोदर ने हनुमत मत से तथा रागार्णव मत से राग रागिनी वर्गीकरण प्रस्तुत किया है।

दामोदर मिश्रा के संगीत दर्पण के पश्चात उत्तर भारत में दो पुस्तक हृदय कौतुक तथा हृदय प्रकाश प्रचलित हुई। इसके लेखक पं० हृदय नारायण देव हैं। हृदय कौतुक में जन्य रागों का पूर्ण विवरण है। राग की परिभाषा का विवरण देने वाले श्लोक न केवल वर्ज्यावर्ज्य स्वरों के ही बारे में बतलाते हैं, बल्कि वे स्वर स्वरूप को भी बतलाते हैं।

गमौ पनी धनी संरेऽ सन्निसा रिगमाः पधौ

मपौ सरी सानिधपा मपौ गम-गमा रिसौ

हमीर रागजन्यः सम्पूर्णः कथितो बुधैः।[1]

ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक काल में राग वर्णन के लिए पं० भातखण्डे जी ने भी इसी प्रकार से राग वर्णन स्पष्ट किया है।

---

1. संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन पृ० 32

सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में एक महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकाश में आयी, जिसका नाम था संगीत पारिजात जिसके लेखक पं0 अहोबल उन्होंने 122 रागों का वर्णन संगीत पारिजात में किया है। प्रत्येक राग का वर्णन करते समय वह उसमें लगने वाले स्वरों, आरोही, अवरोही, ग्रह न्यांस, मूर्छना के स्वरों का वर्णन करते हैं, पारिजात की मूर्छना प्रत्येक राग की प्रथम तान मात्र है।

पं0 महोबल अपने रागों की व्याख्या इस प्रकार करते हैं : -

शुद्ध मेलोद्रभवः पूर्णो धैवतादिक मूर्छन,

आरोहे गनिवर्ज्यः स्याद्रागः सैंधव नामक

आमोदित स्वरैर्युक्तः स्फुरितेनच शोभितः। - इति सैंधवः

ध सारिमप पधधा। सनिध धपमप मग गरेस धसरिमम गरिग गरि पमगरि

निधपमप मगरि। पप मग रेग मगरिस।[1]

राग अपनी वैयक्तिक विशेषताओं के द्वारा ही एक दूसरों से पृथक हो जायेगें, जिस स्वर समूह से राग प्रारम्भ होता था। उसे उद्ग्राहक तान कहते थे। संगीत पारिजात में रागों के भेद पद्धति के भी दर्शन होते हैं, जैसे मल्हार के प्रकार, नट के प्रकार आदि। पं0 महोबल ने 3 प्रकार की तोड़ी, 3 प्रकार की धनाश्री, नौ प्रकार के नाट, 8 प्रकार की वराही, तथा 7 प्रकार के गौड़ का वर्णन किया है।

---

1. संगीत पारिजात पृ0 102, राग प्रकरण ।

पं0 श्री िनवास द्वारा लिखित एक छोटा ग्रन्थ राग तत्व विबोध 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में उत्तर भारतीय संगीत पर लिखा गया। अहोबल की भांते ही श्री निवास ने भी अपने शुद्ध और विकृत स्वरों की स्थापना वीणा के तार की सहायता से की है। श्री निवास जी ने अपने मेल अथवा ठाठ की और उनके उप विभाग की परिभाषा इस प्रकार की है : -

मेल स्वर समूहः स्याद्राग व्यंजन शक्तिभान्[1]

अर्थात मेल उस स्वर समूह को कहा गया है, जिसमें राग उत्पन्न करने की शक्ति हो।

श्री निवास ने मेल राग वर्गीकरण की पद्धति का अनुकरण किया है, तथा 104 रागों का वर्णन किया है। रागों के इतिहास में उत्तर भारतीय संगीत के इतिहास की दृष्टि से लोचन की रागतरंगिणी का महत्वपूर्ण स्थान है। पण्डित भातखण्डे ने उत्तर भारतीय ग्रन्थकारों में सर्वप्रथम लोचन को उनके श्लोक भुजवसुदशमित्त शाके के अनुसार इ0सं0 1162 में माना है।[2]

लोचन की रागतरंगिणी में 5 तरंग हैं। प्रथम में पुरूष राग कथन, द्वितीय

---

1. राग तत्व विबोध पृ0 9, श्लोक 91

2. उत्तर भारतीय संगीत का इतिहास पृ0 10

में रागिणी स्वरूप कथन, तृतीय में उत्पत्ति और नायनिरूपण तिरहुति देश में विख्यात राग, गीति, छंद ताल आदि कथन ।

रागों की उत्पत्ति के विषय में लोचन का कथन है : -

श्रीमद्भरतादि मुनि प्रयुक्त संगीतशास्त्रोक्तानि रागाणां षोडश

सहस्त्राणि तथा चाभियुक्ता.

गोपीभिर्गीतमारब्ध मैकेकं कृष्ण सन्निधौ, तेन जातानि रागाणां

सहस्त्राणितु षोडश रागेष्वेतेषु षट्त्रिशद्रागाजगति विभुता.

कालक्रमेण तत्रापि ह्रासएव ही दृश्य ते केचिद्वदन्ति ते सर्वे

रागान्स्त्तीतिनिश्चित। [1]

अर्थात गोपियों तथा श्री कृष्ण के द्वारा रचित सोलह हजार राग थे। कालक्रम से उनका ह्रास हुआ तथा प्रचार में छत्तीस रागों का प्रचलन रहा।

लोचन का हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में महत्वपूर्ण स्थान है। जिन बारह थाट भैरवी, तोड़ी, गौरी, कर्णात, केदार, ईमन, सारंग, मेघ, धनाश्री पूर्वी, मुखारी, दीपक का लोचन ने वर्णन किया है, लोचन ने एक छोटा अध्याय रागों के चित्रण पर लिखा है। मध्यकालीन रागों का इतिहास जानने के लिए पं0 भावभट्ट के ग्रन्थ महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

---

1. राग तरंगिणी पृ0 2-3

भावभट्ट ने तीन ग्रंथों की रचना की है। अनूपसंगीत विलास, अनूपरत्नाकर और अनूपांकुश ये पुस्तक रागों के इतिहास के लिए महत्वपूर्ण हैं।

रागाध्याय में पण्डित जी संगीत रत्नाकर के रागों के नाम से प्रारम्भ करके फिर संगीत पारिजात के रागों की ओर मुड़ जाते हैं। विलावल, केदार, गौरी, पूरिया, आदि के उपांग रागों का वर्णन है।

रागाध्याय में लेखक ने कुछ प्रचलित रागों के भेदों की गणना की है, जैसे नट के 16 प्रकारें, कर्नाट के 14 प्रकार, इसके उपरान्त कल्याण, विलावल तोड़ी, गौरी, गौड़, बसंती, आसावरी, केदार, विहागड़ा, सारंग, भैरव, कामोद, गुर्जरी सैंधवी तथा मल्हार आदि के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन है। भावभट्ट के 31 रागों की सूची उनके विभाषा के साथ ही है।

पौराणिक अधिकारों के अनुसार मुख्य राग भिन्न है - श्री, वसंत, पंचम, भैरव मेघ तथा नट्ट नारायण। इन रागों की रागिनियां का वर्णन किया है।

तीसरी पुस्तक में अनुप संगीतांकुश में लेखक हनुमानमत का कुछ थोड़े से परिवर्तन के साथ मानते हैं, जैसे आसावरी के लिए सावेरी का प्रयोग करेगा।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात हम 18वीं शताब्दी में आते हैं। सन 1707 ई0 से 1897 ई0 तक औरंगजेब के दस उत्तराधिकारियों के दिल्ली पर शासन

किया, इसमें कई संगीत के ग्रन्थकार हुए हैं। राग रत्नाकर की रचना पण्डित देव ने ई0 सं0 1673-1745 में थी। यह हिन्दी भाषा में लिखा गया है तथा इसमें प्रत्येक राग का वर्णन सवैय्या और दोहा में किया गया है।

18वीं शताब्दी के मध्यकाल में तन्जौर के राजा तुलज (1720 से 1730) द्वारा संगीत सारामृतोद्वार की रचना की गयी। यह दक्षिण भारतीय संगीत का ग्रन्थ है, इसमें रत्नाकर चतुर्दण्डिप्रकाशिका से श्लोक लिये गये हैं।

नगमाते अयोध्या के नवाब आसफुद्दौला के समय लिखा गया। इस ग्रन्थ के कुछ रागों की परिभाषाएं आज भी हमारे हिन्दुस्तानी संगीतज्ञों के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध होती हैं।

रागों के इतिहास क्रम में आधुनिक युग तक आते-आते यह इतिहास पण्डित भातखण्डे के समय तक स्थिर हो जाता है। 19वीं शताब्दी का आरम्भ संगीत के परिवर्तन के लिए आश्चर्यजनक था। इस युग में संगीत की अत्यधिक विकास होने लगा, जिसका श्रेय दो महान विभूतियों पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे तथा पंडित विष्णु दिगम्बर पालुस्कर को दिया जाता है।

पण्डित भातखण्डे ने सम्पूर्ण भारत में भ्रमण करके तथा कई संगीतज्ञों से मिलाकर एवं उनसे वार्तालाप करके विभिन्न घरानों के गायक तथा वादकों से

प्राचीन वदिशों को एकत्रित किया तथा उन्हें स्वर लिपि में बाधा।

रागों का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन पंडित भातखण्डे जी का स्वयं का योगदान माना जाता है। इसका वर्णन भातखण्डे जी ने संस्कृत की दो पुस्तक श्री मल्लक्ष्य संगीतम् तथा अभिनव राग मंजरी में किया है। भातखण्डे जी ने रागों का वर्गीकरण दस थाटों के अन्तर्गत किया है। आधुनिक युग के आते-आते रागों में सात शुद्ध तथा पांच विकृत कुल मिलाकर बारह स्वरों का प्रयोग होने लगा। पण्डित भातखण्डे अपने पीछे कई महत्वपूर्ण कार्य प्रायोगिक संगीत तथा शास्त्रीय संगीत में छोड गये हैं, जिनके आधार पर हमारी आज की 'राग' प्रणाली स्थिर है। उनके कार्य इस प्रकार है।

1. संगीत का शास्त्र तथा रागों का वर्णन संस्कृत की दो पुस्तक श्री मल्लक्ष्य संगीतम् तथा अभिनव राग मंजरी में किया गया है।

रागों के वर्गीकरण के लिए लेखक ने मेल पद्धति को अपनाते हुए कई नये-नये राग नामों का उल्लेख किया है।

इस शताब्दी में जगह-जगह संगीत में परिवर्तित हो रहे थे। ग्रंथकार अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार संगीत को नया रूप देने का प्रयत्न कर रहे थे।

इसी समय प्रताप सिंह देव के आश्रय में रसराशि नामक प्रसिद्ध कवि थे,

जिन्होंने संवत 1851 में राग संकेत की रचना की। राग संकेत में लेखक ने छः राग 36 रागनियों का उल्लेख किया है।

लेखक ने 110 रागों के नामों की केवल सूची पायी है[1] जिनमें कई राग, रागों के मिश्रण से बने हैं। रागों के विषय में जानने के लिए इस ग्रन्थ में न रागों का वर्णन है, और न ही उनके स्वरों के विषय में किसी प्रकार का कोई कथन। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुसलमानों की शक्ति का ह्रास हुआ। मुहम्मद शाह (सन 1719 अन्तिम बादशाह थे, जिनके दरबार में संगीत को आश्रय मिला, आज भी ऐसी कुछ बंदिशें (ख्याल) मिलती हैं, जिनमें मुहम्मदशाह के नाम का उल्लेख मिलता है। हिन्दू ओर फारसी संगीत पद्धतियों का सुन्दर मिश्रण मुसलमान काल के संगीत की प्रमुख विशेषता थी। शास्त्रीय संगीत के कुछ प्रकारों के नाम फारसी में रहे और कुछ नवीन नाम दिये हैं। जैसे त्रिवट, तराना, गजल, कव्वाली, नगमाते आसफी में पहली बार शुद्ध सप्तक के रूप में विलावल का उपयोग पूर्ण निश्चय के साथ हुआ है। यह सप्तक हमारे वर्तमान हिन्दुस्तानी संगीत का आधार है।

2. पण्डित भातखण्डे ही ऐसे आधुनिक प्रथम संगीतज्ञ थे, जिन्होंने उत्तर हिन्तुस्तानी संगीत पद्वति एवं दक्षिण भारतीय संगीत को अलग-अलग स्पष्ट किया।

---

1. राग नाम दृष्टव्य परिशिष्ट

3 हिन्दुस्तानी रागों का वर्गीकरण मेल पद्वति के आधार पर करके निम्न दस थाटों म उनका वर्गीकरण किया - विलावल, कल्याण, खमाज, भैरव पूर्वी मारवा काफी, आसावरी, भैरवी तथा तोड़ी ।

4. रागों के गायन समय के अनुसार रागों का वर्गीकरण पूर्वांग उत्तराग राग तथा दिन रात्रि के प्रहरों से सम्वन्धित बताया है।

5. भातखण्डे जी ने रागों के अंगों का वर्णन किया है, जैसे कार्फी टा० अंगों में काहड़ा अंगें, मल्हार अंग, सारंग अंग, इत्यादि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीनकाल से चले आ रहे राग के इतिहास को पंडित भातखण्डे जी के काल में स्थिर रूप प्राप्त हुआ तथा प्रचलित राग प्रणाली को नया रूप मिला।

हिन्दुस्तानी राग अपनी सीमा में बंधा हुआ है, जिसके कारण इसका राग रूप रंजक एवं स्थिर, आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत में राग से सम्बन्धित, कुछ नियम इस प्रकार है।[1] इनके आधार पर राग प्रणाली सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित है।

---

1. राग सम्बन्धी सर्व साधारण नियम पं0 भातखण्डे केजू0 प्र0 भा0 भाग-5 के पृष्ठ 30 पर से उद्धृत ।

1. प्रत्येक राग में कम से कम पांच स्वर होने चाहिए इसके आधार पर रागों के तीन वर्ग ओडव, षाडव तथा सम्पूर्ण माने गये हैं।

2. जो राग दोपहर के बारह बजे से रात्रि के बारह बजे तक गाये जाते हैं। उन्हें पूर्व राग कहा जाता है। रात्रि के बारह बजे से दिन के बारह बजे तक गाये जाने वाले रागों को उत्तर राग कहा जाता है।

3. अधिकतर किसी भी राग में एक साथ मध्यम एवं पंचम दोनों स्वर वर्जित नहीं होते ।

4. राग अपने नियम समय पर गाया जाने पर ही अधिक शोभनीय होता है।

5. पूर्व रागों में अधिकतर वादी स्वर सप्तक के पूर्वांग में तथा उत्तर रागों में उत्तरांग में होता है। इसलिए पूर्व रागों को पूर्वांग वादी और उत्तर रागों को उत्तरांग वादी कहा जाता है।

6. प्रत्येक राग में एक ही स्वर वादी और एक ही स्वर संवादी होता है, यदि वादी स्वर पूर्वांग में है तो संवादी स्वर उत्तरांग का होता है। वादी और संवादी स्वर में कम से कम चार स्वरों का अन्तर होता है।

7. जहां तक सम्भव हो एक ही स्वर के दोनों रूप (तीव्र तथा कोमल) एक के बाद एक नहीं लिखे जाते, किन्तु इस नियम के अपवाद भी हैं, जैसे लालत आदि।

8. प्रत्येक थाट से पूर्व राग और उत्तर राग उत्पन्न होते हैं। एक अंग के राग, वादी संवादी बदलकर दूसरे अंग में बनाये जाना राग है।

9. राग मे स्वर कम अधिक लगने की मात्रा के अनुसार प्रबल, दुर्बल अथवा सम हो जाते हैं।

10 हिन्दुस्तानी संगीत में मध्यम स्वर बहुत ही विचित्रतादर्शक माना जाता है। इसकी सहायता राग समय निश्चित करने में तो होती ही है, परन्तु इसके प्रयोग से राग की प्रकृति तक बदली जा सकती है।

11 राग विस्तवार में तिरोर्भाव साधकर रंजकता बढ़ाने के लिए वादी स्वर के अतिरिक्त अन्य स्वरों को अंशत्व (आगे लाना) दिया जाता है। कण स्वर का रागों में बहुत महत्व होता है। कहीं कहीं कण से ही राग भेद हो सकता है।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य नियम हिन्दुस्तानी संगीत पद्वति के सम्बन्ध में पंडित भातखण्डे जी के दिये हैं, जिनके आधार पर हमारे राग की नींव खड़ी है।

आधुनिक युग में राग के क्षेत्र में पंडित भातखण्डे का योगदान अपूर्व रहा है। हमने पहले भी देखा कि प्राचीन तथा मध्यकालीन राग में परिवर्तन हुए हैं। अतः

हे 'रिवर्तन किस तरह के थे, ये जान लेना अप्रासंगिक न होगा।

1. जैसा कि प्राचीन समय शारंगदेव के समय तक रागों पर ग्राम मूर्च्छना जाति पद्वति का असर ज्ञात होता है। उसी प्रकार राग गायन में प्रयुक्त होने वाले स्वर भी भिन्न' थे। मध्यकाल में आने पर सब गायन षडज ग्राम पर आधारित हो गया।

मध्यम ग्राम का लोप हो गया तथा प्रचार में केवल षडज ग्राम ही रह गया। उसी प्रकार भिन्न-भिन्न ग्रंथकारों के विकृत स्वरों की संख्या भिन्न-भिन्न बतायी तथा अपने ग्रन्थों में वर्णित किया। इसी के साथ राग वर्गीकरण की दो पद्वतियां स्त्री पुरूष राग परिवार तथा मत पद्वति का आरम्भ हुआ।

2. प्राचीन समय में राग गायन में प्रबंध गायन प्रचार में था, जिसने बदल कर मध्य काल में ध्रुपद ख्याल आदि का स्थान ले लिया, इससे राग गायन में प्रयुक्त होने वाले भाषा आदि का ज्ञान होता है।

3. प्राचीन काल से आधुनिक काल तक के सभी ग्रन्थकारों ने एक सप्तक में 22 श्रुतियां स्वीकार की हैं।

प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वरों की स्थिति अंतिम श्रुति पर मानते थे, किन्तु भातखण्डे जी ने अपने स्वरों की स्थिति प्रथम श्रुति पर आती है। 22 श्रुतियों में से 1-3-5-6-8-10-12-14-16-18-19-21 पर अपने स्वर की स्थापना की है।[1]

---

1. मल्लक्ष्यसंगीतम्, पृ0 50-51

रागों में प्रयुक्त होने वाले स्वरों की पहिचान के लिए चिन्हों का प्रयोग किया तथा पद्य को स्वर लिपि में बांधा गया। राग में प्रयुक्त होने वाले स्वरों को दर्शाने तथा राग के अन्य लक्षण ग्रह अंश आदि को दर्शाने के लिए राग पारिभाषायें बनवायी, जैसे श्री राग के वर्णन में इस प्रकार का वर्णन किया गया है . -

पूर्वी मेल समुत्पन: श्री रागो लक्ष्य विकृत:

हरप्रियाहव्ये मेले वर्णितोऽसौ प्रश्नतनै.

आरोहे गध वर्ज्य स्यादवरोहे समग्रकम् गानमस्य समादिष्ट

दिनान्तेऽति मनोहरम्

ऋषभः संमतो वादी संवादी पंचमो भवेत्

के विद्धिपर्ययं प्राहुर्वयं लक्ष्यानुवर्तिनः

गंभीर प्रकृतिर्नित्यं विलंवित लायाचितः

अवश्यं स्याछिनान्तेऽसौ मुक्ति मुक्ति प्रदानॄणाम्

श्री रागांग स्वतंत्र यन्मन्यते लक्ष्यवेदिभिः

सावधानं यथा न्यायमंश्यान्यं प्रथमं बुद्धेः

रिपयोः संगतिश्चात्र भवेद्रागांग वाचिका

सारिरिस स्वरैः स्पष्टं रागरूपं प्रदर्शयत्।

xxx

---

1. श्री मल्लक्ष्यसंगीतम् पृ0 50-51

2. श्री मल्लक्ष्यसंगीतम् पृ0 123

अध्याय - तृतीय

राग संगीत के आवश्यक तत्व

राग एक भवन की तरह है, जिस प्रकार भवन निर्माण के लिए अन्य सामग्री जैसे ईंट, पत्थर, गारा आदि की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार राग रूपी भवन निर्माण के लिए कुछ तत्वों की आवश्यकता होती है, जिसकी नींव पर, राग का रूप स्थिर एवं निश्चित रहता है, राग विस्तार के तत्वों में सर्वप्रथम नाद का स्थान है।

नाद के बिना संगीत की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती है। संगीतोपयोगी नाद से ही संगीत जगत में राग के स्वरूप का निर्माण हुआ है, इस नाद के विषय में वृहदेशी ग्रन्थकार ने कहा है ·

न नादेन बिना गीतं न नादेन बिना स्वराः न नादेन विन नृत्यं
तस्मान्ना दात्मकं जगत् नादरूपः स्मृतो ब्रह्म नादरूपो जनार्दनः
नाद रूपा पराशक्ति नदि रूपो महेश्वरः यदुम्तं बह्वणः स्थान
ब्रह्मग्रन्थिश्च यः स्मृतः तन्मध्ये संस्थितः प्रापः प्रापाद्
वार्ह समुद्रमः। वह्निमारूत संयोगान्नादः समुपजायते।[1]

---

1. वृहदेशी पृ0 2, श्लोक 16, 17, 18

सामान्यतः नाद की उत्पत्ति को मतंग ने वह्निमारुत संयोग से कहा है। मतंग के वचनों का विवेचन संगीत रत्नाकर में इस प्रकार से है : -

आत्माविवक्षमाणोऽयं मनः प्रेरयते मन·

देहस्थं वह्निमाहन्त स प्रेरयति मारुतम्[1]

अर्थात् आत्मा से प्रेरित मन शरीर में अग्नि की प्रेरणा करता है तथा वह अग्निदेह में रहने वाले वायु को चलायमान करता है।

नकारं प्राणनामानं दकारमलनं विदुः

जातः प्राणाग्नि संयोगात्तेव नादोऽभिधीयते।[2]

नकार अर्थात् प्राणवाचक (वायु वाचक) तथा दकार अग्निवाचक है। अत. जो वायु और अग्नि के योग (सम्बन्ध) से उत्पन्न होता है, उसी को नाद कहते हैं।

नाद के दो प्रकार माने जाते हैं - आहत तथा अनाहत। अनाहत नाद की उपासना योगी करते हैं। यह नाद मुक्तिदायक तो है किन्तु रक्तिदायक नहीं।

---

1. संगीत रत्नाकर स्वर अध्याय पृ0 64, श्लोक 3
2. संगीत रत्नाकर स्वर अध्याय पृ0 64, श्लोक 3

इससे यह आशय निकलता है कि अनाहत नाद का प्रयोग ऋषि मुनि मोक्ष प्राप्त करने के लिए करते हैं। संगीत की दृष्टि से इस नाद का कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि यह नाम मनोरंजन का आनन्द प्रदान करने वाला नहीं है।

दूसरा आहतनाद वह है जो दो वस्तुओं के संघर्ष, रगड से पैदा होता है। इस नाद का संगीत में विशेष महत्व है। यद्यपि अनाहत नाद को मुक्तदाता माना गया है, तथापि आहतदनाद को भी भवसागर से पार लगाने वाला बताकर संगीत दर्पण में दामोदर पण्डित ने कहा है -

स नाद स्त्वाहतो लोके रंजको भवभजक:

क्षुन्यादि द्वारतास्तस्मात्तदु त्पत्तिर्निरूप्यते। [1]

अर्थात आहत नाद व्यवहार में श्रुति इत्यादि से रंजक बनकर भवभंजक भी बन जाता है। इस कारण उसकी उत्पत्ति कहता हूं।

नाद के सूक्ष्म, अति सूक्ष्म पांच प्रकार मतंग ने बताये हैं, जिसे संगीत रत्नाकर में भी वर्णित किया गया है। मंतमोक्त ने पांच प्रकार का नाद का वर्णन इस प्रकार है : -

---

1. संगीत दर्पण प्रथम अध्याय पृ0 10 श्लोक, 17

सूक्ष्मश्चैवातिसूक्ष्मश्च व्यक्तोऽव्यक्तश्च कृत्रिमः

सूक्ष्मनादो गुहावासी हृद्‌दये चाति सूक्ष्मकः

कण्ठ मध्यस्थितो व्यक्तश्चाव्यक्त स्तालुदशग

कृत्रिमो मुखदेशे तु ज्ञेयः पञ्चविधौ बुधैः।[1]

उपर्युक्त वचन में कंठ से उत्पन्न होने वाली ध्वनि को व्यक्त और केवल मुख प्रदेश से उत्पन्न होने वाली ध्वनि को कृत्रिम कहा है। व्यथा और अव्यक्त नाद को ही रत्नाकर जी ने पुष्ट और अपुष्ट कहा है।

गान के व्यवहार में तीन प्रकार का नाद प्रयुक्त होता है। हृदय से उत्पन्न होने वाले नाद को मन्द्र कण्ठ से उत्पन्न होने वाले नाद को मध्य तथा मूर्धा से उत्पन्न होने वाला तार नाद होता है, और उसके 22 भेद हैं।

शारंगदेव ने नाद के लिए कहा है -

व्यवहारे प्वसौ मेघा छदि मन्द्रोऽभिधीयते

कण्ठे मध्यो मूर्ध्नि तारो द्विगुणश्चोत्तरोत्तरः

तस्य द्वाविंशतिर्भेदाः श्रवणाच्छु त्रयो मताः।[2]

---

1. संगीत रत्नाकर भाग-1, प्र0स्व0अ0पृ0 65, सुधाकर टीका से उदधृत
2. संगीत रत्नाकर - 1, स्व0अ0पृ0 66, श्लोक 7-8

श्रुति -

श्रुति शब्द श्रु धातु से बना है। श्रु का अर्थ है सुनना। मतंग ने श्रुति का विश्लेषण इस प्रकार से किया है -

श्रु सवणे चास्य धातौः क्ति प्रत्यय समुद्रभवः श्रुते शब्दः

प्रसाध्योऽयं शब्दज्ञैः भविसाधनः।[1]

पं0 नान्यदेव जी ने श्रुति की परिभाषा इस प्रकार दी है -

श्रुतिः श्रूयत इत्येवं ध्वनिरेषोऽमिधीयते

श्रृणोतेः कर्मणि विहिते प्रत्यये क्तिनि जायते।[2]

अर्थात विशेष प्रकार की ध्वनि जो सुनी जाती है, श्रुति कहलाती है, इसमें क्त प्रत्यय लगा है।

इसी प्रकार की उत्पत्ति रत्नाकर में भी कही गयी है -

श्रवणाच्छु तयो मता।[3]

अभिनव तथा शारंगदेव ने श्रुति की एक और व्याख्या बतायी है - तन्त्री

---

1. वृहद्देशी पृ0 2, श्लोक 26
2. भरत भाष्य खण्ड-1, नृत्यध्याय पृ0 86, श्लोक 82
3. संगीत रत्नाकर तृतीय स्व0 अ0 पृ0 67, श्लोक 8

पर आघात करने से प्रथम क्षण में सुनाई देने वाली ध्वनि श्रुति है -

अभिघातजातजाशब्दात् अनंतरं यः अनुरण लक्षणं
शब्दः उपजायते सतावन् निसर्ग स्निग्ध मधुराकारः।[1]

श्रुति लक्षण में भावभट्ट ने दामोदर तथा मतंग मत को प्रस्तुत किया है, दर्पणकार के अनुसार -

स्वरूपमात्र श्रवणान्नादोऽनुरणनं विना
श्रुति रित्युच्यते भेदास्तस्या द्वाविंशतिर्मताः।[2]

अर्थात् प्रथमाघात से अनुरणन हुए बिना जो ह्रस्व नाद उत्पन्न होता है, उसे श्रुति समझना चाहिए श्रुति के 22 भेद हैं।

अभि0 ने भी श्रुति को ऐसा अन्तर कहा है जो एक ध्वनि से दूसरी ध्वनि के बीच सुना जा सके -

श्रुतिश्च नाम श्रोत्रगम्यं वैलक्षण्यभावता शब्देलोत्पद्यते।[3]

---

1. नाट्यशास्त्र अभि0 टीका भाग-4, पृ0 12
2. संगीत दर्पण प्रथम अध्याय पृ0 17, श्लोक - 51
3. ना0शा0 अ0 28, वाल्यूम-4, अभि0टीका पृ0 19

उपर्युक्त श्रुति की परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि संगीत में प्रयुक्त स्वरों के ऐसे अवांतर सूक्ष्म ध्वनि भेद जो स्पष्ट सुनाई देते हैं श्रुति कहलाते हैं। यों तो ऐसे अनेक सूक्ष्म अंतराल हो सकते हैं, जो सुनाई दें, लेकिन एक क्रम से एक के बाद एक सुनने पर जिनमें अंतर पहचाना जा सके ऐसे सूक्ष्म अन्तराल एक सप्तक में 22 माने गये हैं।

श्रुति शब्द प्रचलित संगीत में अतिकोमलादि स्वर विशेष के अर्थ में प्रसिद्ध है।

साम गायन में विशिष्ट स्वरोच्चार रूप दीप्तादि पांच श्रुतियों का ही प्रयोग अभीष्ट था। अतः श्रुतियों की संख्या पांच ही थी। साम युग के पश्चात संगीत शास्त्रकारों ने सामिक श्रुतियों को श्रुति जाति में परिवर्तित किया एवं षडजादि सप्त स्वरों में 4-3 इत्यादि संख्या द्वारा वितरित किया। सामिक पांच श्रुतियों की संख्या संगीत शास्त्रकारों ने 22 करा ली।[1]

प्रत्येक सप्तक में 22 इस प्रकार 66 भेद होते हैं। श्रुतियां कंठ में उत्तरोत्तर तीव्रतर तथा वीणा में अधराधर उच्चोच्चतर रही है। षडज स्वर 4 श्रुति का वृषभ तीन श्रुति का है -

उच्चोन्तरारतार युक्ताः प्रभवन्त्युन्तरोन्तरम्।[2]

---

1. भरतभाष्य खण्ड-1, चैतन्य देसाइ टीका पृ0 97-98 से उदद्धृत ।

2. संगीत रत्नाकर भाग-1, पृ0 67, श्लोक 9 तथा कल्लिटीका।

श्रुतियों के 66 नाम पार्श्वदेव ने बताये हैं।[1]

प्रत्यक सप्तक में 22 श्रुतियाँ होने का सिद्धान्त भरतमुनि ने कहा था। अतः उनके बाद ग्रन्थकारों ने भी श्रुति संख्या 22 ही मान ली। वास्तव में अगर देखा जाये तो श्रुतियों की संख्या-22 से अधिक बढ़ायी जा सकती है तथा श्रुतियों के और भी सूक्ष्म विभाग हो सकते हैं।

पं0 अहोबल जी ने श्रुतियों के सम्बन्ध में कुछ नवीन कल्पनायें प्रस्तुत की है : -

श्रुतयः स्युः स्वराभिन्ना श्रावणात्वेन हेतुना
अहि कुण्डल वतत्र भदोक्तिः शास्त्र सम्मता
सर्वाश्च श्रुतयत्वात्तद् रागेषु स्वरतां गताः
रागहेतुत्व एतासां श्रुति संज्ञैव सम्मता।
श्रत्यनंतरमुप्तन्ना स्निग्धानुरपनात्मकः
रञ्जयन्ति स्वतः स्वान्त स्निग्धानुरपनामका: [2]

पण्डित अहोबल के प्रतिपादन का सारांश निम्न निर्दिष्ट है : -

---

1. संगीत समयसार पृ0 7-8 प्रथम अध्याय
2. संगीत पारिजात पृ0 18, श्लोक 38

1. श्रुतियां स्वरों से अभिन्न है।
2. प्रत्येक श्रुति किसी न किसी राग में स्वर बन जाती है। श्रुतियां रागोत्पत्ति का कारण है।
3. केशाग्र जैसे सूक्ष्म अन्तर पर श्रुतियां असंख्य होती हैं।
5. क्रिया भेद के कारण स्वर स्थानों में वैचित्र पैदा हो जाता है।

श्रुतियों की दप्तादि जातियां निर्माण होने में यही वैचित्र कारणीभूत है, उसी प्रकार श्रुतिगत जातियों का वर्णन करना भी असम्भव है, किन्तु श्रुतियों की दीप्तादि जातियां श्रवण प्रत्यक्ष है, एवं अपने नाम के अनुसार भाव निर्माण करती है।

6. स्वर अनुरणनात्मक और स्वयं रंजक होता है, जो श्रुति के पश्चात उत्पन्न होता है।

इस प्रकार अहोबल का श्रुति सम्बन्धी प्रतिपादन है। वास्तव में देखा जाये तो स्वर स्थापना की पद्धति स्वर से वादों पर आधारित होनी चाहिए जैसा कि पंडित अहोबल ने कहा है, स्वर स्थापना के लिए संवादों के ज्ञान की आवश्यकता को पंडित अहोबल ने ठीक ही बताया है -

स्वर संवादिता ज्ञान स्वर स्थापन कारणाम।[1]

श्रुतियों से ही स्वर उत्पन्न होते हैं। ऐसा मतंग का भी कथन है -

गृह्यन्ते श्रुतयास्तावत् स्वराभिव्यक्ति हतेवः।[2]

---

1. संगीत पारिजात पृ0 95, श्लोक 336
2. बृहद्देशी श्लोक 53

स्वर की निरुक्ति को संगीत में ग्रहण करते हुए संगीतकारों ने स्वर की निरुक्ति को इस प्रकार बताया है . -

राजृदीप्ताविति धातोः स्वशष्दपूर्वकस्य च

स्वयम् यो राजते यस्मात् तम्मादेष स्वर· स्मृत ।[1]

स्वर इति किम् उच्यते रागजन (रो ? की) रागरञ्जको

ध्वनि. स्वरा।[2]

अर्थात् स्व शब्द पूर्वक दीप्त्यर्थक राज धातु से स्वर शब्द की निष्पत्ति होती है, जो स्वयं राजित होते हैं, उनहें स्वर कहा गया है, शोभित होने वाले नाद स्वर है, तथा जो राग जनक ध्वनि है, वह स्वर है।

स्वर के बिना तो राग की कल्पना बेजान या व्यर्थ सी ही जान पड़ती है, राग के विस्तार के तत्वों के अन्तर्गत स्वरों का महत्वपूर्ण स्थान है। जिसके आधार पर राग का निर्माण होता है, उसी रंजक ध्वनि को स्वर कहा जाता है, यद्यपि वैदिक युगों में ही सात स्वरों का विकास हो चुका था, लेकिन फिर भी स्वरों की उत्पत्ति के विषय में अनेक प्रकार की कल्पनायें विद्वानों ने की हैं। संगीत रत्नाकर के अनुसार-

मयूर से षडज, चातक से ऋषभ, बकरे गन्धार क्रौंच पक्षी से मध्यम कोयल

---

1. वृहद्देशी 63-64 संगीत स0सा0 पृ0 10 श्लोक 37
2. वृह0 में रागजन (रो ? को) तथा सं0 स0 सार में राग रंज को ध्वनिः कहा है।

से पंचम मेढक से धैवत[1] तथा हाथि से निषाद। इसी प्रकार प्राचीन पंडितों[2] ने स्वरों की उत्पत्ति का सम्बन्ध प्राणियों तथा पक्षियों से स्थापित किया है।

स्वर सात ही क्यों ? इस विषय में सिंह भूपाल ने मतंग का निम्न वचन उदधृत किया है : -

तथा चोक्तं मतंगेन ननु कंथ सप्त स्वरा इति नियम ·

उच्यते यथा सप्तधात्वासितप्वेन सप्तैव धातवो रसादयास्य

तथा सप्तचक्राश्रितत्वेन सप्ता दीपाभितप्वने वा सप्तैव स्वरा इति।[3]

पं० शारंगदेव के अनुसार श्रुतियों से सप्त स्वरों की उत्पत्ति होती है।

श्रुतिभ्यः स्युः स्वराः षडजर्षभगांधार मध्यमाः।[4]

---

1. संगीत मकरंद के लेखक नारद ने धैवत की उत्पत्ति को घोड़े से कहा है।
2. प्राचीन पं० जिन्होंने इसी प्रकार स्वरों की निरुक्ति को बनाया है, वे कोहल महेश्वर, नारद तथा नाथ आदि हैं, नज्म द्वारा किया हुआ वर्णन कुछ भिन्न है।
3. संगीत रत्नाकर स्व0अ0 पृ0 79, सुधा टीका श्लोक 54-55
4. संगीत प्रभाकर भाग-1, स्व0अ0 पृ0 78

अभिनव गुप्त ने भी श्रुति से उत्पन्न स्निग्ध मधुर अनुरण न्त रंजक नाद को स्वर कहा है -

वय तु श्रुतिस्यानाभिघात प्रभवशब्द प्रभावितोऽनुरपनात्मा

स्निग्ध मधुर शब्द एव स्वर इति वक्ष्याम् ।[1]

श्रुति क पश्चात उत्पन्न होने वाला, स्निग्ध अनुरणनात्मक स्वयं रंजक नाद स्वर कहलाता है।

श्रुत्यनन्तर भावी यः स्निग्धोऽनुरपनात्मकः

स्वतो रञ्जयति श्रोतृचित्तं स स्वर उच्यते।[2]

मूलतः कंठ से उत्पाद्य ध्वनियों में से निश्चित तारता वाली ऐसी विशिष्ट ध्वनियां जिनका उपयोग संगीत में होता है, स्वर कहलाती हैं। 22 श्रुतियों में से 7 शुद्ध स्वरों की संख्या निश्चित की गयी तथा उसका प्रयोग संगीत मे हुआ। भरत ने सप्त स्वरों के साथ अंतर तथा काकली इस प्रकार स्वरों के भेद बतायें। ये सप्त स्वर मद्र, मध्य तथा तार भेद से 3 प्रकार के हैं।

---

1. अभि0ना0शा0अ0 28 पृ0 11, श्लोक - 21

2. संगीत रत्नाकर स्वराध्याय श्लोक 24, पृ0 82

विकृत स्वरों का उल्लेख सर्वप्रथम संगीत रत्नाकर से होता है। विकृत अवस्था में ये स्वर 12 बताये गये हैं। वे च्युत षडज अच्युत षडज विकृत थे, साधारण गन्धार, अंतर गन्धार, च्युत मध्यम, अच्युत विकृत प विकृतध कौशिक नी काकली नी इस प्रकार 12 तथा 7 शुद्ध स्वर मिलकर 19 हैं।

विकृत स्वरों की संख्या के विषय में भी मध्यकालीन ग्रन्थकारों में मतभेद है। संगीत रत्नाकर में जहां 12 विकृत स्वर कहे गये हैं वहां उसके उत्तर कालीन ग्रन्थकार पं0 रामामात्य के 7 शुद्ध 7 ही विकृत स्वर बताये हैं। लोचन के 8 विकृत तथा 7 शुद्ध स्वर तथा अहोबल के 7 शुद्ध, 8 कोमल विकृत, 14 नींव पुंडरेक विठ्ठल ने 7 शुद्ध और 7 विकृत स्वर कहे हैं।

भाव भट्ट जी तो इसमें भी आगे बढ़ते हैं, उसमें 42 स्वर नाम देते हैं, किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि वह राग वर्णन में इसके विषय में कुछ नहीं कहते।

वैसे आधुनिक संगीत में सात शुद्ध स्वरों के साथ पांच विकृत स्वर माने जाते हैं। इस प्रकार प्रचलित हिन्दुस्तानी संगीत पद्वति में शुद्ध विकृत मिलाकर बारह स्वर प्रचार में हैं।

इन शुद्ध विकृत स्वरों के अतिरिक्त भरत के समय से ही गायन में चार प्रकार के स्वरों का प्रयोग होता रहा है, जिन्हें वादी, संवादी, अनुवादी तथा विवादी के नाम से सम्बोधित किया जाता रहा है।

आजकल जो भी शास्त्रीय संगीत के नाम से गाया बजाया जाता है, वह सब राग गायन-वादन ही है, किन्तु राग गायन-वादन हमेशा से नहीं रहा है, इसका क्रमिक विकास हुआ है, राग के अविर्भाव के पूर्व जातियों का गायन वादन होता रहा है।

संगीत में रागों का पृथक नामकरण हुआ। अतः उनका शास्त्र भी निर्मित हुआ। रागा में रंजकता के लिए ताल और लय भी निश्चित हुए, जिससे कि वह रस को मूर्तिमान कर सके।

वादी - भरत के अनुसार जो अंश स्वर हैं, वही वादी स्वर हैं -

यत्र यो यदंशः सतदावादी।[1]

प्राचीन काल में ग्रह स्वर को सब जातियों का अंश स्वर कहा है -

ग्रहस्तु सर्वजातीनामंशो हि परिकीर्तिता।[2]

दत्तिल ने भी अंश को वादी कहा है -

अंश एव हि वादिति।[3]

---

1. ना0शा0अ0 28, पृ0 15
2. भा0भा0 मामर जा0अ0 पृ0 7
3. ना0शा0अभि0टीका अ0 28, पृ0 16

राग के सबसे मुख्य स्वर को वादी कहा जाता है। सिंह भूपाल ने वादी स्वर के विषय में इसी प्रकार का आशय प्रकट किया है। जाति तथा रागों के प्रयोग में जिस स्वर का बाहुल्य से प्रयोग होता है, वह अंश स्वर का पर्याय वादी है, इससे रागों के रागत्व को कहा जाता है। रागों में वादी स्वर का बहुत ही महत्व है।

प्रयोगे बहुलः स्वरः वादी राषा॰त्र गीयते के अनुसार -

1. वादी स्वर राग का प्रधान स्वर होता है और राग रूपी राज्य में उसका स्थान राजा के समान होता है।

2. वादी स्वर से राग गाने का समय जाना जा सकता है।

3. केवल वादी स्वर के परिवर्तन से कोई-कोई राग बदल जाता है, चाहे अन्य स्वर दोनों रागों के एक से हों जैसे - भूपाली तथा देशकार।

4. किसी स्वर समुदाय में वादी स्वर को पहचान कर यह बतलाया जा सकता है कि यह अमुक राग है।

5. वादी स्वर पर राग का सौन्दर्य निर्भर है।

इस प्रकार ग्रह स्थायी अंश जीव वादी स्वर का राग विस्तार में विशेष महत्व का स्थान है।

संवादी- वादी स्वर का अनुसरण करता हुआ संवादी स्वर का स्थान दूसरे नम्बर का है। वादी स्वर के अपेक्षा जिसका कम मुख्य स्वर को संवादी स्वर कहते हैं।

अमात्म इवतराउनुयायी सवादी

राग रूपी राज्य में सवादी स्वर की स्थिति अमात्म के समान है।

अनुवादी -

राग मेंअनुवादी स्वरों की स्थिति सेवक के समान है। वादी संवादी तथा विवादी स्वरां के अतिरिक्त जो स्वर राग में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें अनुवादी कहा जाता है। ये स्वर राग विस्तार में सहायक होते हैं।

नाट्यशास्त्र में अनुवादी के विषय में 'अनुवदनादनुवादीते' कहा गया है।

विबादी -

विवादी स्वर का प्रयोग राग में शत्रु के समान है। किन्तु उनका अल्पत्व रखते हुए थोड़ा सा प्रयोग तान इत्यादि में करने की आज्ञा भी शास्त्रों में है।

राग मंजरी में भीइस प्रकार का संकेत है -

विवादी तु सदात्याज्यः क्वचिन्तान क्रियात्यकः।[1]

अभिनव गुप्त ने विवादी स्वर को अखित् कहा है तथा उसका अल्प प्रयोग करने का संकेत किया है : -

अरिवद्विवादीत्वल्प।[2]

---

1. संगीत विशारद पृ0 110

2. ना0शा0 अभि0 अ0 28, पृ0 18

यद्यपि विवादी स्वर को अभिनव शारंगदेवादि ग्रन्थकारों ने शत्रु तुल्य [illegible] बताया है, फिर भी भातखण्डे जी का मत विवादी स्वर के विषय में इस प्रकार था कि यदि कुशलता पूर्वक कण के रूप में विवादी स्वर का प्रयोग कर दिया जाय और इससे राग की रंजकता बढ़ती हो तो मनाक स्पर्श के नाते यह कृत्य क्षम्य समझा जायेगा। भातखण्डे जी ने अभिनव राग मंजरी में इस प्रकार लिखा है : -

सुप्रमाणयुतो रागे विवादी रक्तवर्धक.
यथेवत् कृष्णवर्णेन शुभ्रस्यातिविचित्रता।[1]

वर्तमान समय में अनेक रागों में विवादी स्वरों का प्रयोग होने लगा है, जैसे हमीर, कामोद और गौड़ सारंग रागों में कोमल निषाद विवादी स्वर के नाते जब कण, स्पर्श या द्रुत लय के साथ प्रयुक्त किया जाता है, तो उस समय सुनने में अत्यन्त मधुर प्रतीत होता है। हिन्दुस्तानी संगीत में राग अपनी सीमा में बंधा हुआ है। अतः विवादी स्वर का प्रयोग उतनी ही मात्रा में करना चाहिए, जिससे राग में सौन्दर्य वृद्धि हो, तथा राग हानि न हो, अन्यथा उसे शत्रु तुल्य कहकर छोड़ देना ही उचित है।

राग विस्तार के तत्व से सम्बन्धित वर्ण शब्द राग की दृष्टि से व्यापक

---

1. संगीत विशारद पृ0 111

मौलिक है, वर्ण गाने की क्रिया को कहा जाता है -

गान क्रियोच्यते वर्ण स चतुर्धा निरूपतिः।[1]

वर्ण के बिना राग गायन असम्भव है, तात्पर्य यह है कि वर्णों के आधार पर ही स्वरों का विस्तार होता है, जिससे राग का रूप निखरता है।

संगीतोपयोगी आरोही, अवरोही, स्थायी और संचारी ये चार वर्ण हैं, और अलंकार इनके आश्रित हैं, जहां स्वरों का आरोह हो वहां आरोही वर्ण, जहां अवरोह हो वहां अवरोही वर्ण; जहां स्वर स्थिर और सम रहे, वहां स्थायी वर्ण तथाजहां सब वर्णों का सम्मिलित प्रयोग हो वहां संचारी वर्ण होता है।

वर्णों का विस्तार त्रिस्थान गुण गोचर अर्थात्त मन्द्र मध्य तथा तार तीनों स्थानों में बताया गया है।

वर्णों की संख्या सभी ग्रन्थकारों ने चार ही मानी है। हमारे आधुनिक संगीत में भी वर्णों की संख्या में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। राग में वर्ज्य आवर्ज्य स्वरों का ध्यान रखते हुए सभी वर्णों की सहायता से राग का विस्तार होता है।

---

1. संगीत रत्नाकर भाग (1) पृ0 151, श्लोक 1, वर्णालंकार प्रकरण।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय संगीत मे राग का एक विशिष्ट स्थान है। राग का दो अर्थों में प्रयोग हुआ है, एक सामान्य दूसरा विशेष। सामान्य अर्थों में राग रंजकता का वाचक है और विशेष अर्थों में वह एक ऐसी नादमय विशिष्टता का द्योतक है, जो स्वर देह और भावदेह से समन्वित है और रंजकता से तात्पर्य है जो राग सुखद एवं आनन्दायक है। नादमय विशिष्टता का अर्थ है कि प्रत्येक राग का एक निजी विशिष्ट भावमय रंग है, जो उन्हें दूसरों से पृथक करता है। राग एक पृथक भाव है जो अन्य रागों की अपेक्षा अपना स्वतन्त्र और विशिष्ट मास्तष्क रखता है।

संगीत में उसी स्वर समूह को राग कह सकते हैं, जिसमें रंग देने की शक्ति हो या दूसरे शब्दों में जिसका एक एक सविशेष व्यक्तित्व हो, इस सविशेष व्यक्तित्व के दो पहलू हैं एक स्वरमय और दूसरा भावमय।[1]

रागों के भावमय रूप को ध्यान में रखकर ही रागों के रूपों की कल्पना की गयी है। इस प्रकार नाद की उपासना में रागों के मानवीय रूप की कल्पना कर उनमें तन्मय होने में सुविधा रहती है। हिन्दुस्तानी संगीत में राग एक ऐसी विशेषता है, जो किसी अन्य देशों के संगीत में नहीं दृष्टिगत होती है। राग भारतीय संगीत की प्रमुख वस्तु है, इसी को मेलाड़ी कहते हैं। राग ही भारतीय संगीत की अपनी एक

---

1. निबन्धसंग्रह से उद्धृत पृ0 261-263

निजी विशेषता है, एक अमूल्य सम्पत्ति है।

राग एक सजीव रचना होती है। उसका प्रत्यक्षीकरण मानव को ब्रह्मानन्द की अनुभूति तक कराने में समर्थ होता है। उत्साह-विषद, आवेश, करूणा आदि भाव विशेष इन रागों में ही उत्पन्न होते हैं।

राग जाति का ही विकसित रूप है और जाति के मूल तत्वों पर आज भी टिका हुआ है। जाति राग की अपेक्षा अधिक सामान्य है जैसा कि उसके नाम से ही प्रकट है, सामान्यता और विशेषता का तारतम्य भेद होने पर भी जाति और राग में कोई विरोध नहीं है। इसलिए भरतोक्त जाति लक्षणों को ही राग के लक्षणों में स्थान मिला है।

जाति लक्षण के विषय में भरत कहते हैं -

ग्रहांशौ तारमन्द्रो च न्यासोऽपन्यास एव च
अल्पत्वच बहुत्वं च षाड्वौड्विते तथा।[1]

अर्थात् ग्रह अंश तार भद्र न्यास उपन्यास अल्पत्व बहुत्व षाडवित और औडवित ये दस जाति लक्षण है।

---

1. नाट्यशास्त्र अ0 28, पृ0 70

ग्रह -

जिस स्वर से राग का गाना बजाना आरम्भ हो वह स्वर ग्रह कहलाता है। ग्रह सब जातियों का अंश कहलाता है।

भरत ने अधिकांश जातियों में एकाधिक स्वरों को ग्रह अंश बताया है। इस विधान को दो दृष्टियों से देखना चाहिए। 1. शुद्धा जातियां, 2. विकृता संसर्गजा जातिया।

राग लक्षणों में ग्रह को आरम्भक स्वर ही समझते हैं और यही अर्थ शास्त्रीय दृष्टि से उचित भी है, वैसे तो गान या वादन क्रिया आरम्भ करते समय षडज का ग्रहण किया जाता है, क्योंकि अन्य स्वरों की तारता षडज के ही आधार पर निश्चित की जाती है, किन्तु निम्नांकित दो दृष्टिकोणों से राग का ग्रह स्वर षडज से भिन्न भी हो सकता है राग विस्तार में यानि आलाप तान में आरम्भिक स्वर भी ग्रह का स्थान लेता है। उदाहरण के लिए कल्याण, विहाग, जैसे रागों का आलाप, तान निरेग या नीसगमप से ही अधिक शुरू होती है। अतः यहां षडज के स्थान पर निषाद को राग का ग्रह स्वर कहना उचित होगा।

अंश -

जो स्वर अन्य स्वरों की अपेक्षा अपेक्षाकृत किसी राग में अधिक लगता है, उसे अंश का वादी स्वर कहते हैं। अंश को राग का प्राण स्वर भी कहते हैं।

भरत न अंश के लक्षण बताते हुए कहा है -

यस्मिन्साते रागस्तु यस्माच्चे ः पवर्नते

तेन वैतार मंदाणां योऽयथमुप लभ्यते।

मंद्र च तार विषया पंचस्वरपरागति.

अनेक स्वर संयोगों योऽत्यर्थमुपलभ्यते

अन्यच्च बलिनो यस्य संवादी चानुवाद्यापि

ग्रहाऽपन्यास सन्यास विन्यासाम्य सास गोचर:

परिवार्यस्वितोयस्तु सोऽशः स्याद्रदश लक्षण।[1]

अर्थात अंश उस स्वर को कहना चाहिए जो (1-2) राग या रंजकता का आवास हो, अथवा जो राग रंग या रस की अभिव्यक्ति में मुख्य उपकरण हो (3-4) मुख्य और तार में कम से कम पांच-पांच स्वरों तक जिसकी गति हो (5) जो अन्य स्वरों अथवा स्वर समूहों द्वारा परिवोष्टित हो (6) जिसके संवादी और अनुवादी स्वर भी बली हों (11-10) जो ग्रह उपन्यास सन्यास और विन्यास के अन्यास में याने उनके दुहराये जाने के समय उपस्थित रहता है।

[1] राग के मुख्य अंश या पंकड़ को अंश के पांचवे लक्षण का ही विकसित रूप कह सकते हैं, उदाहरण के लिए राग जयजयवन्ती का धनी रे अंश स्वर ऋषभ का परिवेष्टन दिखता हो।

---

1. नाट्यशास्त्र अ0 28, श्लोक 72-74, पृ0 266

न्यास उपन्यास -

ये संगीत में विराम चिन्ह का द्योतक है, संगीत में स्वरों के ठहराव का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। अतः न्यास का अर्थ है, जिस स्वर पर गायन-वादन समाप्त हो उस स्वर को न्यास का स्वर कहते हैं, जैसे देशकार में पचम आदि। राग में विभिन्न स्वरों के ठहराव की मात्रा में तारतम्य रहता है। इन नियमों का पालन भी हमारी राग पद्धति में जीवित है।

तार मन्द्र -

स्थान भेद अभिव्यक्ति का सबल साधन है, एक ही स्वर स्थान भेद से अर्थात मन्द्र मध्य तार स्थानों में प्रयुक्त होने से भिन्न-भिन्न प्रभाव उत्पन्न करता है, इसलिए राग के व्यक्तित्व में तार मन्द्र मर्यादा का भी बहुत बड़ा स्थान होता है।

अल्पत्व - बहुत्व

राग में विवादी और वर्ज्य से भिन्न किसी भी स्वर जिसका राग में प्रयोग होना आवश्यक माना जाता है, का न्यूनतम प्रयोग करने से ही उस स्वर का अल्पत्व प्राप्त है। किसी भी स्वर का दो प्रकार से अल्पत्व किया जाता है।

1. लंघन अर्थात आरोह एवं अवरोह के समय उस स्वर को जिसे अल्पत्व देना हो, उस स्वर को छोड़कर दिया जाता है।

2. अनभ्यास अर्थात उस स्वर का कम से कम प्रयोग एवं उस स्वर पर कम ठहर कर ही किया जाता है। जैसे कि हिंडोल राग में आरोह में निषाद स्वर का लंघन से और केदार राग के अवरोह में गंधार के अनभ्यास द्वारा अल्पत्व दिया जाता है।

उक्त स्वर दोनों रागों के विवादी व वर्ज्य स्वर नहीं है। बहुत्व का अर्थ है, अधिकता अर्थात् राग में वादी एवं संवादी स्वरों से भिन्न किसी भी स्वर का अधिक प्रयोग का उस राग में प्रधानता देने से ही बहुत्व होता है।

बहुत्व भी दो प्रकार से प्रयोग किया जाता है -

1. अभ्यास बहुत्व - अभ्यास द्वारा बहुत्व का प्रदर्शन करना उसे कहते हैं, जब किसी स्वर को बार-बार और देर तक दिखायाजाता है।

अंलघन बहुत्व - जब किसी राग के आरोह या अवरोह में उस स्वर को त्यागा न जाये, और न ही उस पर अधिक रुका जाये तो उस स्वर को अलंघन बहुत्व का स्थान प्राप्त होता है।

षाडव औडव इन लक्षणों का राग में प्रयुक्त होने वाले स्वरों की संख्या के साथ सम्बन्ध है। स्पर्श स्वरों या कणों का भी राग में बहुत महत्व होता है। भारतीय संगीत की यह एक बड़ी विशेषता है कि उसमें खड़े स्वरों का प्रयोग प्रायः

नहीं होता। स्वरों के लगाव की यह विशेषता राग रूप के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। कुछ रागों का अस्तित्व ही इन स्पर्श स्वरों पर टिका हुआ है। उदाहरण के लिए राग शंकरा का गपग‿रेस यह टुकड़े स्पर्श स्वरों के बिना उन रागों का दर्शन कदापि नहीं करा सकते। स्वर प्रयोग की य सूक्ष्मतायें राग के व्यक्तित्व के क्रामक विकास की द्योतक है। हमारी भारतीय संगीत की राग पद्धति विकास की जिस उच्च भूमिका पर आरूढ़ है, उसका एक उदाहरण यह भी है कि राग रूप का पूरा विस्तार किये बिना भी केवल एकाध टुकड़े के प्रयोग से ही राग पहचान में आ जाता है।

राग व्यक्ति की स्वर देह और भाव देह बनती है, प्रत्येक राग सुखप्रद होने के अर्थ में तो रंजक होता ही है, किन्तु साथ ही उसका अपना एक वैशिष्ट्य होता है। 'राग' में ही हमारे भारतीय संगीत के गौरव के उच्चतम शिखर का दर्शन होता है, क्योंकि राग में असीम अनंत विकास का क्षेत्र निहित है, जो अपने मूल रूप में अपरिवर्तित होने पर भी नित्य नवनवायमान है।

इन राग विस्तार के तत्वों के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि रागों को गाने के लिए इनमें से प्रत्येक का होना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा राग का पूर्ण रूप से वितार असंभव होगा।

xxx

अध्याय-चतुर्थ

'राग वर्गीकरण' ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन'।

राग वर्गीकरण की प्राचीनतम प्रणाली ग्राम राग देशी राग है। शार्ङ्गदेव ने राग वर्गीकरण दश वर्गों में किया है, जो इस प्रकार है - ग्राम राग, राग, उपराग, भाषा, विभाषा, अन्तर भाषा, रागांग भाषांग क्रियांग एवं उपांग, मध्य काल में राग रागिनी वर्गीकरण प्रचार में आया इसके अनेक मत प्रचलित थे, जिनके नाम इस प्रकार हैं

1. नारद मत, 2. भिषकर्णामत, 2. सोमेश्वर मत, 4. भरत मत, 5. रागार्णवमत, 6. हनुमन्मत, 7. शिवमत, 8. कल्लिनाथ मत, 9. पुण्डरीक विट्ठल मत।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में राग वर्गीकरण के कई प्रकार प्रचार में रहे हैं। रागों के विकास के पश्चात, विद्वानों ने राग वर्गीकरण के महत्व को पहचाना और अपने मतानुसार तत्कालीन समय में प्रचलित रागों का वर्गीकरण अपने-अपने मतानुसार किया।

राग रागिनी वर्गीकरण में भाव पक्ष पर दृष्टि केन्द्रित की जाती थी। उसमें स्वरों की महत्ता कम दी जाती थी। इनमें पर्याप्त मतभेद था। एक ही राग किसी में मुख्य राग है, तो दूसरे में वही पुत्र राग है और तीसरे में वही रागिणी है।

मध्यकाल में मेल वर्गीकरण प्रचलित हुआ। सर्वप्रथम विद्यारण्य ने तत्कालीन प्राप्त पचास रागों को पन्द्रह मेलों में वर्गीकृत किया है।[1]

आगे चलकर रामामात्य, सोमनाथ, व्यंकटमुखी आदि ने इसी पद्धति को स्वीकार किया है, किन्तु मेलों की संख्या सबसे भिन्न है।

आधुनिक काल में उत्तर भारत में थाट राग वर्गीकरण प्रचलित हुआ। 'थाट' शब्द सर्वप्रथम सोमनाथ के 'राग बिबोध' नामक ग्रन्थ में प्राप्त है, जो इस प्रकार है :-

मिलन्ति वर्गीभवन्ति रागा यत्रेतितदा सायाः
स्वर संस्थान विशेषामेलाः थाट इति भाषाणाम् ते कथयन्ते।

यह पर्दों वाले वाद्यों के लिए ठाठ (ढांचा) मिलाना इस अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। पर्दों को आगे पीछे करके अभीष्ट रागानुसार स्वर प्राप्त करना ठाठ प्राप्ति कहलाता है।मेलठाठ एवं थाट इन तीनों शब्दों मूलतः कोई भेद नहीं है।

रागों को वर्गीकृत करने में अनेक ढंग हो सकते हैं, जैसे स्वरों की दृष्टि

---

1. राग बिबोध 31, पृ0 79

से अंग (स्वरूप) की दृष्टि से, समय की दृष्टि से वादी संवादी (पं0 भातखण्डे के अनुसार) की दृष्टि से रस की दृष्टि से इत्यादि।

पं0 भातखण्डे का दृष्टिकोण स्वरों पर केन्द्रित रहा। इसलिए उन्होंने थाट राग पद्धति स्वीकार की और उन्होंने प्रायः सभी रागों को 10 थाटों में वर्गीकृत कर दिया।

व्यंकटमुखी के 72 मेलों में से उन्होंने मात्र 10 मेल (थाट) स्वीकार किये। इसके विषय में 'श्री मल्ल लक्ष्य संगीतम्' में पं0 भातखण्डे का कथन है : -

द्विसप्तक्वितैलकेषु व्यक्त्वा तानानवश्यकान्

स्वीकुर्मी दश संख्या स्तान् लक्ष्यवर्त्यांनोवेश्रुतान्।[1]

दक्षिणी रागों में एक स्वर के दो-दो रूप प्रयुक्त होते हैं। इसलिए वहां ऐसे मेलों को भी स्वीकार करना पड़ा, जिनमें एक स्वर के दो-दो रूप (चाहे वे भिन्न नाम से ही क्यों न हो) है। उत्तरी रागों में पं0 भातखण्डे ने अनेक स्थलों एक स्वर के दोनों रूपों का एक साथ प्रयोग अग्राह्य कहा है। इसलिए उत्तरी पद्धति के लिए उन मेलों को ग्रहण करने का प्रश्न ही नहीं था। जिनमें उत्तर की दृष्टि से रेरे, गग, म, ध्ध और नी, नी एक साथ प्रयुक्त होते हैं। शेष 32 थाटों में दक्षिण की भांति एक स्वर के दो-दो रूप नहीं आते। उनके बनाने की प्रक्रिया एवं 10 थाटों के चुनाव पर कुछ अधिक प्रकाश डाला जा रहा है।

पं0 भातखण्डे के अनुसार -

रागांग स्वरों का ऐसा समुदाय होता है, जो राग रूपी शरीर का मुख्य भाग (अंश) होता है।[1]

तथा इन अंगों के आधार पर जो वर्गीकरण किया जाता है। उसे रागांग वर्गीकरण कहा जाता है। रागांग के बिना रागों की स्वतन्त्र विशेषता नहीं रहती। रागांग के आधार पर ही समान स्वर वाले रागों को पृथक पहचाना जा सकता है।

आधुनिक संगीत में रागांग का यही अर्थ समझा जाता है, जैसे काफी थाट में प्रयुक्त मल्हार अंग 'मरेप' अतः जिन रागों में मल्हार अंग से यह स्वर समुदाय प्रयुक्त होगा, उससे श्रोताओं को विदित हो जाता है कि यह मल्हार का प्रकार है।

नारद ने राग वर्गीकरण को कई प्रकार से बताया है। संगीत मकरंद में राग वर्गीकरण के निम्नलिखित रूप मिलते हैं : -

1. सूर्यांश राग (प्रातःकालीन राग) मध्यकालीन राग तथा चन्द्रांश राग।
2. सम्पूर्ण षाडवादि अवस्था के अनुसार -

   सम्पूर्ण राग, षाडव राग औडव राग।

---

1. भारतीय शास्त्रीय शास्त्र भाग - 4

3. लिंग के अनुसार - पुल्लिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसक राग। इन तीनों निर्गों के अन्तर्गत रागों का रसानुकूल प्रयोग संगीत मकरंद में कहा है।

4. रागांग राग - इस श्रेणी में नारद के कुछ राग पृथक रूप से रखे हैं। यह राग भेद शारंगदेव के वर्गीकरण का एक अंग प्रतीत होता है।

संगीत जगत में एक और नारद हुए हैं जिन्होंने चत्वारिंशत् राग निरूपणम् नामक ग्रंथ में दस पुरूष राग, प्रत्येक की 5 स्त्रियां, 4 कुमार एवं 4 पुत्रवधू की कल्पना करके राग रागनियों के परिवार का वर्णन किया है।

जौनपुर के सुल्तान हुसैनशाह शर्की भी रागांग पद्धति को मानने वालों में से थे, उन्होंने श्याम के बारह प्रकार बताये हैं, जिसका उल्लेख फाकेरूल्ला के राग दर्पण के दूसरे अध्याय में मिलता है।

गौड़श्याम, श्याम मल्हार, भूपाल श्याम, किन्नर श्याम, सोहंग श्याम, पूर्ण श्याम, सम्पूर्ण श्याम, श्याम राग, मेघ श्याम, वसंत श्याम, सम्पूर्ण श्याम, श्याम गोदाई, गौड़ श्याम।[1]

---

1. राग दर्पण पृ0 78 से उदधृत ।

पंडित अहोबल भी रागों के वर्गीकरण की भेद पद्धति को मानते थे, यद्यपि उन्होंने संगीत पारिजात में मुख्य रूप से मेल वर्गीकरण को स्वीकार किया है, किन्तु उन्होंने बिलावल के प्रकार गौड़ के प्रकार, नट के प्रकार, तोड़ी के प्रकार तथा मल्हार के प्रकारों का वर्णन किया है।

मध्य युग में राग रागिनी वर्गीकरण के प्रमुख ग्रन्थों में शुभंकर का संगीत दामोदर, पुडरिक विट्ठल की राग माला, दामोदर पंडित का संगीत दर्पण इत्यादि ग्रन्थ पन्द्रहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के काल में प्राप्त होते हैं।

पं० दामोदर ने संगीत दर्पणकर्ता में रागों की उत्पत्ति के पश्चात् तीन मतों से राग रागिनी वर्गीकरण प्रस्तुत किया है।

1. शिवमत - इस मत के अनुसार छः राग तथा प्रत्येक की छः भार्याओं का वर्णन किया गया है। इस प्रकार इस मत में 6 राग, 36 रागिनियों का समावेश है।

2. हनुमत मत - इस मत मतानुसार छः राग तथा प्रत्येक की पांच रागिनियों का वर्णन है, कुल मिलाकर छः राग, तीन रागिनियां हैं।

3. रत्नार्णव के मतानुसार छः राग तथा प्रत्येक की पांच रागनियां कही गयी हैं।

उपर्युक्त तीनों मतों मे भिन्न-भिन्न रागनियों का प्रयोग हुआ है। इस वर्गीकरण का शास्त्रीय आधार क्या रहा, इस पर कोई चर्चा पंडित दामोदर ने नहीं की है।

पन्द्रहवीं शताब्दी के भट्ट शुभंकर ने एक मत से छ: राग तथा 30 रागिनियों तथा दूसरे मत से छः राग तथा छत्तीस रागिनियां बतायी हैं। पुण्डरीक विट्ठल ने राग माला नामक ग्रन्थ में छः राग तथा प्रत्येक की पांच स्त्रियां एवं पांच पुत्र कहे हैं। अबुल फजल ने आईने अकबरी में राग रागिनी वर्गीकरण को स्वीकार किया है।

शारंगदेव का राग वर्गीकरण -

प्राचीन काल का अन्तिम तथा मध्यकाल का आरम्भिक इस प्रकार संधिकाल का एक मात्र मुख्य आधारभूत ग्रन्थ पंडित शारंगदेव का संगीत रत्नाकर है। संगीत में कई परिवर्तन हो रहे थे, जिसके फलस्वरूप शारंगदेव ने रागों के वर्गीकरण की नवीन पद्धति को अपनाया।

पण्डित शारंदेव के अनुसार ग्राम रागों के पांच प्रकार माने जाते थे, ये पांच प्रकार के ग्राम राग पांच प्रकार की गीतियों पर आधारित थे -

फञ्चधा ग्रामरागास्यु: फञ्चगीति समाश्रयात्[1]

---

1. संगीत रत्नाकर भाग-1, रा0अ0 पृ0 3

ये पांच प्रकार की गायन शैलियां थी तथा इनकी अपनी-अपनी विशेषता थी -

पंडित शारंगदेव ने तीस ग्राम रागों को पांच गीतियों में वर्गीकृत किया। ग्राम रागों के पश्चात उपरागों की श्रेणी का कहा गया है। जाते से उत्पन्न तथा ग्राम रागों के समीपस्थ होने के कारण इनको उपराग कहा जाता है -

जातिभ्यो जातानामपि ग्रामराग समीप भावित्वादष्टानामुपरागत्वम्[1]

उपरागों की संख्या आठ कही गयी है, जिनके राग शक तिलक, टक्कसैंधव, कोकिला पंचम, रेवगुप्त, पचमषाडव, भावनापंचम, नाग गन्धार, नाग पंचम है।

रागों की संख्या बीस कही गयी है, जिनके नाम श्री, नट्ट, प्रथम बंगाल, द्वितीय बंगाल, भास, मध्यम षाडव, रक्तहंस, कोल्हहास, प्रसव, भैरव, ध्वनि, मेघराग, सोमराग, प्रथम कामोद, द्वितीय कामोद, आम्रपंचम, कंदर्प देशाख्य, ककुभ कौशिक तथा नट्ट नारायण है।

ग्राम राग, उप राग, राग, भाषा, विभाषा, अन्तर भाषा रागों के प्रकार बताने के पश्चात् शारंगदेव ने देशी संगीत के अंतर्गत रागांग, भाषांग, क्रियांग तथा उपांग

---

1. संगीत रत्नाकर रा0अ0कल्लि0 टीका पृ0 9

इन चार भागों में पूर्व प्रसिद्ध तथा अधुना प्रसिद्ध रागों का वर्गीकरण किया है : -

रागांग राग -

जिन रागों में ग्राम रागों की छाया उपस्थित होती है, उसे रागांग राग कहा जाता है।

भाषांग राग -

जिन रागों में भाषा रागों की छाया होती है, उन्हें भाषांग राग कहा जाता है।

क्रियांग राग -

क्रियांग राग वे हैं, जिनमें करूणा, शोक, उत्साह, आदि की क्रिया होती है तथा उपांग राग वे हैं, जिनमें ग्राम रागों की किंचित छाया मात्र हो।

इस प्रकार संगीत रत्नाकर में पूर्व प्रसिद्ध रागों के अन्तर्गत आठ रागांग 11 भाषांग, 12 क्रियांग तथा 3 उपांग मिलाकर कुल 34 रागों का उल्लेख है। अधुना प्रसिद्ध रागों में 13 रागांग, 9 भाषांग, 3 क्रियांग, 27 उपांग राग मिलकर कुल 52 रागों का उल्लेख है।

---

1. संगीत रत्नाकर, रा0अ0कल्लि0 पृ0 15

एक अन्य वर्गीकरण की पद्धति है, जिसका उल्लेख कुछ ग्रन्थों में मिलता है, वह है शुद्ध छायालंग संकीर्ण राग वर्गीकरण।

संगीत मकरंद में शुद्ध संकीर्णादि भेद से रागों के विभाग इस प्रकार कहे गये हैं : -

यथाद्यु पक्रमेणैव राग: शुद्ध उदाहत·
उपक्रम्य यथा रागो मेलनं समामेसकम्
पुन स्तन्मार्गसमकं रागरंग: प्रकीर्तित:
संकीर्ण राग मिश्राणां राग: संकीर्ण उच्यते।[1]

संगीत दर्पण के लेखक पंडित दामोदर ने राग के तीन भेद बताये हैं : -

शुद्धश्चछायालंगा: प्रोक्ता: संकीर्णश्च तथैवच।[2]

अर्थात राग के तीन भेद हैं, जिन्हें शुद्ध छायालंग तथा संकीर्ण कहते हैं। शुद्ध राग वे हैं, जिन्हें पूर्ण तथा शास्त्रोक्त रीति से गाने से आनन्द प्राप्त होता है। छायालंग रागों में दो रागों का मिश्रण होकर रंजन होता है। संकीर्ण राग में शुद्ध तथा छायालंग इन दोनों रागों का मिश्रण होकर आनन्द प्राप्त होता है।

---

1. संगीत मकरंद पृ0 23-24, श्लोक 52-3
2. संगीत दर्पण पृ0 72

इस प्रकार के वर्गीकरण का महत्व मध्यकालीन कुछ अन्य ग्रन्थकारों ने भी स्वीकार किया है।

इसी प्रकार का वर्गीकरण फकिरुल्ला ने राग दर्पण के द्वितीय सर्ग के मान कौतूहल के अनुसार रागों का वर्णन किया है, जिनमें उन्होंने रागों के छः प्रकार- शुद्ध राग, संकीर्ण, सालग, सम्पूर्ण, षाडव तथा ओढव कहे हैं।

फकिरुल्ला के अनुसार शुद्ध राग छः हैं, जिनके नाम भैरव, मालकोस, हिंदोल, दीपक, श्री तथा मेघ हैं। संकीर्ण रागों से तात्पर्य इन उपर्युक्त रागों की रागिनियों और पुत्रों से है।

सालंग उन गीतों को कहते हैं, जिनका वर्तमान आचार्यों ने इनके अतिरिक्त अविष्कार किया है। मौलिक प्रतिभायुक्त व्यक्तियों के द्वारा कुछ रागों को मिलाकर नवीनराग का अविष्कार करने को सालंग कहने लगे।[1]

सम्पूर्ण राग उसे कहते हैं, जिनमें सातों स्वर काम में लाये जांय, षाडव राग उसे कहते हैं, जिनमें छः स्वर हों और ओडव पांच स्वर वाले राग कहलाते हैं।

---

1. मानसिंह और मान कौतूहल पृ0 62

रागों के सम्पूर्ण षाडव, ओडव भदों का प्रचलन आधुनिक संगीत में भी है। रागों में प्रयुक्त होने वाली स्वर संख्या के आधार पर उन्हें षाडव, ओडव और सम्पूर्ण कहा जाता है। सत्रहवीं शताब्दी में रचित संगीत पारिजात में अहोबल ने अपने राग वर्गीकरण का आधार मेल पद्धति को ही बनाया। संगीत पारिजात के सप्तक के शुद्ध स्वर ठीक वहीं हैं, जो हमारे आधुनिक काफी थाट के स्वर हैं। अहोबल ने अपने पारिजात में लगभग ।। रागों का वर्णन किया है। प्रत्येक राग का वर्णन करते समय वह उसमें लगने वाले स्वरों - आरोही, अवरोही, ग्रह, न्यास और मूर्च्छना के स्वरों का वर्णन करते हैं।

अहोबल ने अपने रागों की व्याख्या संगीत पारिजात में इस प्रकार की है : -

शुद्धमेलोद्भवः पूर्णो धैवतादिक मूर्छनः

आरोहे गानि वर्ज्यः स्याद्रागः सैंधवनामकः

आम्रेडित स्वरैर्युतः स्फुरिते न च शोभितः इते सैंधवः। [1]

वर्गीकरण की यह एक पद्धति है, जिसका उल्लेख मध्य युग में होता है। रागों के प्रकारों के रागांग प्रकार के रागों का उल्लेख तथा वर्णन नान्यदेव, शारंगदेव, कुम्भ आदि ग्रन्थकारों ने बताया है।

---

1. सभी ग्रन्थकारों के वर्गीकरण को परिशिष्ट के अन्तर्गत देखा जा सकता है।

कल्लिनाथ के अनुसार[1] रागांग राग वे हैं, जिनमें ग्राम रागों की छाया हो, इसमें कल्पना की जा सकती है कि एक मुख्य राग की छाया (किसी विशेष श्वर समुदाय द्वारा) भिन्न-भिन्न रागों में उपस्थित हो, तब उसे उस राग का रागांग कहा जाता होगा।

आधुनिक संगीत में रागांग का अर्थ समझा जाता है, जैसे काफी थाट में प्रयुक्त मल्हार अंग 'मरेप' है, अतः जिन रागों में मल्हार अंग से यह स्वर समुदाय प्रयुक्त होगा, इससे लोग जान जाते हैं कि यह मल्हार का प्रकार है।

पन्द्रहवीं शताब्दी में कई राग प्रचार में थे, यह संगीत राग, पुंडरीक विट्ठल के अन्य तथा अन्य कई ग्रन्थों से विदित होता है।

अत. इनका वर्गीकरण केवल 6 राग तथा 36 रागिनियों में करने योग्य प्रतीत नहीं होता। इस वर्गीकरण के लिए क्या वैज्ञानिक आधार था। इसका स्पष्टीकरण ग्रन्थों से नहीं होता।

श्री कण्ड जी रस कौमुदी में मेल एवं राग रागिनी पद्धति का समन्वय करने की चेष्टा की है। फलस्वरूप ग्यारह मेलों के अन्तर्गत 23 पुरूष राग एवं

---

1. संगीत रत्नाकर भाग-2, पृ0 15 कल्लिनाथ।

पन्द्रह स्त्री रागिनियों का उल्लेख किया गया है।

आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत पद्वति म कई गम्भीर प्रकृति के पुरूष राग तथा कई चंचल चपल नारी स्वभाव के राग विद्यमान हैं, किन्तु आज उन्हें हम राग रागिनी में वर्गीकृत न करके राग से ही सम्बोधित करते हैं। उनके स्त्री पुरूष स्वभाव दर्शन उनके चलनानुसार ही हो जाते हैं।

राग परिवार अत्यन्त विशाल तथा समृद्ध है। इन्हें 6 राग तथा 36 रागिनियों के बंधन में बंधना सम्भव प्रतीत नहीं होता। यद्यपि इनमें स्त्री पुरूषत्व के गुणों को देखा जा सकता है, किन्तु इस आधार पर सम्पूर्ण रागों को वर्गीकृत करना जटिल समस्या है। अत. इस वर्गीकरण का प्रचार कम होने लगा।

पण्डित भातखण्डे जी ने काफी थाट के पांच अंग माने हैं। काफी अंग, धनाश्री अंग, कांहड़ा अंग, सारंग अंग, मल्हार अंग। इन रागों से विशेष प्रकार का स्वर समूह चुनकर उनका प्रयोग जिन रागों में होता है, उन्हें उस रागांग से जाना गया है, जैसे मल्हार में मरेप का पुन:-पुन: प्रयोग होता है। अत: यह स्वर समूह प्रयुक्त होने वाले रागों में शुद्ध मल्हार, गौड़ मल्हार, मियां मल्हार, सूर मल्हार, आदि मल्हार प्रकारों का समावेश होता है, तथा ये मल्हार अंग के रागों के नाम से जाने जाते हैं।

आधुनिक काल में उपर्युक्त वर्णित वर्गीकरणों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार भी प्रचार में हैं।

यह वर्गीकरण रागों के गायन समय पर आधारित है। प्राचीन काल से आधुनिक काल तक के ग्रंथों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि रागों को उनके नियत समय पर गाने जाने की प्रथा थी। सभी विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में रागों के गायन समय को बताया है। इस प्रकार वर्गीकरण का विशुद्ध रूप से वर्णन पं0 भातखण्डे ने अभिनव राग मंजरी में इस प्रकार किया है : -

स्वर विकृत्वयधीना: स्युस्त्रयो वर्गा व्यवास्थिता:

रागाणामिह मर्मज्ञै गनिसौन्दर्य हेतवे।[1]

राग में प्रयुक्त होने वाले स्वरों की संख्या के आधार पर जो वर्गीकरण किया जाता है, उसे स्वर संख्याश्रित वर्गीकरण कहते हैं। राग में प्रयुक्त होने वाली स्वर संख्या के अनुसार यह तीन प्रकार का होता है - :

सम्पूर्ण राग - जिनमें सातों स्वर का प्रयोग होता है।

षाडव राग - जिनमें छ: स्वर होते हैं।

औडव राग - जिनमें पांच स्वर होते हैं।

---

1. भारतीय संगीत शास्त्र भाग-4, पृ0 22

रागों के मुख्यत. तीन वर्ग माने जाते हैं : -

1. रे ध तीव्र वाले राग।

2. रेध कोमल वाले राग

3. गनि कोमल वाले राग

तीनों प्रकार के रागों का सम्बन्ध दिन तथा रात्रि के घटों से स्थापित करके दसों थाटों के रागों को वर्गीकृत किया है।

इस वर्गीकरण में मध्यम स्वर का विशेष महत्व है, जिसके आधार पर राग दिन तथा रात्रि के समय में विभाजित होते हैं तथा उनका गायन समय निश्चित किया जाता है।

वर्गीकरण की इसी प्रकार की अन्य पद्वति पूर्व राग, उत्तर राग वर्गीकरण की है। यह वर्गीकरण राग के वादी स्वर पर आधारित होता है। जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के पूर्वांग में होता है, वे पूर्वांग वादी राग तथा उनका गायन समय बारह बजे दिन से बारह बजे रात्रि तक के समय गाये बजाये जाते हैं।

जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के उत्तरांग में होता है वे उत्तरांगवादी तथा उनका गायन समय बारह बजे रात्रि से बारह बजे दिन के समय में गाये बजाये जाते हैं। पूर्वांग राग तथा उत्तरांग राग भेद के कारण एक ही स्वर के दो रागों को

अलग किया जा सकता है।

संगीत सदैव से ही परिवर्तनशील रहा है। लोक रुचि के अनुसार इसमें निरंतर परिवर्तन होता है। अतः समय-समय पर विद्वानों द्वारा अपना मत प्रस्तुत करना स्वाभाविक ही है, जिसमें संगीत के कई भिन्न-भिन्न रूप प्रस्तुत किये गये हैं।

xxx

अध्याय - पंचम

राग और रस

रस का विषय अनिवार्यतः मनोवैज्ञानिक है, भौतिक नहीं है। मानव के मन पर किसी एक विशेष स्वर का क्या प्रभाव होता है। यह मनोविज्ञान का विषय है, जैसे रस प्रत्येक भाषा में किसी न किसी रूप में आता है। सहस्त्रों वर्ष के इतिहास की परम्परा के पश्चात कला, सौन्दर्य सम्बन्धी अवधारणा बनी है।

भारतीय शास्त्र और जीवन में रस शब्द का कई अर्थों में प्रयोग होता है। लोक प्रिय अर्थ है सार तत्व। जब हम कहते हैं हमें संतरे का रस चाहिए तो हमारा आशय होता है कि संतरे का सार निकाल कर दें तथा उसका अनावश्यक गूदा, छिलका, बीज फेंक दें। सार मधुर होना चाहिए, माधुर्य और आनन्द प्रधान सार ही रस हो सकता है। हम नीम का सार कभी नहीं मांगते क्योंकि कड़वाहट में माधुर्य नहीं होता। आनन्ददायक सार ही रस का अर्थ है। सारी सृष्टि आनन्द से ही उद्भूत ब्रह्मा के आनन्द से अभिव्यक्ति ही रस है, उपनिषद में कहा है : -

---

1. संगीत में रस तत्व से उद्धृत पृष्ठ 148-149

जहां आनन्द का अतिरेक होता है वह किसी न किसी सृष्टि में अभिव्यक्त हो जाता है। वहां हमारा कोई स्वार्थ नहीं होता। जब हमें किसी को समझाना होता है, कोई बात कहनी होती है, तब हम बोलते हैं, जब आनन्द अतिरेक होता है, तब हम गाते हैं, जब किसी को सन्देश भेजना होता है, तो पत्र लिखते हैं, अत्यधिक आनन्दित होने पर चित्र बनाते हैं, किसी स्थान विशेष तक पहुंचने के लिए हम चलते हैं, परन्तु आनन्द में नाचने लगते हैं। अतः रस का सम्बन्ध आनन्द से जुड़ा है।

रस का भाव आनन्द का भाव है, परन्तु एक राग एक ही रस की उत्पत्ति कर रहा हो, यह कहना कठिन है। बिहाग, देशी, पूरिया करूण प्रधान राग हैं। परन्तु सभी रागों का स्वर सन्निवेश अलग-अलग हैं और उनका तदनुरूप करूण प्रभाव भी भिन्न हैं, अब तो स्वर सन्निवेश को समझे बिना एक स्वर में ही परिवर्तन करके जैसे बागेश्वरी के ऋषभ को कोमल करके एक नया राग बना देने की परम्परा चल पड़ी है।

संगीत की रसात्मक अभिव्यक्ति सूक्ष्मतम होती है। किसी भी कला का उपादान जितना सूक्ष्म है, अभिव्यक्ति वैसी ही सूक्ष्म होगी। शिल्पी के उपादान ईंट, पत्थर, छेनी, अत्यन्त स्थूल हैं। अतः शिल्प में भावों की सूक्ष्माभिव्यक्ति नहीं हो पाती। मूर्तिकार के उपादान धातु पत्थर आदि है। अपनी महीन छेनी से वह मूर्ति में झुर्रियाँ उभार उठान आदि के साथ अनुभाव की अभिव्यक्ति अवश्य करता है। परन्तु हृदय के भावों को प्रतिमा के माध्यम से पूर्णतः व्यक्त करना सम्भव नहीं हो पाता। चित्रकला की तूलिकायें रंग जैसे उपादानों द्वारा रेखाओं, रंगों की मौन अभिव्यक्ति, सूक्ष्म

भावों को मुखरित नहीं होने देती। अतः भावों की सूक्ष्मतम अभिव्यक्ति संगीत द्वारा ही सम्भव है।

संगीतज्ञ रस निष्पत्ति कैसे करता है, 'संगीत रत्नाकर' में इस पर विचार किया गया तथा 96 प्रकार गिनाये गये हैं, जिनसे रस निष्पत्ति सम्भव है। भरत ने लिखा है, कोमल, गांधार, निषाद करूण की अभिव्यक्ति करते हैं, परन्तु बहार में यही दोनों स्वर जिस सन्निवेश में आते हैं, उससे उल्लास की अभिव्यक्ति होती है। सन्निवेश अलग होने के कारण रस में भिन्नता अपरिहार्य है। एक स्वर से कभी रस निष्पत्ति नहीं हो सकती। अतः रागों के स्वर सन्निवेश के अनुसार रस अपना रूप बदलता रहता है। गिरगिटकी भांति जो मटमैली भूमि में मटमैले रंग में दृष्टिगोचर होने लगता है, हरे रंग में हरा रंग, पीली पत्तियों में पीला और लाल प्रकृति में लाल रंग ग्रहण कर लेता है। यमन तथा तिलक कामोद में गांधार लगता है, परन्तु अलग-अलग ढंग से, अलग-अलग रस की निष्पत्ति करता है। केदार में मध्यम लगता है तो प्रतीत होता है कि चांदनी छिटक रही है। वही मध्यम जब भीमपलासी स्वरों के साथ प्रयुक्त होता है तो उसका प्रभाव शान्त उदासी में बदल जाता है।[1]

काकु भेद रस निष्पत्ति का अन्य महत्वपूर्ण साधन है। काकु का अर्थ है ध्वनि की लोलता अथवा लचीलापन अथवा हृदय के उन्ताप भाव को अभिव्यक्त करने वाला ('मोडुलेशन आफ वायस) काव्य तथा संगीत में अन्तर है। संगीत में

---

1. संगीत में रस तत्व से उद्धृत पृ0 152-153

रूपकालाप्ति, अलप्ति की सुकुमारता एक-एक भाव के सूक्ष्मतम भेद, ध्वनि काकु द्वारा संगीत के विभिन्न रूपों में व्यक्त होते हैं। यह अभिव्यक्ति संगीत में ही सम्भव है। संगीत में शब्द भूल जाना होगा, स्वरों तथा सूक्ष्म भावों को सुनना होगा तभी रस का आनन्द मिलेगा।[1]

भरत ने आठ रस बतलाये तो आचार्य विश्वनाथ केवल अद्‌भुत रस मानते हैं। आनन्द से हम चमत्कृत हो जाते हैं, अतः वही प्रमुख रस है। भोज 'श्रृंगार प्रकाश' में केवल श्रृंगार को ही रस मानते हैं। उनके अनुसार श्रृंगार को रति की अपेक्षा सौन्दर्य बोध या सौन्दर्य की सृष्टि माना जाना चाहिए। अभिनव गुप्त केवल शान्त रस मानते हैं। अन्य रस प्रकृत है। मूल प्रकृति के स्थान पर चित्तवृत्ति को पकड़े और रस साधना करें। चित्त वृत्तियों की तीन स्थितियां हैं - प्रसाद, ओज और माधुर्य -

'आह्लादकत्वं माधुर्य श्रृंगारे द्रुतिकारणम्'[1]

चित्त के द्रवीभाव का कारण और श्रृंगार में विद्यमान जो आह्लादस्वरूपत्व है वह माधुर्यगुण है -

करूणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्

यह माधुर्य करूण विप्रलंभ और शान्त में अधिक होता है।

---

1. लेखक डा० जयदेव सिंह

चितस्य विस्तार रूपदीपत्वं जनकओज:

अर्थात् चित्त के विस्तार रूपदीप्तत्व का जनक ओज गुण है। यह वीर वीभत्स और रौद्र रसों में दिखलायी देता है।

यह आनन्द लोकोत्तर है। चमत्कार जिसका प्राण है। यह एक आनन्द की लहर है। लोक के अधिकांशं अनुभव प्रत्यक्ष पर आधारित होते हैं। रस प्रत्यक्ष सम्भव नहीं, क्योंकि रस कोई नेत्र का विषय नहीं है। रस अनुमान का भी विषय नहीं है, किसी लक्षण विशेष के अनुमान से रसानुभूति सम्भव नहीं है। किसी आप्तप्रमाण से भी लोकोत्तर आनन्द की अनुभूति असम्भव है। रस की अनुभूते हृदय की संवेदनशीलता पर निर्भर करती है।

रसाध्याय आरम्भ करने से पूर्व सर्वप्रथम यही प्रश्न उठता है कि रस क्या है? तथा इसका क्या दृष्टान्त एवं प्रयोजन है?

भरत का नाट्यशास्त्र इस सिद्धान्त का प्रवर्तक ग्रन्थ है। भरत के अनुसार प्रत्येक ललित कला का उद्देश्य रसानुभूति है। रस क्या है तथा इसका क्या दृष्टान्त है, इसका उत्तर भरत इस प्रकार देते हैं -

यथा हि नानाव्यञ्जनौषधिन्द्रव्य संयोगाद्रसनिष्पत्तिः तथा नानाभावोपग

माद्रस निष्पत्तिः।[1]

अर्थात जिस प्रकार नाना व्यंजनों एवं औषधि आदि के संयोग से रसादि की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार नाना भावों के संयोग से रस निष्पत्ति होती है -

यथाहि गुडादिभिर्द्रव्यैर्व्यञ्जनैरौषधिभिश्च षाडवादयो रसा
निर्वत्यन्ते तथा नानाभावोपगता अपि स्थायिनो भावा (शृंगारादि)
रसत्वमाप्नुवन्ति।[1]

अर्थात गुंड आदि द्रव्यों और उपसेचक (व्यंजन) तथा औषधि आदि से षाडव आदि के रस उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार नाना भावों (विभाव अनुभाव) आदि के संयोग से स्थायी भाव रस को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार रस का दृष्टान्त बताकर भरत ने रस क्या है, इसका वर्णन किया है।

रस से कौन सा प्रदार्थ कहा जाता है? अर्थात रस पद का प्रवृत्ति निमित्त क्या है? रस को रस क्यों कहा जाता है? इस प्रश्न के उत्तर में भरत कहते हैं, रस्यमान अर्थात् आस्वाद्यमान होने से रस को रस नाम से कहा जाता है।

जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों से संस्कृत अन्न को खाने वाले पुरूष रसों का आस्वादन करते हैं और आनन्द को प्राप्त करते हैं, इसलिए सुमना शब्द

---

1. नाट्यशास्त्र पृ0 भाग-2, अंग 6, पृ0 678

से कहे जाते हैं। उसी प्रकार नाना प्रकार के (विभाव, अनुभाव आदे रूप) भावों और अभिनयों के द्वारा व्यक्त किये गये वाचिक आंगिक तथा सात्विक (मानस) अभिनयों से युक्त स्थायी भावों को सहृदय प्रेक्षक अस्वाद्यते हैं और आनन्द को प्राप्त करते हैं तथा सहृदय नाम से कहे जाते हैं। यह नाट्य से अनुभूत होने के कारण इन्हें नाट्य रस कहा जाता है। अभिनव का कथन है कि केवल नाटक में ही रस नहीं होते, अपितु नाटक के सदृश होने वाले काव्य में भी रस होता है।

गीत प्रयोगमाश्रित्य श्लोक की व्याख्या में आचार्य अभिनव लिखते हैं कि -

गीयते इति गीतं काव्यम् एष एवतु प्रकार: कलाविधिना निबध्यमानो
राधवविजय मारीच वधादिकं रागकाव्यमुदभाव यतीति तथोक्तं कोहलेन
लयांतर प्रयोगेण रागैश्चापि विवेचितम् नानारसं सुनिर्वाह्यकथं
काव्यमितिस्मृतम् लयतश्चास्यात्र गीत्याधारत्वेना प्राधान्ये गीतरेव
प्राधान्यमिति न काव्यार्थी - विपर्यासवशेन राग भाषादि विपर्यासेइव
तथाहि राघव विजयस्य हि ठक्कारागेणैव विचित्र वर्णनीयत्वेऽपि
निर्वाह: मारीश्च वधस्य कुकुभग्रामरागेणैव अतएव
राग काव्यानीत्युच्यन्त्ये एतानि रागो गीत्यात्यकत्वात्स्वर:
तस्याधारभूतं काव्यमिति।

---

1. नाट्यशास्त्र भाग-1, अंग 6, पृ0 437-38

अर्थात गाया जाता है। अतः गीत काव्य है। कोहल ने कहा है कि भिन्न गीतों के प्रयोग से जिसमें रसों का प्रादुर्भाव हो, कथा याने नायक के इति वृत्त का पूर्ण निर्वाह हो और रागों के द्वारा जिसका विवेचन किया जाता हो, उसे राग काव्य कहते हैं। जैसे राघव विजय की कथा का निर्वाह राग ठक्क राग से और मारीच वधू की कथा का कुकम ग्राम राग से हुआ। अतएव यह राग काव्य होते है, राग गीति स्वरूप है। अतः यह स्वर प्रधान है, क्योंकि गाया जाता है। राग के आधार यह काव्य है। यही तो एक प्रकार है, जिसको कला की विधि से निबन्धन करने पर वह राघव विजय और मारीच वध आदि राग काव्यों का उद्भावन कर देता है। यही बात कोहल ने कही है, कहने का सारांश है कि काव्य का भी गान होता है, अतएव "काव्यमतेद गायताम्" कहना ठीक ही है।

अभिनव ने रस पद का अर्थ क्या है? इसका उत्तर दिया है कि रस शब्द मधुर आदि में अथवा पारद में, अथवा विषय में, सार में, जल के संस्कार में, अभिनिवेश में देह धंतु के सार अर्थ में प्रसिद्ध है।

रस पद का प्रयोग निम्नलिखित अट्ठारह अर्थों में होता है : -

रसः स्वादे जल वीर्य शृंगारादौ, विषे, द्रवे, बोले, रागे, ग्रहे धाती, तिक्तांदौं परदेऽपे च।

प्रोक्पिभ विद्याव्यमनिच सुपेथे स्वर से सुखे।

यही क्यों अब तो कवियों के कोई भी प्रयोग इस पद की योजना बिना अधूरे मालूम होते हैं। अतएव वे लोग हर प्रदार्थ में रस जोड़ देते हैं।

रस सम्प्रदाय साहित्य शास्त्र में और सब सम्प्रदायों से प्राचीन है तथा अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इस सम्प्रदाय के अनुसार रस ही कविता का सार है और गुण, रीति, अलंकार आदि अन्य गौण अर्थात इसी के सहायक मात्र हैं।

रस की उत्पत्ति तथा प्रवर्तक आचार्य -

भरत ने रस विषयक लक्षण सूत्र की व्याख्या केवल एक पंक्ति में कही है -

तत्र विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्ररसनिष्पत्तिः।

अर्थात विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से रस निष्पत्ति होती है। यह भरत का मूल सूत्र बहुत सीधा सा जान पड़ता है, परन्तु वह बड़ा विवाद ग्रस्त रहा है। अनेक आचार्यों ने अनेक प्रकार से उसकी व्यख्या की है। काव्य प्रकाश में मम्मटाचार्य ने उनमें से भट्टलोल्लट्, श्री शंकुक भट्टनायक तथा अभिनव गुप्ताचार्य के मतों का उल्लेख किया है। उन सब मतों को समझने से पहले रस

---

1. नाट्यशास्त्र भाग-1, अंग-6, पृ0 20

प्रक्रिया के पारिभाषिक शब्द विभाव, अनुभाव, संचारी भाव, स्थायी भाव आदि को समझ लेना उचित होगा।

रस निष्पत्ति का प्रथम सोपान स्थायी भावह है। रसिक हृदय में सुप्त रूप से स्थित स्थायी भाव, अनुभाव तथा संचारियों के सयोग से तदनुकूल रस में परिणत हो जाते हैं। रसावस्था हृदय की द्रवशीलता का परिपाक है, जसमें विभावादि वाह्य कारणों से प्रभावित होकर हृदय इतना अधिक द्रविभूत हो जाता है कि उसकी अस्वाद्य वस्तु के साथ नितान्त तन्मयता स्थापित हो जाती है, मन की तटस्थता निराकृत होकर जहां नाट्य गान, नृत्य आदि वस्तुओं से सम्पूर्ण तादात्म्य स्थापित करती हैं वहीं रसावस्था है। वक्ता, श्रोता तथा वस्तु तीनों का साधारणी करण यही रस का वाह्य एवं प्रत्यक्ष स्वरूप है।

स्थायी भाव ऐसी मनोवैज्ञानिक दशा है जो नाट्य काव्य तथा संगीत के आस्वादकों में स्वभावतः वर्तमान होती है, जहां तक संगीत का प्रश्न है गायक और श्रोता की मनःस्थिति संगीत प्रदर्शन अथवा संगीत श्रवण से पूर्व पूर्णतः संस्कार शून्य नहीं मानी जा सकती। स्थायी भाव से तात्पर्य इन्हीं संस्कारों से है, जिनका संचय दैनिक जीवन के अनुभवों के घात, प्रत्याघात से निरन्तर होता रहता है। महाकवि कालिदास के अनुसार स्थायी भावों में जन्म जन्मान्तर के संस्कारों का योगदान अवश्यभावी

---

1. नाट्य शास्त्र भाग-1, अंग-6, पृ0 620

है। भरत के अनुसार स्थायी भाव 8 हैं। रति, हास, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय, शोक। अनुकूल वातावरण को पाकर यही संस्कार उद्बुद्ध हो उठते हैं तथा भावों के क्रिया प्रतिक्रिया के फलस्वरूप विशिष्ट रस रूपों में परिणत हो जाते हैं।

रसों की प्रतीति के साधन विभावादि के उपस्थापकों की शैली है। रस की प्रतीति विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों के द्वारा ही होती है। उन विभावादि का उपस्थापन शब्द प्रतिपाद अर्थ एवं शुद्ध अर्थ रूप अभिनयों से दृश्य नाट्यों में सार्थक एवं निरर्थक शब्द रूप राग रागिनियों से श्रव्य गीति काव्यों में शब्द सहकृत वर्ण्यमान अर्थों से पाठ्य रघुवंशादि पद्यात्मक महाकाव्यों तादृश, कादम्बिरी, भृति, गद्यात्मक काव्यों एवं तादृश पद्य गद्योभयात्मक चम्पू काव्यों या फिर कलाकार की शब्द शून्य केवल भावमय विलक्षण रेखाओ से चित्रों, उत्कीर्णन एवं टकण से लकड़ी या पाषाण या धातु में किया जाता है, जिनमें से प्रथम पांच प्रकार काव्य की परिधि मे आ जाते है।

रसोत्पत्ति के लिए द्वितीय उपादान विभाव है, जो रसोद्बोध के लिए सामग्री उपस्थित करता है। स्थायी भावा को उद्बुद्ध करने वाली सामग्री मुख्यत = दो प्रकार की है - आलम्बन तथा उद्दीपन। नायक और नायिका आदि के आलम्बन से स्थायी भाव उद्बुद्ध होते हैं, इसलिए उनको आलम्बन नात्मक सामग्री या आलम्बन विभाव कहते हैं। वाह्य परिस्थिति उद्यान, प्राकृतिक सौन्दर्य आदि उसके उद्दीपक होने से उद्दीपन सामग्री में आते हैं और उद्दीपन भाव कहलाते हैं। आलंकारिकाओं ने स्थायी भावों की इस द्विविध उद्बोधक सामग्री को 'विभाव' नाम से निर्दिष्ट किया है। ऐसे

ही उद्दीपन विभावों से पुष्ट होने वाला स्थायी भाव कटाक्ष, ललित अंग गहार तथा उद्गार आदि रूपों में प्रस्फुटित होता रहता है। स्थायी भावों की वाह्य अभिव्यक्ति के रूप में अथवा अनुगामी के रूप में व्यक्त चेष्टाएं तथा भाव भंगिमायें अनुभाव के अन्तर्गत आती हैं। स्तम्भ स्वेद रोमांच स्वर भंग अश्रु आदि ऐसे ही अनुभाव हैं।

रस के अनुगामी एवं प्रतिगामी आचार्य भामह, दण्डी, वामन, उदभट रूद्रट, रूद्रभट्ट, ध्वनि सम्प्रदाय, प्रतिहारेंदुराज भट्टनायक, धनंजय, अभिनव, कुन्तक महिम, भोज, क्षेमेन्द्र आदि हुए हैं।

अथर्ववेद से रस का ग्रहण -

ब्रह्मा ने नाट्य के लिए ऋग्वेद से गीत, सामवेद से अभिनय यजुर्वेद से, तथा रस अथर्ववेद से ग्रहण किया है : -

जग्राह पाठ्यऋग्वेदाद् सामभ्यो गीतश्रेव च

यजुर्वेदाद भिनयाद् रसनाथ वर्णाद्पि।

वेदों के पश्चात रामायण काल में प्रथम लौकिक साहित्यक वाल्मीकि

---

1. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, अंग - 5
2. नाट्य शास्त्र अंक-1, पृ0 2 श्लोक 17

जो वैदिक काल के बाद रस सम्प्रदाय के प्रथम व्याख्याकार एवं संस्कृत कविता के आदि कवि माने जाते हैं। उनका प्रथम वाक्य जो कि कारूणिक घटना को देखने से उनके मुख से निकला, उसमें रस सम्प्रदाय के उन्नति के स्पष्ट बीज अंकुरित हैं, उनका हृदय काम मोहित क्रौंच पक्षी के जोड़े को अलग कर देने से पश्चाताप के गहरे शोक से विचलित हुआ। तब उनके मुख से यकायक पश्चाताप के शब्द श्लोक बद्ध निकले। वाल्मीकि ने स्वयं भी क्रौंच पक्षी के दु.ख का अनुभव किया, जो कि उनके शब्दों से स्पष्ट है। वाल्मीकि रामायण के बालकांड के चतुर्थ सर्ग में रसों का स्पष्ट उल्लेख इस प्रकार हुआ है : -

रसैः श्रृंगार करूण हास्य रौद्र भयानकैः
वीरादिभिश्च संयुक्त का व्यमेतद्र गायताम्।

कहा जाता है कि नन्दिकेश्वर रस का वर्णन करने वाले प्रथम आचार्य थे। उन्होंने रस का वर्णन दृष्टय: नामक शीर्षक के अन्तर्गत किया है। ये दृष्टय: तीन प्रकार की गयी हैं। 1. रस दृष्टि, 2. स्थायीभाव दृष्टि, 3. व्याभिचारी भाव दृष्टि।

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड चतुर्थ सर्ग

रस दृष्टयः -

कान्ता हास्या च करुणा रौद्री वीरा भयानका

वीभत्सा चाद्भुतेत्यचष्टौ द्रष्टव्या रस दृष्टय॥[1]

अर्थात आठ प्रकार की रस दृष्टियां कान्ता, हास्य, करूण, रोद्र, वीर, भयानक वीभत्व तथा अद्भुत है, जो रसोत्पत्ति में सहायक होती हैं। इसके पश्चात अन्य दृष्टियों का भी वर्णन है, जो भिन्न प्रकार के भावों को उद्दीप्त करने में सहायक होती हैं।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि भरत का नाट्यशास्त्र रस सिद्धान्त का प्रवर्तक ग्रन्थ है, भरत ने नाट्यशास्त्र में आठ रसों का उल्लेख किया है -

श्रृंगार हास्य करूण रौद्र वीर भयानका:

वीभत्साद्भुत संज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः

एते ह्यष्टो रसा द्रहिणेन महात्मना।[2]

अर्थात श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत ये नाट्य में आठ रस कहे गये हैं। इन आठ रसों के स्थायी भाव -

---

1. भारतार्णव पृ0 106, श्लोक 233

2. नाट्यशास्त्र अंग-6, पृ0 69, श्लोक 15-16

रतिहासिश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा

जुगुप्सा विस्मयश्यचेति स्थायीभावाः प्रकीर्तिताः

क्रमशः रति ह्रास शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा तथा विस्मय है। रस के भेद के विषय में विभिन्न मत प्रचलित हैं। विभिन्न मतों के अनुसार रस के भेद एक, आठ, नौ, दस, बारह अथवा असंख्य हैं। लोकोत्तर अतीन्द्रिय तल पर जो रसास्वादन होता है, वह अभिनाव के मतानुसार एक है। भोज ने भी श्रृंगार प्रकाश में श्रृंगार को ही एक रस माना है तथा अन्य रसों को उसका ही विवर्त रूप स्वीकार करते हुए उनके अस्तित्व को अस्वीकार किया है। रस के आठ भेद वे मानते हैं, जो शांत रस के विरोधी हैं और जो शांत रस के समर्थक हैं, वे रस के नौ भेद मानते हैं। भट्ट लोल्लट के मतानुसार रस के असंख्य भेद हैं।

राग रस -

नाट्य में रसोद्बोध की दृष्टि से भरत ने सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है, उनके मतानुसार नाट्य का प्रत्येक अंग इसी रस भावना को लेकर अग्रसर होना चाहिए।

भरत के अनुसार पाठ्य का रसानुकूल होना आवश्यक है और इसी उद्देश्य

---

1. नाट्य शास्त्र अंग-6, पृ0 69, श्लोक 15

से पाठ्य के विभिन्न गुणों में षड़जादि स्वरों के सम्यक प्रयोग का विधान उन्होंने निम्न शब्दों में किया है -

तत्र सप्तस्वरः षडजर्षभगान्धार मध्यमपंचम धैवत निषादा.
ऐते रसेषूपपाद्याः यथा -
हास्य श्रृंगारयोः कार्यो स्वरौ मध्यमपंचमौ
षडजर्षभौ च कर्तव्यौ वीर रौद्रद्भुतेष्वथ
गान्धारश्च निषादाश्च कर्तव्यौ करूणे रसे
धैवतश्च कर्तव्यो वीभत्से सभयानको।[1]

अर्थात हास्य तथा श्रृंगार में मध्यम एवं पंचम का प्रयोग कर्तव्य है। वीर, रौद्र तथा अद्भुत में षड्ज एवं ऋषभ स्वर का करूण रस में गान्धार तथा निषाद का तथा वीभत्स एवं भयानक रस में धैवत स्वर का प्रयोग अभीष्ट है।

इन स्वरों के साथ रसाभिव्यक्ति के लिए भरत ने काकुभेद प्रयोग को आवश्यक माना है। संगीत मकरन्द में षड्ज से निषाद तक स्वरों में क्रमशः अद्भुत एवं वीर, रौद्र, शान्त, हास्य, श्रृंगार, वीभत्स तथा करूण रस का निर्देश किया गया है। वृहद्देशी तथा संगीत रत्नाकर में षड्ज ऋषभ को वीर, रौद्र तथा अद्भुद रस प्रधान,

---

1. नाट्यशास्त्र 19, 138-39

गन्धार को करूण रस मध्यम तथा पंचम को हास्य एवं श्रृंगार रस प्रधान, धैवत को भयानक एवं वीभत्स तथा निषाद को करूण रस प्रधान बतलाया गया है। काव्य शास्त्र में वर्णो की ध्वनि का रस से सम्बन्ध जोड़ा जाता है, जो वन्दिशों की रचना में सहायक हो सकता है।

विभिन्न रसों की दृष्टि से भरत ने स्पष्ट व्याख्या की है -

भरत ने जातियों का भी रस निर्धारण किया है। स्वर विशेष में रस का प्राबल्य भले हो, परन्तु व्यावहारिक कठिनाइयां हैं। राग के लिए कम से कम पांच स्वर चाहिए। अलग-अलग और कहीं कहीं प्रतिकूल रस प्रधान स्वरों के संयोजन से रसाभिव्यक्ति और अनुभूति दोनों में ही व्यतिक्रम होने की सम्भावना अधिक है। इसके अतिरिक्त राग का स्वरूप रस वस्तुतः काकुभेद, स्वरों के उतार-चढ़ाव गायक द्वारा उभरता है। कलाकार अपने चातुर्य और कुशलता से सृष्टि करता है। उदाहरण के लिए अड़ाना, आसावरी, काफी, कौंसीकाहड़ा, गौड़ मल्हार, चन्द्र कौंस, जौनपुरी, दरबारी कान्हड़ा, बागेश्वरी, भीमपलासी, मालकंस इन सभी रागों में कोमल गन्धार और निषाद का प्रयोग होता है। परन्तु गुंणीजन जानते हैं कि सभी रागों का अपना अलग-अलग रस है। अपनी कलात्मक प्रतिभा से कलाकार इन्हीं दो स्वरों को अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत करता है कि उनका रंग, प्रभाव ही बदल जाता है। इसी प्रकार भूपाली और देशकार के स्वरों में समानता है। परन्तु अदायगी के ढंग से रागों का रूप रसात्मक

---

1. संगीत में रस तत्व से उदद्धृत पृष्ठ 12

प्रभाव बदल जाता है। रागों में भी कुछ स्थिति ऐसी ही है। एक ही राग में अनेक रसों की बन्दिशें मिलती हैं। उदाहरण के लिए राग जयजयवन्ती में कुछ बन्दिशें-

एरी आज पिया अपने संग खेलोगी होरी
अबीर गुलाल अतर अरगज सुगंध लिये भर भर झोरी।

दूसरी बंदिश में भी संयोग श्रृंगार युक्त होली का उल्लास है : -

आज छबीले मोहन ब्रिज में खेले होरी,
ग्वाल बाल सब संग ब्रिज में खेले होरी,
ग्वाल बाल सब संग सखा ले लै, अबीर[2] गुलाल की झोरी।

विरहिणी नायिका की स्थिति का चित्रण करने वाली जयजयवन्ती में ही निबद्ध दूसरी बंदिश है -

दामिनी दमके डर मोहे लागे,
उमंगे दल बादल श्याम घटा।

---

1. क्रमिक पुस्तक मालिका, चौथी पुस्तक पृ0 301 - 310

राग जयजयवंती (धमार)

(1)

स्थायी -

नी	नी				ग				ग							
स	स	ध	नी	|	रे	-	-	रे	गरे	|	-	मप	म	ग	म	
ए	ऽ	री	ऽ	|	आ	ऽ	ऽ	ज	ऽऽ	|	ऽ	पिंऽ	या	ऽ	ऽ	
3					×						2		0			

					रे									रे	
रे	ग	रे	स	|	नी	-	से	रे	-ग	|	रे	स	|	रे	नी	स
अ	प	ने	ऽ	|	सं	ऽ	ऽ	ग	ऽऽ	|	खे	ऽ	|	लो	ऽ	ऽ
3					×						2			0		

					म										
नी	ध	प	-	|	प	सं	नी	ध	प	|	मग	म	|	रे	ग	रे
गी	ऽ	ऽ	ऽ	|	हो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	|	ऽऽ	ऽ	|	ऽ	ऽ	री
3					×						2			0		

अंतरा -

प																		
म	म	प	नी	-	|	सं	नी	|	सं	-	-	|	नी	सं	सं	सं
अ	बी	ऽ	र	ऽ	|	ऽ	गु	|	ला	ऽ	ऽ	|	ल	अं	त	र
×						2			0				3			

सं			गं											प		
नी	सं	सं	रें	-	|	रेंगं	रेंसं	|	सं	-	रेंनी	|	ध	ध	प	-
अ	र	ग	जा	ऽ	|	ऽऽ	सुऽ	|	गं	ऽ	ऽऽ	|	ध	लि	ए	ऽ
×						2			0				3			

प	प								म		
मप	सं	नी	ध	प	|	मग	म	|	रे	ग	रे
झऽ	र	ऽ	भ	ऽ	|	रऽ	ऽ	|	झो	ऽ	री
×						2			0		

राग जयजयवंती (धमार)

(2)

स्थायी -

नी		स		म			ग							
स	-	ध	नी	रे	-	-	रे	गरे	म	प		म	ग	म
आ	ऽ	ज	छं	बी	ऽ	ऽ	लो	ऽऽ	मो	ऽ		ह	न	ऽ
3				×					2			0		

म				स	स								
रे	ग	रे	स	नी	नी	स	रे	-	ग	-	रे	स	-
ना	ऽ	म	र	ब्र	ज	ऽ	मे	ऽ	ऽ	ऽ	खे	ऽ	ऽ
3				×					2		0		

				ध							म		
रे	नी	ध	प	नी	ध	-	म	-	प	ध	ग	-	रे
ऽ	ऽ	ले	ऽ	हो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	री
3				×					2		0		

रे		रे	
नी	स	ध	नी
आ	ऽ	ज	छ

अंतरा -

प						सं							
म	-	प	नी	-	-	नी	सं	सं	-	सं	-	सं	-
ग्वा	ऽ	ऽ	ल	ऽ	ऽ	बा	ऽ	ल	ऽ	स	ऽ	ब	ऽ
×					2		0			3			

सं										सं			
नी	-	सं	रें	-	गं	रें	सं	-	-	रें	नी	ध	प
सं	ऽ	ऽ	ग	ऽ	ऽ	स	खा	ऽ	ऽ	लै	ऽ	लै	ऽ
×					2		0			3			

ध	ध													
प	प	नी	ध	प	-	म	ग	-	-	म	प	म	-
अ	बी	ऽ	र	ऽ	ऽ	गु	ला	ऽ	ऽ	ऽ	ल	की	ऽ
×					2		0			3			

म							म	म		रे		स	
प	सं	नी	ध	प	मग	म	रे	ग	रे	ऩी	स	ध़	ऩी
झो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	री	आ	ऽ	ज	छ
×					2		0			3			

राग जयजयवंती (त्रिताल)

(3)

स्थायी -

नी		ऩी						म				ग			
स	-	ध़	ऩी	रे	ग	रे	-	ग	ग	म	(म)	म	गम	रेग	रे
दा	ऽ	मि	नि	द	म	के	ऽ	ड	र	मो	हें	ला	ऽऽ	ऽऽ	गे
3				×				2				0			
रे								सं							
ऩी	ऩी	स	-	रे	ग	रे	स	नी	धप	म	पध	म	गम	(ग)	रे
उ	मं	गे	ऽ	द	ल	बा	ऽ	द	लऽ	श्या	ऽऽ	म	ऽऽ	घ	टा
3				×				2				0			
नी		नी													
स	(स)	ध़	ऩी												
दा	ऽ	मि	नि												
3															

अंतरा -

		सं										सं			
म	प	नी	-	सं	-	सं	सं	रें	रेंमं	रें	सं	रें	नी	सं	-
लि	ख	भे	ऽ	जो	ऽ	स	खी	3	सऽ	नं	ऽ	द	न	को	ऽ
3				×				2				0			

प												म			
सं	-	नी	-	ध	-	म	प	नी	-	ध	म	रे	ग	रे	-
मे	ऽ	री	ऽ	खो	ऽ	ला	कि	ता	ऽ	ब	दे	खो	बि	था	ऽ
3				×				2				0			

स	(स)	-	धनी
दा	ऽ	ऽ	मिनि
3			

1. क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-4 से उद्धृत ।

राग और रस का घनिष्ट सम्बन्ध है। राग रस को उदीप्त करता है, जिस प्रकार प्रकृति के वाह्य उपकरण उद्दीपन का कार्य करते हैं। उसी प्रकार विभिन्न रागों के स्वर भी विभिन्न रसों की सृष्टि करते हैं।

स्वरों से रस की उत्पत्ति राग में लगने वाले स्वर की प्रधानता पर निर्भर हैं। संगीत का मूलाधार स, रे, ग, म, प, ध, नी ये सात स्वर हैं। स और प अचल स्वर हैं। रे, ग, म, ध, नी ये पांचों स्वर के दो रूप हैं। शुद्ध या तीव्र स्वर तथा कोमल स्वर मिलकर सा, रे रे ग ग म मे प ध ध नि नि सां इस प्रकार बारह स्वरों से सम्पूर्ण राग रागिनियों का निर्माण होता है। इसलिए जिन राग रागिनियों में कोमल स्वरों का उपयोग होता है। अर्थात् जिनके आरोह-अवरोह में कोमल स्वर होते हैं, उनमें करूण रस की निष्पत्ति होती है। उल्लास और वीरता के लिए शुद्ध स्वर वाले राग अधिक उपयुक्त होते हैं।

राग का वादी स्वर राग का मुख्य स्वर माना जाता है। जिस राग का वादी स्वर षडज होता है, उस राग से वीर अद्भुत या रौद्र रस की उत्पत्ति होती है। राग के वादी संवादी स्वरों पर ध्यान रखने से भी राग की प्रकृति का भान हो जाता है। भक्ति एवं करूण रस में कोमल रे ध वाले राग अपेक्षित हैं।

राग ललित का वादी स्वर मध्यम संवादी स्वर षडज है। रे स्वर कोमल ध स्वर कोमल और दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है और गायन समय रात्रि का अन्तिम

प्रहर है और रे ध स्वर कोमल लगने के कारण भक्ति रस की प्राप्ति होती है।

राग ललित का मुख्य स्वर समूह -

नि़ रे॒ ग म, मं म ग, मं ध॒ मं म ग, ग ऽ मं ग रे॒ स

इसी परम्परा में टोड़ी, भैरव, कालिंगड़ा, आदि राग हैं। कोमल ग नी वाले राग श्रृंगार रस के लिए उपयुक्त हें। जैसे राग आसावरी जिसमें वादी स्वर धैवत संवादी स्वर गंधार और ग ध नी स्वर कोमल लगते हैं और गाने का समय दिन का दूसरा प्रहर है। राग के स्वरों से श्रृंगार रस की अनुभूति होती है। इसी प्रकार काफी बागेश्वरी आदि रागों में श्रृंगार रस की उत्पत्ति होती है।

सामान्य तौर पर शुद्ध स्वर वाले राग वीर रस और उल्लास का भाव व्यक्त करने के लिए उपयुक्त हैं। उदाहरण के लिए शंकरा, भूपाली, हिंडोल इत्यादि। स्वामी तुलसीदास ने भावानुकूल राग योजना कर सफल गीतों की रचना की है।

स्वामी तुलसीदास द्वारा रचित एक कविता जिसको उन्होंने राग आसावरी के अन्तर्गत माना है -

ममता तू न गई मेरे मन से

पाके केस जनम के साथी लाज गई लोकनते

तन था के कर कंपन लागे, ज्योति गई नैननते

सरवन वचन न सुनत काहु के बल गये सब इंद्रिनते

टूटे दसन बचन नहि आवत सोभा गई मुखनते।।

भक्ति रस में सगीत के माध्यम से डूब जाने पर ही परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। संगीत में ईश्वर का भी वास है। कृष्ण भक्त कवियों ने प्रमुख राग रागिनियाँ ही नहीं प्रधान, अप्रधान सभी रागों को अपने गीतों का आश्रय बनाया, जैसा कि कीर्तन संग्रहों के उल्लेख से सिद्ध होता है। 36 रागिनियों का वर्णन सूर पद में इस प्रकार है : -

ललिता ललित बजाय रिझावत मधुर बीन कर लीने, ।

जात प्रभात राग पंचमषट मालकोंस रस भीने, ।।

सुर हिंडोल मेघ मालव पुनि सारंग सुर नट जान, ।

सुर सावन्त भूपाली ईमन करत कान्हर गान। ।।

ऊंच अड़ाने के सुर सुनियत निपट नायकी लीन।

कर विहार मधु केदारौ सफल सुरन सुख दीन। ।।

सोरठ गौड़ मल्लार सुहावत भैरव ललित बजायौ।

मधुर विभास सुनत बेलावल दम्पत्ति अति सुख पायो।।

देवगिरि देसाक देव पुन गौरी श्री सुखवास ।

जैतश्री अरू पुरवी टोड़ी आसावरी सुखरास। ।/

रामकली गुनकली केतकी सुर सुघराई गाए

जेजैवंती जगत् मोहनी सुर सों बीन बजाए।

सूहा सरस मिलत प्रीतम सुख सिंधुवार रस मान्यौ

जान प्रभात प्रभाती गायौ भोर भयौ दोउ जान्यौ।

(सूर सागर)

गायक स्वर सन्निवेश के द्वारा जिन भावों की अभिव्यक्ति करता है, वे 'साधारण्य' एवं प्राणिमात्र हृदय के संवाद के कारण सावधान श्रोताओं की रजस्तमोनिर्मित राग द्वेष रूप ग्रन्थियों को विगलित करके उनके हृदय में उस चेतना का अनुभव करा देते हैं, जिसे रस कहा जाता है।

महाकवि कालीदास के अनुसार सुन्दर एवं रमणीय दृश्यों को देखकर और मधुर शब्दों को सुनकर प्राणी के मन मने जन्मान्तर से स्थित भावनाएं जाग जाती हैं : -

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्यशब्दान्

पर्युत्सुकीभवति यत्सुखिनोऽपि जन्तुः

तच्चेतसा स्मरति नूनम बोधपूर्वम्

भावास्थिराणि जननान्तर सौहृदानि।

---

1. अभिज्ञान शाकुंतलम पृ0 154

संगीत के क्षेत्र में हम एक ही राग में भिन्न-भिन्न भावों की कविता से युक्त अनेक गीतों की रचना देख सकते हैं और महसूस कर सकते हैं।

उदाहरण के लिए यदि हम राग सिंदूरा को ही लें : -

राग सिंदूरा (चौताल)

स्थायी - (1)

प्रथम सिंहासन बैठे आसन, राजत सभामध्य रघुकुल मणिराम

अन्तरा -

नारदादि करत गान, विश्वनाथ ध्यान धरत, तानसेन देहुं दान,

सुफल होत मन काम।

राग सिंदुरा (धमार)

(2)

स्थायी -

एरी मैंकां आज मिले बनवारी जमुना तट

हाथन रंग पिचकारी

---

1. अभिनव गीतांजलि भाग-3, पृ0 178

अन्तरा -

अबिर गुलाल मलत मुख मेरे

देत हजारन गारी

राग सिंदूरा (होरी)

(3)

स्थायी -

ना दैया मैं अब न जाऊंगी बीच में ठाढ़ो होरी के खेलैया।

अन्तरा -

बाट घाट मोहे रोकत टोकत, वो देखो बृज के बसैया।

राग सिंदूरा (त्रिताल)

(4)

स्थायी -

मोंरा मन हर लीन्हों री आली, सुन्दर सरूप दिखाय लुभायो।

अन्तरा -

जब से देखी सुरत सांवरी सब सुध बुध रामरंग बिसरायो।

---

1. अभिनव गीतांजलि से उदधृत ।

राग सिंदूरा (ध्रुपद) चौताल

(1)

स्थायी -

रे	म	-	प	धप	ध	सं	नी	-	ध	-	प
प्र	थ	ऽ	म	ऽऽ	सिं	हा	ऽ	ऽ	स	ऽ	न
0		3		4		×		0		२	

ध	म	-	प	-	ध	ग	-	-	रे	-	स
बै	ऽ	ऽ	ठे	ऽ	ऽ	आ	ऽ	ऽ	स	ऽ	न
0		3		4		×		0		२	

									म	प	
रे	स	-	नी	नी	ध	स	-	-	रे	म	प
रा	ऽ	ऽ	ज	तं	सं	भा	ऽ	ऽ	म	ऽ	ध्य
0		3		4		×		0		२	

ध	नी	ध	प	ग	रे	म	ग	-	रे	-	स
र	घु	ऽ	कु	ल	ऽ	म	पि	ऽ	रा	ऽ	म
0		3		4		×		0		२	

अंतरा -

									सं		
म	-	प	नी	सं	सं	रें	नी	धप	[illegible]	सं	सं
ना	ऽ	र	दा	ऽ	दि	क	र	तऽ	गा	ऽ	न
0		3		4		×		0		2	

			मं								
धं	सं	रें	गं	रें	सं	रें	सं	नी	नी	ध	प
वि	ऽ	श्व	नां	ऽ	थ	ध्या	ऽ	न	ध	र	त
0		3		4		×		0		2	

य		म	प	म	प				
ग	-	रेस	रे	म	प	रे	म	प	ध	नी	धप
ता	ऽ	नऽ	से	ऽ	न	दे	ऽ	हु	दा	ऽ	नऽ
0		3		4		×		0		2	

	पं					म				स	
ध	गं	रेंसं	संनी	धम	पध	ग	ग	रे	मग	रे	स
सु	फ	लऽ	होऽ	ऽऽ	तऽ	म	न	ऽ	काऽ	ऽ	म
0		3		4		×		0		2	

राग सिंदुरा (धमार)
(2)

स्थायी -

					मं								
म	प	नी	सं	रें	गं	-	रें	-	सं	-	रें	नी	-
ए	री	मैं	का	आ	ऽ	ऽ	ज	ऽ	ऽ	ऽ	मि	ले	ऽ
3				×					2		0		

							प				ध	ध	
ध	-	नीध	सं	सं	नी	-	ध	-	प	म	प	प	ध
ऽ	ऽ	बऽ	न	वा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	री	ज	मु	ना	ऽ
3				×					2		0		

											म		
ग	-	रे	-	म	ग	-	रे	-	स	-	रे	ग	-
त	ऽ	ट	ऽ	हा	ऽ	ऽ	थ	ऽ	न	ऽ	रं	ग	ऽ
3				×					2		0		

								प	प		
प	ध	ध	सं	सं	नी	-	ध	म	-	प	प
ऽ	ऽ	पि	च	का	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	री
3				×			2		0		

---

1. अभिनव गीतांजलि से उदधृत भाग-3 पृ0 179-181

अंतरा

म	प	-	नी	-	सं	नी	सं	-	-	स	-	-	स
अ	बि	ऽ	र	ऽ	ऽ	गु	ला	ऽ	ऽ	ल	ऽ	ऽ	म
×					2		0				3		

गं मं										प			
रे	मं	-	रें	-	सं	-	रें	नी	-	ध	-	प	ध
ल	त	ऽ	मु	ऽ	ख	ऽ	मे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	रे	ऽ
×					2		0			3			

प										प			
ध	गं	-	रें	सं	-	रें	नी	-	-	ध	-	नीध	सं
दे	ऽ	ऽ	त	ऽ	ऽ	ह	जा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	रऽ	न
×					2		0			3			

						प	प						
सं	नी	-	ध	प	ध	म	-	प	प	म	प	नी	सं
गा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	री	ए	री	मै	का
×					2		0			3			

राग सिंदुरा (होरी) (त्रिताल, धीमिलय)

(3)

स्थायी -

म	प	नी	सं	रें	गं	रें	सं	-	नीसं	-रें	नी	नी	ध	नी	प
ना	ऽ	दै	ऽ	या	ऽ	मै	तो	ऽ	अब	ऽना	ऽ	जा	ऽ	ऽ	ऊं
3				×				2				0			

ध	म	-प	-ध	ग	रे	ग	रे	स	रेम	-प	-ध	नी	ध	नी	धप
गी	बी	ऽच	ऽमे	ठा	ऽ	ऽ	ढ़ो	ऽ	होरी	ऽके	ऽखे	लै	ऽ	ऽ	याऽ
3				×				2				0			

ध	मप	नी	सं
ऽ	नाऽ	ऽदै	ऽ
3			

अंतरा -

- म पनी संनी | सं नी सं सं | - रें गंरें सं | रें नी धनी धप
ऽ बा ऽट ऽऽ | घा ट मो हे | ऽ रो ऽक त | टो ऽ ऽऽ कत
3 | × | 2 | 0

- म -प ध | ग ग रे स | - रेम -प ध | नी ध नी धप
ऽ वो देऽ खो | ब्र ज के ऽ | ऽ बसै ऽऽ ऽ | या ऽ ऽ ऽऽ
3 | × | 2 | 0

ध मप -नी सं |
ऽ नाऽ देऽ ऽ |
3

राग सिंदुरा (त्रिताल मध्यलय)
(4)

स्थायी -

स
मो

प ध
रे म प ध | नी - ध नी | ध म प ध | ग - रे स
रा म न ह | र ऽ ऽ ऽ | ली ऽ न्हो री | आ ऽ ली सुं
3 | × | 2 | 0

सं
नीध स - -रे | म प ध रें | नी ध सं रेंसं | नीध पम गरे स
दऽ र ऽ ऽस | रू ऽ प दि | खा ऽ य लुऽ | भाऽ ऽऽ योऽ म
3 | × | 2 | 0

अंतरा -

													म		
													ज		
		सं						मं				सं			
प	ध	नी	ध	सं	-	सं	रें	मं	रें	सं	रें	नी	ध	सं	नी
ब	से	ऽ	ऽ	दे	ऽ	खी	सु	र	त	ऽ	सां	ऽ	व	री	स
3				×				2				0			

ध	म	प	ध	ग	-	रे	स	रे	म	प	ध	संनी	धप	मग	रेस
ब	सु	ध	बु	ध	ऽ	ऽ	रा	म	रं	ग	वि	साऽ	ऽऽ	रयो	मोऽ
3				×				2				0			

इसी प्रकार हम रागेश्वरी राग को भी ले सकते हैं, जिसमें हमारे वाग्यकारों ने भिन्न-भिन्न भावों की कविता से युक्त अनेकों गीतों की उत्पत्ति की है. -

राग रागेश्वरी (विलम्बित ख्याल)

(1)

स्थायी -

प्रथम सुमर मन, विघन हरण देव गणपति गजानन

अन्तरा -

मंगल मूरित सिद्ध के सदन 'रामरंग' देव मुनि, वंदित चरन

---

1. अभिनव गीतांजलि से उद्धृत

राग रागेश्वरी (मध्यलय द्रुतख्याल)

(2)

स्थायी -

लगन लगी तुम्हरे चरण की, शरण का विधि तोरी पाऊं

अन्तरा -

रटन लगी तेरे नाम की, दरस बिना कैसे तन की, रामरंग तपन बुझाऊं

राग रागेश्वरी (ख्याल)

(3)

स्थायी -

हो कवन ढंग तेरो पिया कहि मानत नाही मेरो

अन्तरा -

नित समझाऊं समझत नाहीं रामरंग कैसी ये बानि परी तुम्हरो

राग रागेश्वरी (झपताल विलम्बित)

(1)

स्थायी -

म	ग	रे	स	(स)	नि़	ध	नि़	स	स
प्र	थ	म	ऽ	सु	म	र	म	ऽ	न
×		2			0		3		

ध़	नी़	स	ग	म	ध	ग	म	-	ध
बि	घ	न	ऽ	ह	र	न	दे	ऽ	व
×		2			0		3		

सं	नी	ध	म	ध	(म) ग	-म	रे	-	स
ग	ण	प	ति	ग	जा	ऽऽ	न	ऽ	न
×		2			0		3		

अन्तरा -

ग	म	ध	-	नी	सं	-	सं	-	सं
मं	ऽ	ग	ऽ	ल	मू	ऽ	र	ऽ	त
×		2			0		3		

ध	नी	सं	गं	रें	सं	(सं)	नी	ध	-
सि	द्धि	के	ऽ	ऽ	स	द	न	ऽ	ऽ
×		2			0		3		

सं	नी	ध	ग	म	ग	म	ध	नी	सं
रा	म	र	ऽ	गं	दे	ऽ	व	मु	नि
×		2			0		3		

सं	नी	ध	म	ध	(म) ग	(म) गम	रे	-	स
वं	ऽ	दि	ऽ	त	च	ऽऽ	न	ऽ	ऽ
×		2			0		3		

---

1. अभिनव गीतांजलि भाग-3 से उद्धृत पं0 228-229

राग रागेश्वरी त्रिताल (मध्य लय)

(2)

स्थायी -

			ग ल
म ध - नी	ध - म ग	(म) रे - स	रे रे स स
ग न ऽ ल	गी ऽ ऽ तु	म्हे रे ऽ च	र न की श
3	×	2	0
ध नी स ग	म ध नी सं	मध नीसं नीध मग	मग रेस नीस ग
र न का ऽ	वि धि तो री	पाऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ	ऽऽ ऽऽ ऊऽ ल
3	×	2	0

अन्तरा -

			ग र
म ध - नी	सं - - ध	नी सं गं मं	रें - सं रें
ट न ऽ ल	गी ऽ ऽ ते	रे ना ऽ म	की ऽ ऽ द
3	×	2	0
नी सें ध नीसं धनी	ध - म नी	ध म ग (म)	रे - स रे
र स ऽऽ बिऽ	ना ऽ ऽ कै	ऽ से त न	की ऽ ऽ रा
3	×	2	0
स नी ध़ नी़	स ग म ध	मध नीसं नीध मग	मग रेस नीस ग
म रं ऽ ग	त प न तु	झाऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ	ऽऽ ऽऽ ऊऽ ल
3	×	2	0

राग रागेश्वरी एकताल (विलम्बित)

(3)

स्थायी -

गम धनी	ध म	- म(ग)	म रे	स -(स)	नि ध
होऽ कव	न ऽ	ऽ ढंग	ते ऽ	री ऽपि	या ऽ
4	×	0	2	0	3

नीध नीस	स ग (स)	म -	ध नी(सं) (म)	नी ध	म -
ऽऽ कहि	मा ऽ	ऽ ऽ	ऽ नत	ना ऽ	ऽ ऽ
4	×	0	2	0	3

धग -म	रे स	नीस (-स)	नी ध	नीध नीस	- धनीसग
ऽऽ ऽऽ	हीं ऽ	ऽऽ ऽमे	रो ऽ	ऽऽ ऽऽ	ऽ होऽऽऽ
4	×	0	2	0	3

मधगम धनी (सं)
ऽऽऽऽ कव
4

अन्तरा -

गम धनीध	सं सं	धनि संगं	मं रेंसं (सं)	सं(सं) नी	ध म
नित समऽ	झा ऊं	ऽस मऽ	ऽ झत	नाऽ हीं	ऽ ऽ
4	×	0	2	0	2

गम धनी	सं सं(सं)	नी -	ध -	म मध	ग म
राम रंग	कै सीये	बा ऽ	ऽ ऽ	ऽ निप	री ऽ
4	×	0	2	0	2

रे स	स -(स)	नी ध	नीध नीस	स -	धनी सग
ऽ ऽ	ऽ ऽतु	म ऽ	ऽऽ ऽऽ	रो ऽ	ऽऽ ऽऽ
4	×	0	2	0	3

धगम धनी
होऽऽ कव
4

रे	-	स	-(स)	नी	ध	नीध	नीस	स	-	धनी	सग
ऽ	ऽ	ऽ	ऽतु	म	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ये	ऽ	ऽऽ	ऽऽ
4		×		0		2		0		3	

धगम	धनी
होऽऽ	कव
4	

इत्यादि रचनाओं को देखने से ज्ञात होता है कि भिन्न भिन्न भावों तथा रसों से युक्त रचनायें गायी जाती हैं और महसूस की जाती हैं।

राग हमारे संगीत की आत्मा है। एक ही राग में भिन्न स्वर समूहों के द्वारा अलग-अलग रागों का अनुभव होता है।

राग नायकी कान्हड़ा में जब हम रे नी स रे

रे रे रे
स रे ग ऽ ऽ म रेस रे, स स्वर समूह से (करूण रस)

नी म म म
रे नी स रे प प ग ग म (श्रृंगार रस) मप नीप, नीसं नी सं रें सं प नी प मप में वीर रस का आभास होता है। इसी प्रकार नायकी कान्हाड़ा की भिन्न-भिन्न रचनाओं द्वारा करूण, श्रृंगार, वीर, इत्यादि रसों का अनुभव प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ -

राग नायकी कान्हड़ा (त्रिताल)

(1)

स्थायी -

दरबार तोरे जो आवे फल पावे मन के।

अन्तरा -

ख्वाजा मोई उद्दीन औलिया, पग लागूं कर जोरे।

राग नायकीं कान्हड़ा (एक ताल)

(2)

स्थायी -

मान रे तू मान मन, नाम ले तू रैन दिन

बावरे बने न तेरो, राम को रटे बिना।

अन्तरा -

मीत कोऊ नाहि जग, प्रीत कर हेतु बिन

राम रंग रंगे नहीं वासना घटे बिना।

---

1. अभिनव गीतांजलि से उद्धृत

राग नायकी कान्हड़ा (त्रिताल)

(1)

स्थायी -

															रे	
															द	
स	प	नी	प	सं	-	-	नी	-	स	-	स	म	-	म	-	
र	बा	ऽ	र	तो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	रे	जो	ऽ	आ	ऽ	
3				×				2				0				

							म	म						
प	-	प	प	मप	नी	प(प)	ग-	-म	--	म	रेसनीस	रे	स	रे
वे	ऽ	फ	ल	पाऽ	ऽवे	ऽम	नऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	ऽऽऽऽ	ऽ	के	द
3				×			2				0			

अन्तरा -

म	प	नी	प	नी	सं	-	सं	सं	-	सं	सं	प	नी	प	-
ख्वा	ऽ	जा	ऽ	मो	ई	ऽ	उ	दी	ऽ	न	औ	ऽ	लि	या	ऽ
0				3				×				2			

										म	म				
म	म	म	-	प	-	प	प	मप	नी(प)	ग-	-ग	--	गम	पम	रेस
प	ग	ला	ऽ	गूं	ऽ	क	र	जोऽ	ऽरे	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
0				3				×				2			

रे	-	स,	रे
ऽ	ऽ	ऽ,	द
0			

राग नायकी कान्हड़ा (एकताल) मध्य लय)

(2)

स्थायी -

प	-	ग	म	नी	पनी	प	ग
मा	ऽ	ऽ	न	रे	तूऽ	मा	ऽ
×		0		2		0	
म	रे	स	स	रे	-	नी	स
ऽ	न	म	न	ना	ऽ	ऽ	म
3		4		×		0	
रे	प	प	-	ग	म	नी	प
ले	तू	रे	ऽ	ऽ	न	दि	न
2		0		3		4	
प	-	ग	म	प	सं	सं	-
बा	ऽ	ऽ	व	रे	ब	नै	ऽ
×		0		2		0	
		प					
नी	सं	नी	प	प	-	ग	म
ऽ	न	ते	रो	रा	ऽ	ऽ	म
3		4		×		0	
नी	पनी	मप	ग	म	रेस	नीस	रेम
को	टऽ	टऽ	ऽ	ऽ	बिऽ	नाऽ	ऽऽ
2		0		3		4	

अन्तरा -

प	-	ग	म	नी	प	सं	-
मी	ऽ	ऽ	त	को	उ	ना	ऽ
×		0		2		0	
-	सं	सं	सं	सं	-	-	नी
ऽ	हि	ज	ग	प्री	ऽ	ऽ	त
3		4		×		0	
रें	संरें	सं	-	-	प	नी	प
क	रऽ	हे	ऽ	ऽ	तु	बि	न
2		0		3		4	
	म						
प	ग	-	म	रे	स	सं	-
रा	ऽ	ऽ	म	रं	ग	र	ऽ
×		0		2		0	
प							
नी	प	ग	म	प	-	ग	म
ऽ	गे	न	हि	वा	ऽ	ऽ	स
3		4		×		0	
		म					
पनी	सं-	ग	-	मम	रेस	नीस	रेम
नाऽ	धऽ	टे	ऽ	ऽऽ	बिऽ	नाऽ	ऽऽ
2		0		3		4	

इस प्रकार राग भैरव के स्वरों का योग ऐसा ही है, उससे भयानक दृश्य की अनुभूते होती है और फलतः भयानक रस उत्पन्न होता है। भैरवी से श्रृंगार रस तोड़ी, देश, और बिहाग रागों से करूण रस की प्राप्ति होती है।

संगीत में सबसे अधिक चीजें मिलती हैं, श्रृंगार रस की। ख्याल की गायकी का उत्कर्ष हिन्दी के रीति काल के समय से होना शुरू हुआ था। जो राग ओज के साथ गाये जाने पर अच्छे लगते हैं। उन्हें वीर रसात्मक राग मानना चाहिए। अड़ाना, शंकरा, हमर, मालकौंस राग आवेश और ओज के साथ गाये जाने पर जितने कर्णप्रिय मालूम होते हैं, उतने माधुर्य भाव से गाये जाने पर अच्छे नहीं लगते। इस विषय में एक साधारण नियम यह कहा जा सकता है कि इस वर्ग के राग खड़े स्वरों से गाये जा सकते हैं। अर्थात इनमें मींड इत्यादि का प्रयोग नहीं होता।

जो राग ऋतुकालीन हैं जैसे बसन्त बहार, देस मल्हार, इत्यादि। यहां भी ऋतु की विशेषता से ही रागों का रस ठहराना ठीक है। वर्षा और बसन्त, दोनों ही श्रृंगार की भावना को उद्दीप्त करने वाली विशेषतायें हैं। इसलिए इन दोनों के वर्णन में प्रायः वियोग जन्य भावनाओं के उद्दीपन का उल्लेख प्राप्त होता है।

राग बहार (त्रिताल मध्य लय)

स्थायी -

प				म	म							ध			
सं	-	नी	प	ग	ग	म	प	सं	-	-	-	नी	ध	नी	सं
बा	ऽ	ल	मु	वा	ऽ	मा	ई	री	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
0				3				×				2			

नी						प		म	म	म					
सं	रें	सं	रे	नी	सं	नी	प	ग	ग	ग	म	रे	रे	स	-
ब	र	न	ब	र	न	की	ऽ	क	लि	या	ऽ	खि	लि	यां	ऽ
0				3				×				2			

नी								ग				म			
स	स	म	-	म	-	म	म	म	-	नी	प	ग	-	म	-
ल	ह	रा	ऽ	नी	ऽ	ब	न	बे	ऽ	ल	रि	या	ऽ	ऽ	ऽ
0				3				×				2			

म		नी									रें				
ग	म	ध	नी	सं	-	सं	सं	नी	सं	नीसं	सं	नी	ध	धनी	सं
स	खि	अ	ज	हुं	ऽ	न	हि	आ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ए	ऽ	ऽऽ	ऽ
0				3				×				2			

अन्तरा -

म		नी													
ग	म	ध	नी	सं	नी	सं	-	नी	-	सं	-	सं	-	सं	-
हो	ऽ	बि	र	हि	न	बौ	ऽ	रा	ऽ	नी	ऽ	जो	ऽ	जो	ऽ
0				3				×				2			

स															
नी	नी	सं	-	सं	-	नी	सं	नीसं	रें	रें	सं	नी	-	नी	प
ल	ह	रा	ऽ	न	ऽ	ह	रि	याऽ	ऽ	ऽ	रि	या	ऽ	ऽ	ऽ
0				3				×				2			

						म									
म	म	म	प	-	प	ग	म	म	नी	ध	नी	सं	नी	सं	सं
ऋ	तु	ब	सं	ऽ	त	मे	ऽ	अ	जि	जा	ऽ	दि	न	पि	या
0				3				×				2			

सं		सं	गं					स							
नी	सं	मं	मं	रें	-	सं	सं	ध	नी	सं	रें	नी	सं	धनी	सं
सौ	ऽ	त	न	के	ऽ	घ	र	भू	ऽ	ल	र	हे	ऽ	ऽऽ	ऽ
0				3				×				2			

---

1. क्रमिक पुस्तक मालिका से उद्धृत ।

राग बहार की प्रसिद्ध चीज 'बालमवा माई री' को अगर हम लें तो 'बरन-बरन की कलिया, लहरानी बन बेलरियां' यहां तक बसन्त ऋतु का उल्लेख है। इसके बाद 'सखी अजहूं नहीं आये' के साथ ऋतु का उद्दीपन प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगता है। इसका प्रभाव हमें अन्तरा में दृष्टिगोचर होगा। अन्तरे के आरम्भ मे ही हमे 'हौ बिरहन बौरानी ज्यों-ज्यों लहरानी हरियां डरियां, सुनाई देता है। इसके बाद 'ऋतु बसन्त में अजहू के दिन पिया सौतन के संग भूल रहे' कहकर चित्र पूरा कर दिया जाता है।

मानव हृदय प्रकृति के सौन्दर्य की ओर तीन प्रकार से आकर्षित होता है। एक संयोग श्रृंगार की भावना के साथ, दूसरा वियोग श्रृंगार की भावना के साथ और तीसरा शान्त भावना से प्रकृति के सौन्दर्य का उपासक होकर आकर्षित होता है।

अगर हम वर्षा का ही दृश्य ले तो संयोग पक्ष में वर्षाकालीन दृश्य बड़ा ही सुहावना प्रतीत होता है। बिजली की चमक ऐसी दिखाई देती है, मानो आकाश से स्वर्ण बरस रहा हो। यदि प्रेमिका अपने हृदयेश्वर के साथ है तो उसे 'दादुर' और 'मोर' के शब्द बड़े अच्छे मालूम होंगे : -

चमक बीजु बरसै जल सोना। दादुर मोर सब्द सुठ लोना।[1]

---

1. जायसीकृत 'पद्मावत' में पद्मावती का कथन ।

ऐसा ही उल्लास वर्षाकालीन संयोग श्रृंगार के गीतों में भी दिखायी देगा। उदाहरण के लिए राग मियां मल्हार, झपताल की एक चीज देखिये -

आयो है मेघ, नई रूत पावस झर लायो,
देख हुलसाय हिया, नए पिया प्यारी को।
पहन चूनर सुरंग, अंग भूखन नयो,
नयो बादर, नयो जोबन ब्रिजबारी को।[1]

संयोगात्मक उल्लास का कैसा सन्दर चित्र है, किन्तु वियोग में यही सुहावना दृश्य बड़ा ही दुःखद हो जाता है। संयोग के दिन एक टीस के साथ अतीत की मधुर स्मृति का रूप ले लेते हैं। उस समय बिजली की चमक से सोना बरसता हुआ नहीं मालूम होता, यही बिजली अब 'खड्ग' का रूप धारण कर लेती है और बूंदे बाण वर्षा की प्रतीत होने लगती हैं।

प्रिय के वियोग में प्रेयसी की दशा देखिये -

खड्ग बीजु चमके चहुं ओरा।
बूंद बान बरसहिं चहुं ओरा।

---

1. क्रमिक पुस्तक मालिका भाग - 4
2. जायसीकृत पद्मावत में नागमती का कथन।

राग मियां मल्हार (झपताल, ख्याल)

स्थायी -

नि		रे	म		म				
स	रे	प	ग	म	रे	-	स	रे	स
आ	ऽ	यो	है	ऽ	मे	ऽ	घ	न	इ
×		2			0		3		

स									
नी	स	रे	रे	स	नीध	नीध	नी	स	स
ऋ	तु	पा	व	स	झऽ	रऽ	ला	ऽ	यो
×		2			0		3		

प									
म	प	नीध	नी	स	स	-	नी	स	स
दे	ऽ	खऽ	हु	ल	सा	ऽ	य	हि	या
×		2			0		3		

म		नी			म	म			
नी	प	म	प	नी	ग	ग	म	रे	स
न	इ	पि	या	ऽ	प्या	ऽ	ऽ	री	को
×		2			0		3		

अन्तरा -

म	प	नीध	नी	सं	सं	नी	सं	-	सं
पे	ऽ	नऽ	चु	न	र	सु	रं	ऽ	ब
×		2			0		3		

सं					स		ध	ध	
नि	सं	रें	सं	-	नी	सं	नी	नी	प
अं	ऽ	ब	भू	ऽ	प	[illegible]	न	यो	ऽ
×		2			0		3		

अन्तरा -

									नी
म	प	नीध	नी	सं	रें	सं	रे	सं	सं
न	यो	SS	बा	S	द	र	न	यो	जो
×		2			0		3		

					म	म			
नी	प	म	प	नी	ग	ग	म	रे	स
ब	न	ब्र	ज	S	बा	S	S	रि	को
×		2			0		3		

संयोग के कारण प्रियतमा को जो वर्षा सुखद थी, वही वर्षा वियोग के कारण दुःखद प्रतीत हो रही है। अब हम गौड़ मल्हार की एक प्रसिद्ध चीज देखेंगे -

स्थायी -

आये बदरवा कारे, कारे, हमरे कंथ निपट भए बारे,

ऐसे समय परदेस सिधारे।

अन्तरा -

एक तो मुरला बन में पुकारे, मोहे जरी को अधिक जरावे

है कोई ऐसा पियु को मिलावे, उड़ जा पंक्षी कौन दिसा रे।

---

1. क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-4 से उद्धृत

गौड़ मल्हार (त्रिताल)

स्थायी -

ग	ग	-	म	ग	रे	स	-	-	ग	-	ग	गम	प	म	ग।
ऽ	आ	ऽ	ये	ब	द	रा	ऽ	ऽ	का	ऽ	रे	काऽ	ऽ	रे	ऽ
0				3				×				2			

ग							प		म			ध			
म	रे	म	-	प	-	प	ग	म	नी	ध	नी	प	ध	-	(म)
ह	म	रे	ऽ	कं	ऽ	ध	नि	प	ट	भ	ये	वा	ऽ	रे	ऽ
0				3				×				2			

म				सं		प						प	ध		
सं	-	सं	सं	ध	प	म	प	धनी	सं	ध	प	म	प	म	ग
ऐ	ऽ	से	सं	मै	ऽ	प	र	देऽ	ऽ	स	सि	धा	ऽ	रे	ऽ
0				3				×				2			

अन्तरा -

				नी	नी	ध						नि			
प	प	प	-	ध	ध	सं	-	सं	सं	सं	सं	सं	रें	सं	-
ए	क	तो	ऽ	मु	र	ला	ऽ	ब	न	मे	पु	का	ऽ	रे	ऽ
0				3				×				2			

सं	नी	नी	नी									सं			
ध	ध	ध	ध	सं	-	सं	-	स	रें	सं	-	ध	नी	प	-
मो	ऽ	हे	ज	री	ऽ	को	ऽ	अ	धि	क	ज	रा	ऽ	वे	ऽ
0				3				×				2			

ग						प		सं				ग			
म	रे	प	प	प	-	म	प	ध	सं	ध	प	म	-	(म)रे	
है	ऽ	को	इ	ऐ	ऽ	सो	ऽ	पि	यु	को	मि	ला	ऽ	वे	ऽ
0				3				×				2			

प				सं								प			
सं	सं	सं	सं	ध	प	म	प	धनी	संरे	नीसं	धप	म	प	म	ग
उ	ड़	जा	ऽ	पं	ऽ	छी	ऽ	कोऽ	ऽऽ	ऽऽ	नबि	सा	ऽ	रे	ऽ
0				3				×				2			

यहां पर हमने देखा कि वियोग के कारण प्रकृति का सुहावना दृश्य दुःखद हो रहा है। कहने का मतलब यह है कि संयोग पक्ष में प्रकृति का जो सौन्दर्य हृदय को अनुपम शीतलता प्रदान करने वाला होता है, वियोग रस में वही दृश्य हृदय को परम संताप पहुंचाने वाला हो जाता है।

श्रृंगार रसात्मक गीतों में नायिका के ही भावोंद्गारों का वर्णन केवल इसलिए मिलता है कि पुरूष हृदय की अपेक्षा रमणी हृदय अधिक भावुक होता है। पुरूष बुद्धि प्रधान है, परन्तु स्त्री भाव प्रधान है, जहां बुद्धि अधिक होती है। वहां भावुकता कुछ दब जाती है, तथा जहां भावुकता अधिक होती है, वहां बुद्धि की न्यूनता होती है। इसी कारण स्त्री हृदय को व्यक्त करने वाले गीतों में अधिक सच्चाई तथा अधिक भावुकता का भान होता है। इसी भारतीय संगीत के गीत कुछ ऐसे ढंग के हैं, मानों वे किसी स्त्री द्वारा गाये जा रहे हों।

---

1. क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-4 से उद्धृत पृ0 539

संधि प्रकाश कालीन रागों में प्रकृति अपने वास्तविक सत्य और स्वभाविक रूप में हमें आकर्षित करती है। बसंत और वर्षा ऋतु भी अपने स्वतंत्र स्वाभाविक और सत्य रूप में हृदय पर संवेदनात्मक प्रभाव डालती है। बसंत महाराज कामदेव का नवजात शिशु बन जाता है। वृक्ष की शाखाओं में उसके लिए नवीन पत्तों का बिछोना बनाकर प्रकृति पालना तैयार करती है, किन्तु प्रकृति के इस अनुपम सौन्दर्य को देखने के मस्तिष्क के समुचित विकास की आवश्यकता है। एक सच्चा गायक की आंखों से यह सौन्दर्य छिप नहीं सकता है। राग 'बहार' की एक प्रसिद्ध चीज देखिए -

बन-बन फूल रही सरसों।
बन-बन आई बसन्त बहार सकल बन फूल रही सरसों।
बागन में सखि अंबुआ फूले, फूले टेसुवा संग बन-बन,
कोयलिया कू-कू बोलत, बन आई बसंत बहार,
सकल बन फूल रही सरसों।[1]

भारतीय संगीत भावना प्रधान है। नौ रसों में से भारतीय संगीत में चार श्रृंगार, करूण, शांत और वीर रस ही ग्राह्य है। इन चार रसों में भी श्रृंगार रस अत्यधिक व्यापक होने के कारण विशेष महत्वपूर्ण है। भारतीय संगीत के गीतों में वीर रसात्मक गीतों का प्रत्येक राग में प्राचुर्य है।

---

1. क्रमिक पुस्तक मालिका से उदधृत ।

श्रृंगार रस रस राज माना जाता है। राग के रस और उपलब्ध चीजों के काव्य के साथ हम अच्छा समझौता कर सकते हैं। श्रृंगार की वियोग जन्य भावनाओं में हमें करूण रस का दर्शन हो जायेगा।

संगीत में प्रधान रस श्रृंगार मानकर उस रस को व्यापक रूप में ग्रहण कर लिया जाये तो वीर रसात्मक राग हमीर में 'कैसे घर जाऊं लगंरवा,' नामक प्रसिद्ध बंदिश को दिखाया जा सकता है।

राग हमीर त्रिताल (मध्य लय)

स्थायी -

ध	-	-	-	नी	ध	सं	-	ध	नी	प	ध	मं	प	ग	म
कै	ऽ	ऽ	ऽ	से	ऽ	घ	र	जा	ऽ	ऊं	ल	ग	र	वा	ऽ
0				3				×				2			
ध	-	-	-	नी	ध	रें	सं	ध	नी	प	ध	मं	ध	प	-
कै	ऽ	ऽ	ऽ	से	ऽ	घ	र	जा	ऽ	ऊं	ल	ग	र	वा	ऽ
0				3				×				2			
प	प			म				प							
म	ग	ग	मरे	ग	म	ध	प	ग	-	म	रे	स	रे	स	-
सु	न	पा	ऽऽ	वे	ऽ	मो	री	सा	ऽ	स	न	न	दि	या	ऽ
0				3				×				2			

अन्तरा -

प	-	प	प	सं	-	सं	सं	सं	सं	सं	-	सं	रें	सं	-
हूं	ऽ	जो	च	ली	ऽ	प	न	घ	ट	वा	ऽ	टा	ऽ	ढ़ो	ऽ
0				3				×				2			

धँ	-	ध	ध	सं	-	सं	-	सं	रें	सं	-	ध	ध	प	-
कौ	ऽ	न	ब	हा	ऽ	ने	ऽ	प्या	ऽ	रे	ऽ	ब	ल	मा	ऽ
0				3				×				2			

सं	-	मं	गं	गं	रें	सं	सं	ध	ध	सं	सं	सं	रें	सं	-
छी	ऽ	न	ल	ई	ऽ	मो	री	शी	ऽ	स	ग	रि	ऽ	या	ऽ
0				3				×				2			

ध	-	ध	-	धनी	सरें	स	नी	ध	नी	प	ध	म	प	ग	म
भ	र	जो	ऽ	रेऽ	ऽऽ	की	नी	हा	ऽ	रे	सुं	द	र	वा	ऽ
0				3				×				2			

वीर रसात्मक 'मालकौंस' में 'पिया संग लर पछतानीं' नामक बंदिश को भी स्थान मिल जायेगा।

राग मालकौंस (त्रिताल मध्यलय)

स्थायी -

ग						नी									
म	ग	स	स	स	स	ध	नी	स	-	म	-	-	-	ग	ग
पि	या	सं	ग	ल	र	पं	छ	ता	ऽ	नी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	में
0				3				×				2			

म	म			स		नी		म							
ग	गुम	ग	स	ग	स	ध	नी	स	-	म	-	-	-	ग	-
पि	याऽ	सं	ग	ल	र	प	छं	ता	ऽ	नी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
0				3				×				2			

								ध							
ग	सं	-	सं	सं	-	नी	ध	म	ध	नी	-	ध	नी	ध	म
ऽ	दे	ऽ	खो	ऐ	ऽ	सी	ऽ	म	द	की	ऽ	ए	ऽ	नि	मे
0				3				×				2			

अन्तरा -

ग		म				नी		यं							
म	म	ग	ग	म	-	ध	-	नी	नी	नी	सं	सं	सं	सं	-
उ	न	बि	न	मै	ऽ	का	ऽ	क	ल	ना	प	र	त	हे	ऽ
0				3				×				2			

नी								नी				नी			
सं	-	सं	-	(सं)	-	नी	ध	म	ध	नि	-	ध	नी	ध	म
यू	ऽ	ही	ऽ	रे	ऽ	न	बि	हा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	नी	ऽ
0				3				×				2			

ग		म				नी		सं			सं				
म	म	ग	म	म	म	ध	-	नी	सं	-	मं	-	मं	सं	सं
त	र	फ	त	र	फ	मै	ऽ	र	ही	ऽ	से	ऽ	ज	प	र
0				3				×				2			

नी			गं					ध				नी			
सं	-	सं	सं	-	सं	नी	धं	प	ध	नी	-	ध	नी	ध	म
जै	ऽ	से	मी	ऽ	न	बि	न	पा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	नि	मै
0				3				×				2			

---

1. क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-3 से उद्धृत पेज नं0 713-714

राग कालिगड़ा में 'गगरिया मैं कैसे ले घर जाऊं' शीर्षक गीत भी बुरा नहीं लगेगा।

राग कालिंगड़ा त्रिताल (मध्य लय)

स्थायी -

												नी			
												सं	नी		
												ग	ग		
	धृ			प				प		प		म			
धृ	सं	-	नी	धृ	-	(म)	-	धृ	प	ग	म	ग	-	-	ग
रि	या	ऽ	मैं	कै	ऽ	से	ऽ	ले	ऽ	घ	र	जा	ऽ	ऽ	ऊं
0				3				×				2			
रे		म				सं						प			
स	-	ग	म	प	ध	नी	सं	धृ	नी	सं	नी	धृ	प	सं	नी
बा	ऽ	ट	च	ल	त	मो	हे	रो	क	त	क	न्हा	ई	ग	ग
0				3				×				2			

अन्तरा

	प			सं				नी	सं			सं			
-	धृ	प	धृ	नी	-	सं	सं	सं	रें	सं	रें	नी	-	सं	-
ऽ	सा	स	बु	री	ऽ	मो	रि	न	न	द	ह	ठी	ऽ	ली	ऽ
0				3				×				2			
नी														मी	
सं	नी	सं	रें	(सं)	-	धृ	प	धध	नीसं	रेंरें	संनी	धृ	प	सं	नी
दे	व	रा	क	रे	ऽ	ल	र	कैऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	यां	ऽ	ग	ग
0				3				×				2			

---

1. क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-3 से उदधृत पृ0 346

राग अड़ाना में लंका बिलकां धौस धू है धौंक नामक ओजपूर्ण गीत के साथ 'गगरी मोरी भरन नाहि देत' को भी जगह मिल जायेगी।

राग अड़ाना झपताल (मध्य ताल)

स्थायी

सं	सं				रें				
नी	नी	सं	-	रें	नी	सं	नी	म	प
लं	ऽ	का	ऽ	बि	लं	ऽ	का	ऽ	ऽ
×		2			0		3		

		ग			ग				
ग	-	नी	म	प	ग	म	रे	-	स
धौं	ऽ	स	धू	ऽ	धे	ऽ	धं	ऽ	क
×		2			0		3		

रे		म		रे					
नी	सं	रे	म	म	प	प	नी	म	प
शा	ऽ	हे	ऽ	औ	रं	ग	जे	ऽ	ब
×		2			0		3		

प							प		
रें	रेंसं	रें	सं	रें	नी	सं	नी	म	प
च	ढ़ऽ	त	धा	ऽ	ड़े	ऽ	ड	र	त
×		2			0		3		

अंतरा -

म			प		प				
म	-	प	नी	प	सं	सं	सं	सं	-
इ	-	द	र	अ	स	न	ऽ	ल्यो	ऽ
×		2			0		3		

सं	सं							नी	
नी	नी	सं	रें	सं	नी	सं	रेंसं	ध	नीप
ऐ	ऽ	रा	व	त	त	ल	मऽ	ल्यो	ऽऽ
×		2			0		3		

मं	मं	मं	मं	गं					
गं	गं	गं	गं	मं	रें	रेंसं	रें	सं	-
से	ऽ	स	म	न	ख	लऽ	म	ल्यो	ऽ
×		2			0		3		

सं					रें		प		
नी	सं	रें	-	सं	नी	सं	नी	म	प
प	नि	या	ऽ	को	ऽ	ऽ	ह	र	त
×		2			0		3		

प				
सं	-	सं	-	रें
लं	ऽ	का	ऽ	छि

राग अड़ाना त्रिताल (मध्य लय)

स्थायी -

									रें	सं					
									ग	ग					
				प				नी							
रें	नी	सं	प	नी	म	प	सं	सं	-	नी	ध	नी	-	प	-
री	मो	रि	भ	र	न	न	हि	दे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	त	ऽ
0				3				×				2			

प				प		म		म							
म	-	प	प	नी	नी	ग	-	म	म	रे	स	रे	स	रें	सं
ढी	ऽ	ठ	ल	ग	र	वा	ऽ	ऽ	ऽ	म	त	वा	रो	ग	ग
0				3				×				2			

अंतरा -

म		नी	नी	सं				सं				नी			
म	ध	ध	ध	नी	सं	सं	सं	नी	सं	रें	संरें	सं	नीध	नी	प
जि	त	जा	ऊ	ऊं	ऽ	उ	त	आ	ऽ	ड़ो	हिऽ	दौ	ऽऽ	र	त
0				3				×				2			

प		सं		मं				सं				प			
म	प	नी	सं	गं	मं	रें	सं	नी	सं	रें	सं	नी	प	रें	सं
अ	ब	न	र	हूं	ऽ	मे	ऽ	तो	ऽ	री	न	ग	रे	ग	ग
0				3				×				2			

रागों में रस योजना का एक प्रयत्न प्राचीन छः राग, छत्तीस रागिनी वाली पद्धति में दिखायी देती है। इस मत में प्राचीन राग रागिनियों के देव स्वरूप का निरूपण और उनका ध्यान इत्यादि रस निष्पत्ति की ही दृष्टि से किया गया है। उपर्युक्त विवेचन में हम मल्हार के विभिन्न प्रकारों को श्रृंगार रसात्मक मान चुके हैं, संगीत पारिजात के अनुसार -

सुगौरवर्णा मलिनांशकान्विता वियोगिनी चंपकमालभूषिता

रहस्युपस्था रसिक प्रियाऽऽद्रिता मल्हारिका साऽश्रुदृगतिमंदगा।

अर्थात - जो सुन्दर गौर वर्ण वाली, मलिनवस्त्र धारण किये हुए, चंपक माल से विभूषित अश्रुपूर्ण नेत्रों वाली मंद गति से चलने वाली, एकांत में स्थित, वियोगिनी तथा जल से भीगी हुई रसिक प्रिया है, वह मल्हारी रागिनी है।

---

1. क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-3 से उद्धृत

2. संगीत पारिजात पृ0 109

या

स्मरातुरा क्षीणकलेवरा नता वनागमे प्राग्विरहेण तापिता।

निराश गीता किल वल्लकीकरा मल्हारिका रोदन वत्स्वराहेसा।।

जो कामातुर है, जिसका शरीर कमजोर पड़ गया है, जो नीचे की ओर (पृथ्वी पर) झुक रही है, जो बरसात के प्रारम्भ से ही विरह द्वारा तपायी गयी है, जो हाथ में वीणा लिये निराशा के गीत गा रही है तथा जिसके गाने की आवाज रोने जैसी हो रही है, ऐसी करुण स्वरपूर्ण मल्हारी रागिनी है।

इस चित्रण का यही उद्देश्य है कि राग का रस व्यक्त किया जा सके। यदि हम इस विवरण को आये बदरा कारे-कारे शीर्षक से तुलना करे, तो उन्हें अदभुत साम्य दृष्टिगोचर होगा। संगीत भाव प्रधान कला है और गायक यदि भावना से रहित होकर गीत को गायेगा तो आनन्द प्राप्त नहीं होगा।

राग रागिनी के प्राचीन विवरण पर यदि और सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाये तो स्पष्ट सिद्ध हो जायेगा कि यह विवरण हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन नायिका भेद के समान ही है। यहां पर हम एक उदाहरण दे सकते हैं : -

जावक लिलार ओठ अंजन की लीक सोहै

खैये न अलीक लोक-लीक न बिसारिए।

कवि 'मतिराम' छाती नख छत जगमगै,

डगमगै पग सूधै मग में न धारिए।

कसके उधारत हौं पलक-पलक ग्याते,

पलका पे पौढ़ी स्रम रीति को निवारिए

अटपटे बैन मुख बात न कहत बनै,

लटपटे पेंच सिर पाग के सुधारिए

कोऊ करौ कितेक यह, तजौ न टेव गुपाल

निस औरनि के पग परौं, दिन औरनि के लाल

मतिराम के इस चित्र से हम रामकली के प्रसिद्ध छोटे ख्याल की तुलना कर सकते हैं : -

स्थायी -

सगरी रैन के जागे, पागे।

सुघर चतुर सुजन बालमवा भोरहि मोरे आए।

अन्तरा -

बिन गुन माल अधर पर अंजन जावक तिलक लगाए।

हरि रंग कवन सती बड़भागिन तन मन धन न्यौछावर करिए।

---

1. मतिराम ग्रन्थावली पृ0 297-298

2. क्रमिक पुस्तक मालिका से उद्धृत

राग रामकली (त्रिताल, मध्य लय)

स्थायी -

म															
गम	नी	ध	प	-	ध	पम	प	(प)	-	म	-	(प)	-	म	ग
सS	ब	रि	रै	S	न	केS	S	जा	S	गे	S	पा	S	गे	S
0				3				×				2			

म								ग				ग			
म	ग	म	ग	रे	रे	म	प	म	ग	म	ग	रे	रे	स	-
सु	ध	र	च	तु	र	सु	र	ज	न	बा	S	ब	ल	मा	S
0				3				×				2			

म		म													
नी	स	ग	म	प	-	प	-	पधु	नीसं	संरें	संनी	धनी	धप	मग	म
भो	S	र	हि	मे	S	रे	S	आS	SS	SS	SS	SS	SS	SS	ये
0				3				×				2			

अन्तरा -

म												सं			
प	प	प	प	ध	-	नी	नी	सं	सं	सं	सं	नी	सं	सं	सं
बि	न	गु	न	मा	S	ल	अ	घ	र	प	र	अं	S	ज	न
0				3				×				2			

सं				गं				ध							
रें	-	मं	मं	रें	रें	सं	सं	पध	नीसं	संरें	संनी	धनी	धप	मग	म
जा	S	व	त	ति	ल	क	ल	गाS	SS	SS	SS	SS	SS	SS	ये
0				3				×				2			

नी				नी						म		ग			
सं	नी	सं	नी	ध	नी	ध	प	म	ग	प	मग	रे	-	स	स
ह	र	रं	ग	क	व	न	स	ती	ऽ	ब	ड़ऽ	भा	ऽ	गि	नि
0				3				×				2			

स		म						ध							
नी	स	ग	म	प	प	प	-	पधु	नीसं	सरें	संनी	धनी	धप	मग	म
त	न	म	न	ध	न	नौ	ऽ	छाऽ	ऽऽ	वऽ	रऽ	कऽ	राऽ	ऽऽ	ए
0				3				×				2			

कहने का तात्पर्य यह है कि समुचित रस योजना ही संगीत का मूल उद्‌देश्य है।

रागों द्वारा रस निष्पत्ति के विषय में कई प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या एक ही राग से अनेक गायकों द्वारा गाये जाने पर भी श्रोताओं में एक ही रस का सृजन होता है? या एक ही राग में श्रृंगार, करूण अथवा वीर रस प्रधान गीत सभी सफलता पूर्वक गाये जा सकते हैं ? उदाहरण के लिए एक बार किसी राग में एक गायक ने श्रृंगार रस प्रधान गीत का प्रयोग किया, दूसरी बार करूण प्रधान गीत का और तीसरी बार वीर या शांत रस के गीत का उपयोग किया। क्या ऐसे समय में उसी रस का गीत सफल होगा, जिस रस का वह राग है या नहीं। इस प्रश्न का उत्तर शायद गायन क्रिया द्वारा सम्भव है।

---

1. क्रमिक पुस्तक मालिका से उद्‌धृत ।

रागों का स्वरूप तो निश्चित है, उनसे जिस रस की सृष्टि हो सकती है, वह भी लगभग निश्चित है। उदाहरणार्थ मालकौंश, जैजैवन्ती, दरबारी कान्हड़ा, तोड़ी, आदि को शांत रस प्रधान, शंकरा, हिंडोल आदि को वीर रस प्रधान, छायानट, बागेश्वरी, यमन, बिहाग आदि को श्रृंगार रस प्रधान माना गया है।

भैरवी का मूल भाव करूणा है, भैरव का भाव करूणा या नैराश्य पूरिया की उदासीनता, पीलू, गारा खमाज आदि में उत्साह आदि भावों को माना जाता है।

रस ही राग में ज्योति उत्पन्न करता है, उसमें प्राण फूंकता है। यदि राग में वह रस नहीं तो राग भी निष्प्राण मूर्ति की भांति क्षणिक आनन्द ही दे सकेगी।

राग यदि एक वृक्ष है तो रंजकता उसका फल है। राग को गाने का लक्ष्य ही रंजकता द्वारा रस उत्पत्ति करना है। अतः राग और रस में वृक्ष और बीज का तथ्य है। उदाहरणार्थ यदि किसी राग से करूण या भयानक रस उत्पन्न होता है, तो उस दशा में मनुष्य को भय या शोक की अनुभूति होने पर भी एक ही तत्व अर्थात् आनन्द का अनुभव होगा। क्योंकि स्वर से रस की अभिव्यक्ति कौतूहल उत्पन्न करती है, जो अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराता है।

यदि कोई गायक एक करूण रस का राग गा रहा है, सहृदय श्रोताओं में करूणा का संचार हो रहा है, कुछ रोने भी लग सकते हैं। यह रूदन मूल

मे आनन्दात्मक ही है, श्रोताओं को दुःख की अनुभूति होती तो वे संगीत सुनते ही नहीं, उठकर चले जाते।

अर्थात हम कह सकते हैं कि राग गायन के रस द्वारा एक ऐसे वातावरण की सृष्टि करता है, जो उसकी तथा श्रोताओं को आनन्दानुभूत कराती है, उनको कुछ पलों के लिए अलौकिक सुख, ऐसा सुख जो इन्द्रियों के परे है, की अनुभूति कराती है।

अधिकतर संगीत के सात स्वर षडज, रिषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत, और निषाद का मूल विभिन्न पशु पक्षियों में क्रमशः केकी, चातक, छांगं, क्रौंचं, कोकिल, दादुर और गज में माना गया है।[1]

षडज का स्थान भैरव में रिषभ में मालकौंश में गंधार का श्री में पंचम का कोकिल में धैवत का दीपक में, निषाद का मेघ में और मध्यम का सभी रागों का बताया है।[2]

अधिकतर रागों का रूप भी पारम्परिक है। भैरव सदैव शिव के रूप

---

1. रागमाला से उद्घृत
2. रागमाला से उद्घृत ।

में अर्थात् भस्म रमाए, जटाधारी, गंगा धारण करने वाले योगी के रूप में दिखायी देते हैं।

सीस जटानि में गंग तरंग त्रिलोचन चंद लिलाटहिं ऊपर
लाल विसाल फनी सिर की, मनि जोति लसै कछु कुंडलि दूपर
हर रूप किये कर सूल लिये हरिवल्लभ रीझि बजै उमरूथर
भूषन नागनि के जनमें धरि भैरव राग विराजत भूपर।[1]

मालव कौशिक कोमलांगी कलाओं में भी निपुण है, और वीर रस के गुण उसमें निहित है।

इंदीवर दलहूं ते दीरघ हैं, देष दृग करि धरि तालबाल
मृदु मुस्क्यानी है।
जिय करि प्रीति हरिवल्लभ यौ सुष जीति ऐसी रस
रीति करि भैरवी वषानी है।[2]

दीपक राग भी अत्यन्त कामी, केलि कलाओं में प्रवीण और सुसज्जित

---

1. संगीत दर्पण - हरिवल्लभ से उद्धृत
2. संगीत दर्पण - हरिवल्लभ से उद्धृत

केलि कला में प्रवीन महा अंग अंग अनंग प्रशासि कियो है।

भामिनी मौन अंधेरै गई रति कौ अति आनंद मानि लियो है।

भूषन के मनि की उजियारी तहां प्रगट्यो रवि मानौ उचौ है।

दोखि तवै तिय कौ हरिवल्लभ दीपक कौ सकुचानौ हियो है।[1]

इसी तरह मेघ राग नील वर्ण का पीत वस्त्र धारण किये मन्द - मन्द मुस्कराता रहता है। अत्यन्त छबिवान, युवा और वर्षा का देने वाला है और श्रृंगार रस से परिपूर्ण है : -

नील सरोज लौ देह दिये कटि पैपट पीत विराजत है।

अति उज्जवल चंद उज्यारिहूं तै उधरैनं महा छवि छाजत है।

तन जोबन जोति लसै हरि वल्लभ मंद हंसै मुष साजतु है।

जलु जाचतु चातक जाचक लौं है मेघ सुराग यो गर्जत है।[2]

राग हिंडोल भी काम केलि में प्रवीण और श्रृंगार रस से उद्धृत है और रमणियों के साथ झूला झूलता हुआ राग रंग करता है और कला

---

1. संगीत दर्पण से उद्धृत
2. संगीत दर्पण - हरि वल्लभ

प्रिय है : -

झूलता झूला झुलावति है रमनी कमनी सुष रूप लह्यो है।

काम कुतूहल केलि करै अति कंचन के रंग चीरू गह्यो है।

लौनी लसै दुति देह की यो लषि गोत कपोत को लाजि रह्यो है।

बीना लएकर में रस रीत सो वल्लभ रागु हिंडोल कह्यो है।[1]

इस श्रृंगार रस के अतिरिक्त अन्य रसों से युक्त कुछ राग अपवाद स्वरूप हैं। जैसे राग देश वीररस से परिपूर्ण है : -

अंग कपूर हितै कमनीय सरोजनि हूं विराजे विलोचन

हरषै तन रोम छक्यो रस वीर मधीर बड़ी कछु नेकु कोचन।

दीरघ सोह लहै भुज दंड प्रचंड महाचित को अति रोचन

यो हरिवल्लभ राग देसाष सु मूरति मल्लहिं की दुष्मोचन।[2]

इसी प्रकार राग रागिनियों का स्वरूप निश्चित है और राग अर्थात प्रेम का अंश और काम का तत्व प्रत्येक में मिलता है। सभी इतने सुन्दर हैं कि श्रोताओं

---

1. संगीत दर्पण - हरि वल्लभ

2. संगीत दर्पण से उद्धृत

वे हृदय में रस उत्पन्न कर सकें।

उसी राग भूपाली प्रिय के वियोग में सखियों के मध्य बैठी है और शान्त रस में डूबी है। यद्यपि भूपाली को शांतरस से युक्त कहना उचित प्रतीत नहीं होता, लेकिन विप्रलंभ श्रृंगार से भीगी हुयी है -

भूपाली विरहन षरी केसरि बोरे चीर
भयो विरह के ज्वाल सो पियरी सकल शरीर।[1]

राग विशेष जिस रस को उत्पन्न करने में समर्थ है, उसका उसी प्रकार वर्णन किया गया है - जैसे रागिनी मधु माधवी कृष्णाभिसारिका नायेका के रूप में विरह से दग्ध हो प्रिय से मिलने जाती है -

नील तमाल तिलक तकि चली प्रीतम बिरह जबहि दल मली,
प्रिय मिलाप कह जिय अनुरागिनी, वरषां धन निकसी भर जामिनी।
चपला चमकि उज्यारी करी, लाल मात लखि त्रिय लरषरी,
तिहि छिन मारू उठ्यो कहराई, वरजति भामिनी भुजा उठाई।[2]

---

1. हिय हुलास राग माला से उद्घृत ।
2. राग माला से उद्घृत लछिमन दास द्वारा रचित ।

कुछ रागों में रागों के अनुकूल गीतों का भी वर्णन किया गया है। अधिकांश गीतों में कृष्ण और राधा के प्रेम का वर्णन है। संगीत में अनुकूल रंजक तथा ललित पदावली में बद्ध होने के कारण संगीतात्मक है। उदाहरण के लिए -

राग सिंदूरा (ताल दीपचंदी)

कनइया मोरे अनवट बिछवा समेत ल्यादे,

मोरे पैंरू कुंतन नुपरवां सथाई।

फगवा में खेलत बाजत नीके सौत का कलेजा

जलाऊंगी सुना के।

झीना झीना वाजना घघरवा, हीरा मोती

पनाउवा में मानिक लगा दे।

रसीला राज पिय लटुवा भयो जौ तुं अपने

करन सो देसर फहरा दें।[1]

कुछ ग्रन्थों का अध्ययन करने पर हमें यह विदित होता है कि कुछ राग परिवार तथा राग श्रृंगार से परिपूर्ण वर्णन हुआ है। उदाहरण के लिए हम राग भैरव परिवार का वर्णन देखें।

---

1. महाराज मानसिंह का ध्रुपद ख्याल, मुनि कांति सागर, संग्रह, उदयपुर से उद्धृत।

भैरव परिवार -

भैरव रूप जटा सिर नील तन भस्म वास तिल्क रेष

मुद्रा गंग त्रिसूल धर भैरव राग शुदेष।[1]

भैरव स्त्री -

मारू सिंधु भैरवी धनासरी बंगाल

सुद्ध भैरवी नारि सब गावत गुन गोपाल ।

भैरव पुत्र नाम -

भैरव शुद्ध ललित परम पंचम बंगाली पंच,

भैरव शुद्ध के पंच सुत गावत हरिगुण संच इति भैरव।

इसी प्रकार रागों के श्रृंगार और स्वरूप का लगभग सभी में एक ही सा वर्णन किया गया है, कहीं कहीं कुछ अन्तर दिखता है। जैसे गिरधर मिश्र की रागमाला में पट मंजरी का स्वरूप इस प्रकार है -

विरह तापतन घूसरइ पट मंजरी वियोग।

मलिन कुसुम माला धरई प्राणि दुखित मल योग।

---

1. राग माला कल्याण मिश्र द्वारा रचित ।

रागों में श्रृंगार रस के अतिरिक्त काम रस की विस्तृत योजना दिखायी देती है। जैसे - राधिका झूला झूल रही हैं। उस सौन्दर्य को देखकर हृदय में काम रस जागता है, जैसे राग हिंडौल में दिखाया गया है : -

आज हिंडोरे हैली रंग बरसे
झूले श्री वृष्भानुं कि सोरी सुन्दरता सरसें
धन्य भाग अनुराग पीयको दृग सुहाग दरसे,
झोटा रे मिस ब्रज निधि ने ही प्रिया अंग परसे।[1]

आश्रय भैरवी के हृदय में आलम्बन भैरव के प्रति 'रति' जागृत होती है। नायिका भैरवी सफेद साड़ी पहने चन्द्रमुख की उजियाली को फैलाती हुयी प्रातःकाल शिव की उपासना करती है : -

प्रात समै प्यारी उठि उठी श्वेत सारी भारी
फैली मुख चन्द्र की उजारी जोति जागती
गोरे भुजमूल शिव पूजि के चढ़ाय फूल,
दोऊ कर ताल बजावै प्रेम पागनी,
अंगी उर लाल कंज लोचन विसाल
बाल फटिक सिंहासन पे बैठी बड़ भागिनी

---

1. ब्रजनिधि ग्रन्थावली पृ0 250 से उद्धृत ।

गायतु कैलास के विलास में हुलास भरी,
भैरवी बखानी यह भैरव की रागिनी।[1]

राग धनश्री वियोग की पीड़ा को दूर करने के लिए शीतल जल के पास जाकर बैठ जाती है। मुख से दुःख के कारण कुछ नहीं कहती।

रति मन्दिर के ढिंग बाग तहां जल शीतलता सरसाय रहें,
तन की पीर मिटावत कौं तिय बैठी कछु दुष नाहिं कहे।
मन भावन की सुधि आय गई विरहानल अंग अनंग दहै,
छवि छीन धनासरि दीन भई तरंग कंजन् ते जल धार बहै।[2]

राग मालश्री रागिनी अपनी प्रिय को रिझाने के लिए कुसुम रचित आभूषण पहनती है तथा काम भावना के साथ हंसती है : -

कुसुम रचित भूषन पहर विहरत पिय के संग,
मालसिरी नवयौवना हंसतहि सहित अनंग।[3]

---

1. राग रत्नाकर
2. राग रत्नाकर से उद्धृत ।
3. राग माला से उद्धृत

अधिकांश राग और रागिनियां श्रृंगार रस, वीर रस और शान्त रस से युक्त हैं। लेकिन कुछ रागिनियां ऐसी भी मानी गयी हैं, जो वियोग में दुखी हैं। इसका कारण उनमें प्रयुक्त कोमल स्वरों का होना नहीं है, बल्कि गाने के प्रभाव की कल्पना करके इसका वर्णन किया गया है।

भैरव स्वयं योगी है, परन्तु उसकी भार्याओं में मध्यमा, भैरवी, बराटी, सम्भोग में रक्त रागिनियां हैं।[1]

मालकौंस स्वयं वीर रस से युक्त है, परन्तु उसकी रागिनियों में तोड़ी, खम्भावती और गौरी श्रृंगार रस में रत हैं और गुणकली, वियोग रस में है।

राग हिंडोल स्वयं सखियों के साथ झूलता रहता है। दीपक राग केलि कला में प्रवीण है और देसी श्रृंगार में रत रागिनी है, तथा कामोदी वियोगिनी है।

श्री राग किशोरावस्था का श्रृंगारी राग है। उसकी रागिनियां बसंत, मालव, संयोगिनी है। आसावरी, मल्हारी और धनाश्री वियोग रस में युक्त हैं।

इसी तरह सारंग नट, पहाड़ी, श्री, सारंग, सभी श्रृंगार रस के अन्तर्गत

---

1. संगीत दर्पण हरिवल्लभ द्वारा वर्णित ।

है।[1]

श्रृंगार रस के अतिरिक्त कुछ रागों तथा रागिनियों को वीर रस में रंजित दिखाया गया है। भैरव राग की एक रागिनी सैन्धवी वीर रस में रंगी है। मालव, कौशिक राग स्वयं वीर रस में मस्त रहता है, परन्तु उसकी पांचों रागिनियां श्रृंगार रस से परिपूर्ण हैं।

राग भैरव की रागिनी संधवी, प्रेम, वीर रस की वेश भूषा में है -

अति लाल लसें दुति अम्बर की तन में तरूनाई कछु सरसे
छवि सों धरि कानन बंधुक फूल त्रिशूल सदाकर सौ परसें
शिव पूजि षरी तिय क्रोध भरी मुख पै रस वीर मनु बरसै।
यह सींधवी मन मरोरन सौ मन पै पिय मारग को दरसे।[2]

यही सारी रसात्मकता रागों के स्वरूप वर्णन में ही मिलती है।

भैरवी अधिकतर भैरव (शिव) की पूजा में रत, पार्वती के रूप में वर्णित है : -

---

1. संगीत दर्पण से उद्धृत

2. राग माला, हरिश्चन्द्र मुनिकांति सागर संग्रह से उद्धृत ।

गिरि कैलास में विलास ह्रास बनि बैठी फटिक चौकी

पर गिरिजा सी जनी है।

चंदमुखी चपला तै चारू देह दुति दिपै कौल कुस

मनि शिव अरचा उठानी है।

इंदीवर दलहूं ते दीरघ है, देष दृग करि धरि ताल बाल

मृदु मुस्क्यानी है।

जिय करि प्रीति हरि वल्लभ यौ सुष जीति ऐसी रस रीति

करि भैरवी वषानी है।[1]

इन राग रागिनियों का स्वरूप वर्णन अधिकांश उनकी विशिष्ट वेश भूषा और उनमें निहित रस को लेकर ही हुआ है। रसों के अतिरिक्त रागों को ऋतुओं के अनुकूल गाया जाता है। कौन सा राग किस ऋतु के अनुकूल है, इसका भी विवेचन विभिन्न ग्रन्थों में हमें प्राप्त होता है।

श्री राग अपनी रागिनियों समेत शीत ऋतु में राग बसंत अपनी रागिनियों समेत बसंत ऋतु में भैरव अपनी रागिनियों के साथ ग्रीष्म ऋतु में पंचम अपनी युवतियों के साथ शरद ऋतु में, मेघ, राग रागिनियों समेत वर्षा ऋतु में और नट नारायण अपनी स्त्रियों के साथ हेमंत ऋतु में गाया जाता है।

---

1. संगीत दर्पण हरि वल्लभ द्वारा रचित उद्धृत ।

श्री रागिहि रागहि सहित सीत रितुहि सुष दाई
राग बसंतहिं जुबति संग रितु बसंत में गाई।
भैरव अपने संग सों ग्रीष्म पावे मोद,
पंचम निज जुवतनि सहित सरदहि करे विनोद।
मेघ राग रागिनी लिये वर्षाहिं शोभा देत,
नट नारायण साथ मिलि हें मतहि सुष लेत।[1]

भैरों सारद कार्तिकी सिसर हिण्डोल बसंत,
दीपक ग्रीष्म हेम श्री, मेघ सो पावस अन्त।[2]

उपयुक्त राग आर रस के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि राग में भाव की उत्पत्ति और रस की उत्पत्ति की शक्ति को सीमित है, परन्तु है अवश्य।

षडजादि स्वरों के अतिरिक्त अन्य पांच अंगों की निर्दोषिता भरत ने मानी है। ये पांच अंग इस प्रकार हैं - स्थान, वर्ण, काकु, अलंकार तथा अंग, नाट्य में उव्याध रस के अनुकूल ही इन समस्त अंगों का प्रयोग भरत को सम्मत है। उदाहरणार्थ वर्ण तथा काकु लीजिए। भरत के अनुसार पाठ्य के चार वर्ण है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा कंपित। इन वर्णों का प्रयोग विशिष्ट रस के अनुकूल सिद्ध हो सकता है।

---

1. संगीत दर्पण - हरि वल्लभ द्वारा रचित।

तत्र हास्य श्रृंगारयोः स्वरितोदान्तैः वीर रौद्राद्रभु तेषुदान्तकाम्पतै,

करूण वात्सल्यभयान केषूदान्त स्वरित कंल्पितैः वर्णा

पाठ्य मुपपाद्येर्दित।[1]

दूसरा उदाहरण काकु का लीजिए - काकु का ऐसा ध्वनि विकार अथवा स्वराघात है, जो विभिन्न भावों को व्यक्त करने के लिए नित्यशः प्रयुक्त होता है। भरत के अनुसार पाठ्य को रसानुकूल बनाने में काकु का योगदान था, महत्वपूर्ण नहीं। विशिष्ट उच्चतो, लय में काकु का प्रयोग विभिन्न रस के उद्बोधन में सहायक हो सकता है, ऐसा भरत का मत है : -

उच्चा दीप्ता च कर्तव्या काकुस्तत्र प्रयोक्तृभिः

हास्य श्रृंगार करूपेष्विष्टा काकु विलंबिता

वीर रौद्राद भुतेपूच्चा दीप्ता चापि प्रशस्यते।

भंयानके सबी भत्से द्रता नीचा च कीर्तिता

एवं भाव रस्तोपेता काकुर्योज्या प्रयोक्ताभिः।[2]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भरत प्रणीत रस कल्पना एक सामूहिक

---

1. नाट्य शास्त्र अंग - 29, पृ0 73, श्लोक - 14

2. नाट्य शास्त्र अंग-19, पृ0 222

अथवा सम्मिलित प्रक्रिया है, जिसमें पाठगान, अभिनय आदि सभी अंगों का महत्वपूर्ण योगदान है। पाठ्य के अन्तर्गत केवल मात्र षडजादि स्वरों का प्रयोग रस सिद्धि में सहायक नहीं पहुंचाता। पाठ्य के अन्याय गुणों से युक्त होकर वह अभीष्ट रस सिद्धि में सहायक हो सकता है। स्वतंत्र रूप से नहीं। भरत के अनुसार नाट्यवेद का निर्माण पाठ्य, गीत, अभिनय तथा रस इन्हीं चार अंगों से हुआ है। इसी को दृष्टिगत कर गान्धर्व के निरूपण में रस सम्बन्धित किंचित विवेचन नाट्य शात्र में हुआ है।

धुवा नामक गीतों का विवेचन भरत ने नाट्य की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर किया है। इन गीतों का गान भरत प्रणीत नाट्य के लिए प्राणभूत है:-

प्राणभूते तावद धुवा गाने में प्रयोगस्य।[1]

धुवा गीत तथा षडजादि ग्रामरागों का प्रयोग नाट्य में अभीष्ट रस का पोषक हो ऐसा भरत का स्पष्ट संकेत है।

नाट्य में ही उन्हीं ध्रुवाओं का प्रयोग रूचिकर हो सकता है, प्रकरणानुकूल हो, तथा नाट्य के अभीष्ट रस में सहायक हो। धुवा से तात्पर्य उन नाट्य गीतों से है, जो नाट्य के विभिन्न प्रसंगों को शब्द तथा स्वर के सहारे अभिव्यक्त करते हैं।

---

1. नाट्य शास्त्र अंग - 19, पृ0 223, श्लोक - 57-58

ध्रुवाओं का उद्देश्य अर्थाभिव्यक्ति होने के कारण वर्णालंकार का प्रयोग उसी के अनुसार होना चाहिए, ऐसा संकेत भरत ने निम्न श्लोक में स्पष्ट रूप से किया है . -

यस्मादर्थानुरूपा हि ध्रुवा कार्यार्थदर्शिका
वर्णानां तु पुनः कार्यं कृशत्वं पदसंश्रयम्।[1]

अध्याय 28 के अंत तथा 29 के आरम्भ में जातियों का अष्ट रसों के साथ सम्बन्ध भरत के द्वारा स्थापित हुआ है। जन जातियों का गान विशुद्ध अथवा गीत निरपेक्ष्य न होते हुए ध्रुवा गीतों के साथ किया जाना विदित है, यह तथ्य ध्यान देने योग्य है।

जाति गान में उन्हीं ध्रुवाओं का प्रयोग किया जाना चाहिए, जो रस कार्य तथा अवस्था के अनुकूल हो। इस स्थिति में ऐसी जातियों का चयन किया जाना चाहिए। जिनका अंश स्वर अभीष्ट स्वर का पोषक हो, स्पष्ट है नाट्य शास्त्र में जाति तथा रस का जो विवेचन है, वह नाट्य निर्पेक्ष न होते हुए सम्पूर्णतः नाट्य सापेक्ष है। नाट्य के अन्तर्गत उनके स्थान तथा प्रयोग कें अनुकूल ही रस चर्चा वहां हुई है।

नाट्यतिरिक्त संगीत के सम्बन्ध में भरत की क्या मान्यता है, इसको

नाट्यशास्त्र अंग-29, श्लोक 29, पृ0 87

समझने के लिए भरत की गान्धर्व विषयक मान्यता को हृदयगंम करना अभीष्ट है। संगीत के लिए गान्धर्व संज्ञा नाट्य शास्त्र में पायी जाती है। भरत के अनुसार गान्धर्व मुख्यत: गान है और केवल अनुषांगिक रूप से वीणा तथा वंशी वादन का समावेश उसमें होता है। उनकी दृष्टि में गान्धर्व मूलतः संगीत अर्थात सम्यक रूप से गया जाने वाला गीत है और वह गीत शब्द एवं अर्थ से कथमपि विरहित नहीं। गान्धर्व की व्याख्या करते समय सार्थक पद समूह को भरत ने आवश्यक माना है। स्वर वर्णो का उसी अंश तक प्रयोग उन्हें सम्मत है, जो अर्थ सिद्धि के लिए विघातक न हो संगीत का गान पदगत भावों के अनुकूल होने पर ही विशिष्ट रस की सिद्धि में सहायक हो सकता है, अन्यथा नहीं। इस दृष्टि से देखे जाने पर यह विदित होगा कि भरत प्रणीत संगीत का क्षेत्र काव्य क्षेत्र से मिलता जुलता है, अन्तर केवल यही है कि काव्य में भावाभिव्यक्ति का माध्यम केवल शब्द और अर्थ है और संगीत में माध्यम स्वर, शब्द तथा अर्थ तीनों हैं। गायन में अर्थ हानि करने वाला स्वर विलास भरत सम्मत नहीं कहा जा सकता। भरत की दृष्टि से काव्य तथा संगीत दोनों का अन्योश्रय सम्बन्ध है।

भरत की संगीत विषयक मान्यता को देखने पर यह स्पष्ट होगा कि नाट्य तथा काव्य की भरत प्रणीत रस प्रक्रिया तत्कालीन संगीत पर भी चरितार्थ होती है। काव्य तथा संगीत का क्षेत्र शब्दार्थ तत्व की दृष्टि से अभिन्न होने के कारण काव्य में जो स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव आदि होते हैं, संगीत के क्षेत्र में उनकी

---

1. नाट्य शास्त्र अंग 32 से उद्धृत ।

स्थिति मानी जा सकती है। शब्द तथा अर्थ के आधार पर समस्त भाव संसार की सृष्टि सम्भाव्य है तथा इस कार्य के लिए संगीत काव्य की अपेक्षा अधिक प्रभावक्षम हो सकता है। काव्य में श्रृंगार के लिए स्थायी भाव है। नायक नायिका आलम्बन विभाव है। भरत का यह विधान है कि गीत नाट्य शय्या है, और उसी को सर्वप्रथम प्रयास पूर्वक व्यवस्थित किया जाना चाहिए, इसी अर्थ में सामंजस्य तथा युक्ति युक्त प्रतीत होता है।

भरत का रस विषयक विवेचन शब्द प्रधान संगीत के साथ ही अन्वर्थक हो सकता है, न कि उस संगीत के सम्बन्ध में जो आधुनिक परिभाषा में स्वर प्रधान कहा जाता है। शब्द प्राधान्य के कारण रसोत्पत्ति की समस्त विभावादि की प्रक्रिया इसमें समाविष्ट हो जाती है। जाति गायन तथा वाद्य वादन की इस निर्माण क्षमता विशिष्ट संदर्भ एवं वातावरण पर निर्भर है।

मतंग की वृहद्देशी में विशिष्ट रस की निष्पत्ति के लिए रागों का विनियोग नाट्य की विभिन्न संधियों में निर्दिष्ट किया गया है, ऐसे ही प्रसंग में संगीत सप्त स्वर विभिन्न रसों के लिए पोषक सिद्ध हो सकते हैं, स्वतंत्र रूप से नहीं।

शुद्ध षाडव नामक राग में मध्यम को ग्रह, अंश, न्यास कहा गया है, तथा इसमें श्रृंगार हास्य रस का विनियोग कहा गया है।

शुद्ध साधारित में तार षडज स्वर ग्रह तथा अंश हैं, तथा इसका रस वीर रौद्र है। शुद्ध कौशिक मध्यम में तार षडज ग्रह अंश है, तथा इसका 'रस वीर रौद्र है।

भिन्न षडज नामक राग में धैवत ग्रह तथा अंश है एवं इसका प्रयोग वीभत्स भयानक रस में होता है। इस प्रकार अन्य रागों के लिए रस कहे गये हैं।

मतंग के पश्चात नान्य, अभि, सोमेश्वर आदि ने, पश्चात कालीन ग्रंथकारों ने भी रागों के लिए रसों का प्रयोजन कहा है। भरत भाष्य के पंचम अलंकाराध्याय में अन्य रागाणं रसेषु विनियोगे कहकर रसों का रागों में विनियोग इस प्रकार कहा है : -

हिंडोले मालवारव्यश्च श्रृंगार रस माश्रितो,

पच्चमष्टक्क रागस्तु वीर रौद्रे यथाक्रमम्

कारूण्ये कुकुमश्चैव हास्ये मालव कौशिक:

कुकुभे भयानके कार्य: षडजे।वीभत्स शान्तयो:

एते रसाश्रिता रागा योज्या: सर्वत्र गीतके।

इस प्रकार नारद ने संगीत मकरंद में भिन्न-भिन्न स्वरों का प्रयोग भिन्न भिन्न रसों के लिए बताया है।

यथा -

षडजस्याद्भुवीरौ च ऋषभस्य च रोद्रक:

गांधारास्य च शांतं च हास्यास्य मध्यमस्य च।

पंचमस्य च श्रृंगारे वीभत्सो धैवतस्य च

करूण निषादस्य सप्तस्थान रसानव।

अर्थात षडज से अदभुत वीर रस, श्रृषभ से रौद्र, गांधार से शांत, मध्य से हास्य, पंचम से श्रृंगार, धैवत से वीभत्स तथा निषाद से करूण रस की निष्पत्ति होती है।

भरत की रस कल्पना में भरत ने स्वरों का सम्बन्ध रस से जोड़ा है और नारद द्वारा बताये हुए स्वरों का सम्बन्ध भरत द्वारा बताये हुए स्वरों से भिन्न है। इस कारण संगीत में तथा विद्वानों के मतों में भिन्नता कहा जा सकता है, किन्तु भरत से शारंगदेव तक सभी संगीत के आचार्यों ने राग रस के सम्बन्ध को स्वीकार किया है। इन आचार्यों ने सभी रसों के लिए रागों का विनियोग कहा है तथा इसके लिए स्वर निश्चित किये हैं, किन्तु केवल राग की दृष्टि से विचार करने पर यह कहा जा सकता है कि राग से सभी रसों की प्रतीति नहीं होती। केवल निश्चित किए हुए एक स्वर से भी रस की निष्पत्ति सम्भव नहीं होती। भरत मुनि ने श्रृंगार रस में मध्यम स्वर की प्रधानता कही है, किन्तु ऐसे अनेक राग प्रचलित हैं, जिनमें मध्यम का निषेध है, फिर भी वे राग श्रृंगार की पूर्ण अवतारणा करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक

रस में अनेक रागों के उदाहरण मिल जाते हैं।

भरत ने तो शांत रस के प्रयोग की प्रधानता को स्वीकार ही नहीं किया है -

न शांत रस प्रधानता प्रयोगस्य भवति।[1]

किन्तु संगीत के ग्रन्थकारों ने रागों में शांत रस का विनियोग स्वीकार किया है और जहां तक राग रस का प्रश्न यह है, उचित ही है। पं0 भातखण्डे जी ने संगीत शास्त्र की चर्चा करते हुए इस सिद्धान्त का ही अनुकरण किया है। सभी प्राचीन ग्रन्थकारों ने किसी एक स्वर से ही रस की सृष्टि बतायी है, परन्तु यदि रागों का विश्लेषण करके देखा जाये तो केवल एक ही स्वर से किसी विशेष रस की उत्पत्ति सम्भव नहीं है। एक साथ कई स्वरों को मिलाकर ही रस निष्पत्ति सम्भव है, और ऐसा ही स्वर समूह राग की संज्ञा धारण करता है। अतः स्पष्ट है कि राग विशेष में ही रस की उत्पत्ति हो सकती है।

पं0 शारंदेव ने सातों ग्राम रागों में रस की स्थिति को प्रकट किया है। मध्यम ग्राम के सम्बन्ध में शारंग देव का कथन है कि मध्यम ग्राम राग का विनियोग हास्य एवं श्रृंगार में है। यह राग गंधारी, मध्यमा तथा पंचमी जातियों से मिलकर उत्पन्न हुआ है। काकली नि का प्रयोग इसमें निहित है। इस राग का ग्रह, अंश,

---

1. नाट्य शास्त्र भाग-4, अंग - 29, पृ0 78

स्वर, मद्र षडज न्यास स्वर मध्यम और मूर्च्छना सौवीरी है। प्रसन्नादि और अवरोही के द्वारा मुख सन्धि में ही इसका विनियोग है। यह राग ग्रीष्म ऋतु के प्रथम पहर में सदा रंजक है। इसी प्रकार षडज ग्राम में वीर रौद्र अद्भुत रसों की प्रधानता है। इस राग का देवता वृहस्पति है तथा वर्षा ऋतु के प्रथम प्रहर में गेय है। साधारित में वीर तथा रौद्र रस प्रधान है। पंचम ग्राम राग में श्रृंगार तथा हास्य रस प्रधान है। कौशिक ग्राम में रौद्र एवं अद्भुत रस का संचार होता है। षाडव राग, मध्यमा जाति के विकृत रूप से उत्पन्न हुआ है इसे हास्य और श्रृंगार रस का दीपक माना जाता है। कौशिक मध्यम राग में वीर, अद्भुत एवं रौद्र रस का विनियोग होता है। इसके अतिरिक्त शारंदेव ने वीभत्स रस के लिए तथा प्राक् प्रसिद्ध एवं अधुना प्रसिद्ध रागों में भी रसों का विनियोग कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि शारंगदेव के राग वर्णन में प्रायः सभी रसों का प्रयोग हुआ है।

राग की सीमा काव्य या नाटक की तरह विस्तृत नहीं है। अतः राग में भाव बोधन की शक्ति सीमित है। राग का मूलाधार - सरेगमधनी ये ही स्वर हैं। इन 7 स्वरों के साथ-साथ इनके कोमल विकृत रूपों से ही समस्त राग जगत का निर्माण होता है। जहां तक रागों से रसों की अनुभूति का प्रश्न है वहां रौद्र, वीभत्स, भयानक तथा हास्य रस का संगीत से सम्बन्ध नहीं है। ऐसा कहने में हमें कोई आपत्ति नहीं है। संगीत में जिन रसों का सम्बन्ध है, उनमें श्रृंगार, करूण, वीर, भक्ति एवं शात रस की प्रधानता है, जो विभिन्न उपादानों से प्रकट होता है।

हिन्दी साहित्य के शैशव काल में ही सिद्ध कवियों द्वारा पदों में राग रागिनियों को बांधकर गाये जाने की प्रथा चल पड़ी थी। जयदेव ने गीत गोविन्द के गीतों पर रागों के नाम दिये हैं, जैसे गुर्जर, मालव आदि। सूर, मीरा के पदों पर भी रागों के नाम मिलत हैं। संत कवियों ने शास्त्रीय संगीत का अध्ययन कर राग रागिनियों में अपने काव्य को बांधा।

संत कवियों की रचनाओं में शांत रस की प्रधानता है, कुछ सीमा तक रागों का प्रयोग भी अनुकूल वातावरण के अनुसार होता था। ध्रुपद को अपनी आरम्भिक अवस्थाओं में मन्दिरों में स्थान प्राप्त था। ध्रुपद गायकी को सुनते हुए यह कहा जा सकता है कि ध्रुपद में तत्कालीन समय में भक्ति एवं शांत रस की प्रधानता थी, उचित लय, काव्य तथा राग की सहायता से रसानुभूति होती थी। ध्रुपद के पश्चात, हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में गायन के अन्य प्रकार जैसे ख्याल, ठुमरी आदि प्रचलित हुए। इन गायन के प्रकारों में बात बढ़त करने के लिए अधिक स्वतंत्रता थी। इनके नियम भी ध्रुपद की तरह कठोर न थे। इनमें प्रयुक्त होने वाला काव्य श्रृंगारिक भावनाओं से परिपूर्ण था।

ठुमरी गायन में तो कई रागों के माध्यम से भावों को निखारा जाता है। रागों (स्वरों) का मिश्रण तथा बोलों के साथ जब कलाकार अपनी भावनाओं को साकार रूप में प्रदर्शित करने की कोशिश करता है। तब वह स्वयं तथा श्रोता, दोनों ही रस

मग्न हो जाते हैं और यही हिन्दुस्तानी राग की विशेषता है, जो अपने आप में अनूठी एवं बेजोड़ है।

राग संगीत में प्रयुक्त रस -

रस के गुण रंजकत्व को हमारे संगीत के ग्रंथों में वर्णित किया गया है। राग हमारे संगीत की आत्मा है, मतंग के अनुसार रंजन के कारण ही राग व्युत्पत्ति कही गयी है। यथा -

रञ्जनाज्जयाते रागो व्युत्पत्ति समुदाहता।[1]

मतंग के पश्चात कालीन लेखक पं0 शुभकर ने राग को तीनों लोकों को आनन्दित करने वाला कहा है। राग का यह गुण हमारे संगीत में माना जाता है।

हमारा शास्त्रीय संगीत स्वतंत्र एवं अपने में पूर्ण है, इसे प्रदर्शित करने के लिए ध्वनि की आवश्यकता है। बिना कविता के आश्रय के संगीत से रस सृष्टि होती है, जिसका उल्लेख ध्वनिकार ने ध्वन्यालोक में किया है। साहित्य से रस का समन्वय संगीत में हुआ है। अतः प्रश्न यह उठता है कि क्या राग संगीत से पारम्परिक रसों की सृष्टि होती है? इस विषय में संगीतज्ञों में एकमत नहीं है।

---

1. बृहद्देशी पृ0 8।

पंण्डित रविशंकर के अनुसार -

Each Raga has its principal rasa, for there may be other similar rasas associated with that same raga. For instance I may play raga Malkauns whose principal mood is vir but I could begin by expressing Shanta and Karuna in Alap and develop into Vir and Adbhut or even Raudra in playing the Jor or Jhala.[1]

(My Music My Life Page 27).

आधुनिक विद्वान पं0 भातखण्डे जी ने राग और रस के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए कहा है कि सन्धि प्रकाश रागों का उपयोग करूण और शान्त रस तथा इनके अंतमूत रसों का परिपोषक होता है। त्रिव रेध और ग वाले राग श्रृंगार, हास्य और इनके अन्तर्गत रसों के पोषक होते हैं और कोमल गनि वाले राग वीर, रौद्र और भयानक रसों के पोषक होते हैं।[2]

(क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-5, पृ0 37)

के0 वृहस्पति के अनुसार रसों को स्वरों के माध्यम से इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है। अंश स्वर स्थायी भाव के आलम्बन को संवादी स्वर उद्दीपन विभाव को, अनुवादी स्वर अनुभावों को तथा संचारी भावों को प्रकट करते हैं।[3]

(भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ0 67 से उद्धृत)

उपयुक्त मतों के विरूद्ध कुछ विद्वान तथा संगीतज्ञों का मत है कि पारम्परिक (साहित्यिक या काव्य के) रस से शास्त्रीय रागों का विशेष सम्बन्ध नहीं है।

इस प्रकार रांग तथा रस के सम्बन्ध में हम दो प्रकार के मतों से परिचित होते हैं, किन्तु तर्कपूर्ण दृष्टि से विचार किया जाये तो केवल संगीत के स्वर साहित्यिक रसों की सृष्टि करने में समर्थ नहीं हैं। इस प्रकार काल्पनिक काव्य को एक साधारण व्यक्ति पढ़कर यह बता सकता है कि इसमें करूण रस है, उस प्रकार किसी राग को सुनकर संगीत के श्रोता को यह बताया कठिन है कि इसमें अमुक ही प्रयुक्त हुआ है।

यह सत्य है कि शास्त्रीय संगीत का प्रत्येक राग किसी न किसी भावना से अवश्य सम्बन्धित है। संगीत की सृष्टि में जहां ओज और माधुर्य की रस सरिता है। वहां दूसरी ओर काव्य में वीर, करूण रस के सागर भी प्रस्तुत हैं। श्रुति, भिन्नता एवं स्वर लगाव से एक ही स्वरों के होते हुए भी राग अपनी भिन्न-भिन्न छवि उत्पन्न करते हैं। गम्भीर प्रकृति के रागों से जिस प्रकार श्रृंगार रस उत्पन्न नहीं हो सकता। उसी प्रकार बारीक तथा हल्के स्वरों द्वारा शांत रस की उत्पत्ति नहीं हो सकती। राग में प्रयुक्त होने वाले स्वरों के अनुसार प्रत्येक राग श्रोताओं के हृदय पर अपना विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करता है, यही हमारे राग की विशेशता है।

राग में रस सृष्टि विभिन्न उपादानों से सम्भव है। जैसे कि राग की

परिभाषाओं से तथा मतंग के कथन से स्पष्ट है कि रंजन शब्द का प्रयोग राग के महत्व संदर्भ में किया गया है। रंजकता के लिए ही राग का निर्माण हुआ है, अथवा राग वह है, जिसमें मन का रंजन हो। रंजकता को ही दूसरे शब्दों में रस भी कहा जा सकता है। राग का सांध्य रंजकता तथा सौंदर्य है। कभी सौंदर्य स्वर से तो कभी लय से प्रस्फुटित होता है। प्रत्येक राग का अपना एक स्वरूप एक व्यक्तित्व होता है, जो उसमें लगने वाले स्वर उनके परस्पर सम्बन्ध, स्वर लगाव उनके स्वर स्थान, विश्रांति स्थान, कण, मीड, आदि पर निर्भर करता है। प्रत्येक राग में वही सात शुद्ध तथा पांच विकृत स्वरों में से ही कुछ स्वर लगते हैं। परन्तु समान स्वर होने पर भी उनके लगाने का ढंग, स्वरों के अल्पत्व बहुत्व के कारण प्रत्येक राग की आकृति अलग हो जाती है। उदाहरणस्वरूप दरबारी कांहड़ा, अड़ाना या देशकार तथा भूपाली को ही ले लीजिए, इन दोनों रागों की जोड़ियों में स्वर लगाव तथा रागों के चलन से राग के भिन्न-भिन्न रस प्रस्फुटित होते हैं। यद्यपि इन जोड़ियों में दोनों रागों के स्वर एक ही हैं, किन्तु समान स्वरों के होते हुए भी दरबारी गम्भीर प्रकृति का तथा अड़ाना चंचल, अल्हड़ युवती सा श्रृंगारपूर्ण प्रतीत होता है।

राग एक सम्पूर्ण भवन की तरह है, जिसका निर्माण कई तत्वों से होता है। राग के कई पहलू हैं, जिनसे राग की आत्मा रस से परिप्लावित होती है। राग का रस कलाकार के कला प्रदर्शन (अर्थात परफारमर) पर उसके सुनने तथा सराहने वालों तथा जिस माध्यम से राग प्रदर्शित किया जाता है, उस माध्यम पर निर्भर करता है। राग के हर पहलू से रसोत्पत्ति होती है। राग गायन को यदि हम विभिन्न

भागों में विभक्त करें तो उसके कई घटक हो सकते हैं। आलाप, प्रबंध, तान, लय आदि। गीत या धुन राग के वाह्य रूप का निर्माण करते हैं, जिसे प्रबंध कहा जा सकता है। प्रबंध में उचित शब्दों के प्रयोग से रसोत्पत्ति होती है। रसोत्पत्ति की अनुभूति राग गायन में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न गायन शैलियों से भी होती है। जैसे ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी, आदि।

आलाप राग का आधार है। मुख्यतः आलाप पर ही राग का सौन्दर्य या राग का रस निर्भर करता है। राग की आकृति बनी बनायी नहीं होती। केवल राग के आरोह-अवरोह को गाने या बजाने से राग का सौन्दर्य प्रस्फुटित नहीं होता, इसके लिए राग में आलाप का प्रयोजन कहा है। जब एक-एक स्वर की सहायता से कलाकार आलाप करके राग की बढ़त करता है तभी राग रूप साकार होता है। अपने भावों को व्यक्त करने के लिए राग पर पूर्ण आधिपत्य होना कलाकार के लिए नितान्त आवश्यक है। राग की प्रकृति (चलन) के अनुसार अपनी कल्पना तथा योग्यता के अनुसार मीड, गमक तथा कण स्वरों के प्रयोग से कलाकार आलाप के माध्यम से सौन्दर्य बोध कराता है। जैसे दरबारी का आन्दोलित उत्तरा गंधार, नायकी, अड़ाना, सूहा, बागेश्वरी के कोमल गंधार से अलग रहता है। तोड़ी के अति कोमल गंधार की अपनी अलग ही शान है। अतः किस स्वर कण लगाया जाय, कौन सा स्वर गमक से तथा कौन सा स्वर मीड के साथ लिया जाना चाहिए, यह सौन्दर्य इतना सूक्ष्म है कि इसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। कलाकार अपनी कला द्वारा ही इसे प्रदर्शित करके रसोत्पत्ति करता है, जिसका श्रोतागण अनुभव कर सकते हैं।

राग में सौन्दर्य बोध का अन्य तत्व है, स्वरों का लगाव। राग का सौन्दर्य स्वर के लगाव पर निर्भर होता है, प्रत्येक स्वर का अपना सौन्दर्य होता है, वातावरण होता है, आवश्यकता होती है, उसे प्रदर्शित करने की राग को प्रस्तुत करने से पूर्व गायक या वादक के मन में सौन्दर्य का सूक्ष्म रूप होता है। उसी को वह स्वरों के माध्यम से व्यक्त करता है। कलाकार के मन का सौन्दर्य, आधार, वाह्य सौन्दर्य आधार से एक हो जाता है। इस सौन्दर्य आधार में निरन्तरता, मधुरता, अखण्डता आदि तत्वों से एक पृष्ठभूमि तैयार होती है। इसी के आधार पर एक के बाद एक रूप का सृजन होता है। प्रत्येक रूप उस पृष्ठभूमि में एका कार होता रहता है। राग प्रारम्भ करने के बाद आलाप के द्वारा राग का वातावरण बना दिया जाता है। स्वर विस्तार के द्वारा राग का वातावरण इस प्रकार कलाकार और श्रोताओं के मन तथा मस्तिष्क पर छा जाता है कि वह रस विभोर होकर थोड़ी देर के लिए अपने आप को भी भूल जाते हैं।

आलाप से राग की प्रतिष्ठा स्थापित करने पर राग में तानों का प्रयोग होता है। तानों से राग का सौन्दर्य बढ़ता है तथा राग में वैचित्य का निर्माण होता है। गीत के बोलों के साथ अथवा केवल आकार की सहायता से छोटे-छोटे स्वर समुदायों से राग की बढ़त की जाती है। राग में यह स्थिति आलाप तथा तान के मध्य की होती है, जो श्रोताओं में आने आने वाले वैचित्य को सुनने के लिए उत्कंठा बनाये रखती है। इसके बाद कलाकार अपनी कला का प्रदर्शन करने हेतु अपनी बुद्धि से तथा अपनी शिक्षा के अनुसार भिन्न प्रकार की तानों से राग में वैचित्य निर्माण करता है। तान के प्रदर्शन में राग का कला पक्ष या चमत्कार प्रदर्शन का प्राधान्य रहता

है। राग में तान का प्रयोग उचित मात्रा में ही सौन्दर्य बोध में सहायक होता है। तानों की अति हो जाने से रसात्मकता में बाधा आने लगती है। तान का विवरण देते समय पं0 भातखण्डे जी ने कहा है कि - तानों का मुख्य प्रयोजन गायन का वैचित्य अधिकाधिक बढ़ाना है। राग के स्वरूप को देखते हुए निरन्तर नवीन तानों के प्रयोग से सौन्दर्य वृद्धि होती है।

राग में अन्य तत्वों के साथ लय का भी महत्वपूर्ण स्थान है। लय के बिला राग में गति उत्पन्न नहीं होती। बिना ताल या लय के राग गाया तो जा सकता है, किन्तु ताल की अनुपस्थिति में कलाकार अपनी कला पूर्ण रूप से प्रदर्शित करने के प्रोत्साहन नहीं मिलता। प्राचीन काल में गीतं वाद्यं तथा नृत्य व्यसंगीत मुच्यते, कहा गया है, जिसके अनुसार तीनों कलायें साथ-साथ प्रयुक्त होती थी। कालांतर में तीनों कलाओं का स्वतंत्र विकास हुआ, किन्तु तीनों में ही लय का प्राधान्य रहा। राग गायन या वादन में लय की संज्ञा के लिए अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग होता है। वाद्य वादन तथा नृत्य भी लय पर निर्भर रहता है। अतः लय संगीत का आवश्यक तत्व है।

भरत ने भिन्न रसों के लिए 3 प्रकार के लयों का प्रयोजन कहा है-

हास्य श्रृंगारयोमध्यलयः करूणे विलंबित

वीर रौद्राद्रभुत वीभत्सव-भयानकेषु द्रत इति।[1]

---

1. नाट्य शास्त्र अंग-19, पृ0 224

प्रतीत होता है कि भरत ने इन लयों का प्रयोग नाट्य के संदर्भ में कहा हो। राग गायन प्रसंग पर होने से भी विशेष आनन्द देता है। हिन्दुस्तानी संगीत में संगीत की कुछ ऐसी परम्परायें चली आ रही हैं, जिनका आनन्द उनके विशेष अवसर पर गाये बजाये जाने से ही विशेष रूप से होता है। ऐसे अवसरों के लिए भिन्न-भिन्न गायन शैलियां तथा भिन्न-भिन्न रागों का प्रयोजन कहा है।

सावन का महीना, आकाश में काली घटाएं तथा चारों ओर गरजती चमकती बिजली एवं वर्षा की रिमझिम में मल्हारों का अपना ही सौन्दर्य होता है। बरसते हुए बादलों के साथ मल्हार कभी भयानक तो कभी श्रृंगारिक होकर अपना सौन्दर्य बिखेरता है। देस राग का भी वर्षा में विशेष आनन्द आता है। सावन में जहां तहां कजरी की अपनी अलग ही विधा होती है।

ऋतु राज बसंत तथा बसंत राग का सम्बन्ध अभिन्न है। बसंत ऋतु में प्रकृति का सौन्दर्य किस मानस मन को नहीं भाता? ऐसे उल्लासित एवं श्रृंगारिक वातावरण में जब बसंत बहार या बसंत बहार के स्वरों को कोई गायक या वादक निपुणता से गाता या बजाता है। तो उसका आनन्द अवर्णनीय हो जाता है।

बसंत के बाद जब फाल्गुन की बारी आती है, तो जगह-जगह होरियों की धूम मच जाती है। फागुन की होरी में प्रायः काफी राग के गाने-बजाने का प्रचार है। धमार ताल में निबद्ध जब होरी का गायन होता है, तब वातावरण में होली की

रंगरेलियां आ जाती हैं।

राग में ध्वनि तथा स्वरों से काकु का प्रयोग है। भरत के अनुसार पाठ्य को रसानुकूल बनाने में काकु का योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं है। विशिष्ट उच्चता लय में काकू का प्रयोग विभिन्न रसों के उद्बोधन में सहायक हो सकता है, ऐसा भरत का मत है : -

अथ काकूनां रसेषु विनियोग : -

हास्ये श्रृंगार करूणोविष्टा काकुर्विलम्बिता

वीर रौद्राद्रभूतेच्चा दीप्ता चापि प्रशस्यते।

भयानके सवीभत्से द्रुता नीचा च कीर्तिता।

एवं भाव रसोपेता काकुः कार्या प्रयोक्तृभिः।[1]

(भरत भाष्यम् पंचम अध्याय, पृ0 150)।

भरत ने काकु का वर्णन नाट्य प्रयोग में दर्शाया है, किन्तु शारंगदेव ने काकु का प्रयोग संगीत के संदर्भ में किया है। पं0 शारंगदेव के अनुसार काकु एक स्थाय प्रकार है तथा स्थाय राग के अवयव है। अतः काकु भी राग के लिए आवश्यक है, ऐसा कहने में कोई आपत्ति नहीं है।

भावों की अभिव्यक्ति काकु से ही सम्भव हो सकती है, जिसे इस प्रकार समझा जा सकता है। करूणावस्था भाव प्रदर्शन में यह आवश्यक नहीं की कलाकार

स्वयं पीड़ित हो, किन्तु ध्वनि के विकार अर्थात् काकु के सहारे वह अपने गले से यह भाव प्रकट करने में समर्थ होता है। वादन की अपेक्षा गायन में काकु का अधिक महत्व है। इसी प्रकार अन्य रस जैसे श्रृंगार, रौद्र, शांत आदि रसों के रसास्वादन के लिए राग में काकु का महत्व है।

अंततः समस्त राग रस प्रकरण को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि राग में भाव बोधन की क्षमता है, जो उसकें भिन्न-भिन्न उपादानों से प्रकट होती है, तथा सहृदय की आत्मा को रसाप्लावित करती है।

xxx

अध्याय - षष्टम्

राग का अभिप्राय जन चित्त को रंजित करना है और चूंकि किसी के मन को प्रसन्न करने का कोई विशेष समय नहीं हुआ करता । अतः राग गायन पर काल प्रतिबन्ध बहुत उचित नहीं प्रतीत होता। राग तथा समय के सम्बन्ध पर विचार करने से पूर्व हमें राग व रस के सम्बन्धों पर विचार करना होगा। रस का सम्बन्ध माननीय भावों से है। ये भाव अनेक हो सकते हैं। इनमें हर्ष, विषाद, प्रेम, घृणा, वात्सल्य शौर्य, आदि प्रमुख हैं। ये सब स्थायी भाव हैं और साहित्य के नौ रसों की आधार शिला का निर्माण करते हैं। जिस प्रकार प्रत्येक रस किसी न किसी माननीय भाव का प्रतिनिधित्व करता है। उसी प्रकार संगीत का प्रत्येक राग किसी न किसी रस का सम्बद्ध हुआ करता है। राग भीमपलासी का सम्बद्ध विद्वान लोग वीर रस से मानते हैं और मालकोंश का शांत रस से 'वसंत' मधु ऋतु के आगमन पर उल्लास की भावना को व्यक्त करता है। मेघ वर्षा ऋतु के आगमन पर आनन्द की सृष्टि करता है और भैरवी के माध्यम से प्रेम तथा भक्ति की भावना अभिव्यक्ति की जाती है।

स्वर लय ताल युक्त काव्य रसाप्लावन करता है। गीता की एक युक्ति है -

विषया विनिवर्तते निराहारस्यदोहिनः रसवर्जरसोऽप्यस्य परं दृष्टवा निवर्तते।[1] अर्थात विषय वासना से मुक्ति सम्भव है, रस से नहीं।

---

1. निबन्ध संग्रह पृ0 284 से उद्धृत ।

वैदिक काल से वर्तमान काल तक भरत, दत्तिल, मतंग, जयदेव और विद्यापति ने अपने-अपने भावों को संगीतमय ढंग से प्रस्तुत किया है। जयदेव के 'बनमाली बसंती बने' व विद्यापति के 'माधव कत तीर करब बड़ाई मे काव्य तथा संगीत के संश्लिष्ट रूप विभिन्न रसों की सृष्टि करते हैं। सूरदास व तत्कालीन कवियों ने विनय के पदों में बिलावल, बागेश्वरी, आसावरी, टोड़ी, करूण प्रसंगों में काफी, जयजयवन्ती, मल्हार, भैरव, बसंत आदि रागों का प्रयोग किया है।

जब हम राग और समय के परम्परागत सम्बन्ध पर विचार करते हैं तो वहां नियम तथा अपवाद एक दूसरे को काटते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। शास्त्रकारों ने मध्यम को अध्वदर्शक स्वर कहा -

मध्यम को दो रूप में लिया - कोमल मध्यम वतीव्र मध्यम। बहुत से संगीतज्ञ कोमल मध्यम को शुद्ध मध्यम की संज्ञा देते हैं, किन्तु मैं केदार राग के 'मंपधपम'-- से इस निष्कर्ष पर पहुंचती हूं कि 'म' को कोमल मध्यम ही कहना उचित है। संगीतज्ञों ने दिन के चौबीस घंटे को दो समान भागों में विभक्त किया। दिन के बारह बजे से रात्रि के बारह बजे तक के भाग को पूर्वार्द्ध और रात्रि के बारह बजे से दिन के बारह बजे तक के भाग को उत्तरार्द्ध कहा। उन्होंने पूर्वार्द्ध में तीव्र में व उत्तरार्द्ध में कोमल 'म' की प्रधानता को माना है।

उदाहरणार्थ - भैरवी और मालकौंश जिनका समय उत्तरार्द्ध में कोमल

म की प्रधानता लिये होते हैं तथा पूरिया धनाश्री आदि जिन्हें पूर्वाद्ध में गाया बजाया जाता है। मुख्यतः तीव्र 'म' को लिये होते हैं, किन्तु इनके अपवाद हैं भीमपलासी व बागेश्वरी जिनमें कोमल गन्धार लगता है, किन्तु जिन्हें हम पूर्वाद्ध में ही प्रयुक्त करते हैं। संधि प्रकाश रागों के सम्बन्ध में विचार करने पर हमारे समक्ष पुनः अपवादों की समस्या आ उपस्थित होती है। रात्रि व प्रातः की सन्धि के समय भैरव, कालिंगड़ा आदि का प्रयोग होता है तथा दिन और रात्रि की सन्धि के समय पूर्वी श्री आदि रागों का प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत 'रे, ध' व 'म' कोमल वाले राग हैं तथा द्वितीय श्रेणी में 'रे, ध' कोमल किन्तु 'म' तीव्र वाले राग हैं। समय का यह नियम भी अपवादों से ग्रस्त है। मारवा और सोहनी भी संधिप्रकाशरागों की कोटि में आते हैं, लेकिन इनमें ऋषभ, कोमल किन्तु धैवत शुद्ध प्रयुक्त होता है।

ऋषभ तथा धैवत शुद्ध वाले किन्तु मध्यम कोमल वाले रागों को दिन के सात बजे से रात्रि दस बजे तक तथा ऋषभ धैवत शुद्ध मध्यम तीव्र वाले रागों को सन्ध्या सात बजे से रात्रि दस बजे तक गाने का नियम है।[1]

प्रथम श्रेणी में बिलावल को रख सकते हैं और दूसरी श्रेणी में खमाज बिहाग केदार आदि को। अपवाद यहां भी है, हिंडोल में मध्यम तीव्र प्रयुक्त होता है, किन्तु उसका गायन समय दिन के सात से दस बजे के ही अन्तर्गत है।

---

1. निबन्ध संग्रह से उद्धृत पृ0 286

अपवादों से उबकर हमारे शास्त्रकारों ने वादी संवादी स्वरों के आधार पर भी रागों के समय का निर्धारण किया। जिन रागों के वादी स्वर सप्तक के पूर्वांग "सरेमप" में थे, उन्हें पूर्वांग में तथा जिन रागों के वादी संवादी सप्तक के उत्तरांग में मपधनीस में थे, उन्हें उत्तरार्द्ध अर्थात बारह बजे रात्रि से बारह बजे दिन के बीच गाने बजाने का नियम बनाया। यहां भी अपवादों का अभाव नहीं था। राग हमीर का उत्तरांग प्रबल राग (सनीधपमंपगमध...) की संज्ञा दो दी, किन्तु इसकी अवतारणा पूर्वांग में ही करने की परिपाटी को बदल नहीं सके।

कतिपय ऐसे राग सामने आये जो क्रमशः राग गायन नियम के बंधन से मुक्त होते गये। उदाहरण के लिए बसंत राग की अवतारणा नियमतः दिवस के उत्तरार्ध में होनी चाहिए और बहार राग के लिए भी मध्य रात्रि का समय निश्चित है, किन्तु बसंत ऋतु में इन्हें अभ्यास में हर समय ग्रहण करने की प्रथा है।

पूर्वी की प्रातःकालीन अवतारणा कर्णकटु ही प्रतीत होगी। इसलिए नहीं कि हमारे कान उन्हें विपरीत समय में सुनने के अभ्यस्त नहीं। अपितु इसलिए कि राग के स्वभाव के साथ प्रकृति का बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध है और उपयुक्त बेला राग की अवतारणा हेतु विशेष रूप से सहायक सिद्ध होती है।

गीतों के अर्थों के आधार पर भी राग का चयन करना आवश्यक है तथा समय का भी इससे बड़ा गहरा सम्बन्ध है।

उदाहरण के यदि शाम भई, धनश्याम न आये किसी सांध्यकालीन संधि प्रकाश राग में न बांधकर भैरव राग में बांध दिया जाय या जागो मोहन प्यारे को केदार राग में बांध दिया जाये तो सांगीतिक दृष्टि से न तो धनश्याम का ही आगमन हो पायेगा। और न मोहन प्यारे ही जाग पायेगें। भैरवी में एक प्रसिद्ध ठुमरी है, बोल है - छांड़ दे गलबैयां श्याम, भोर भयो अंगना, दीप तेज मंद होत तारन का पालना, पनघट पनिहारी चली हमहूं जात जमुना। इसे गायक प्रायः दादरा में गाते हैं। यदि हम परम्परागत नियमों का अनुसरण करें तो इसकी बंदिश भैरव राग में होनी चाहिए। क्योंकि गीत का अर्थ संधि प्रकाश को व्यक्त करता है और भैरवी भी सन्धि प्रकाश राग है। भैरवी गायन के समय 'दीप तेज' का प्रश्न ही नहीं उठता और पनहारि भी पनघट से प्रत्यावर्तित हो चुकी होती है। अस्तु नियम की गहराई में अवगाहन करने का फल यही होगा कि हम किसी भी गीत को स्वच्छ रूप से किसी राग में आबद्ध कर गा नहीं पायेगें और गाकर भी उसका वास्तविक आनन्द प्राप्त करने से वंचित रह जायेगें।

हर राग का सम्बन्ध जहां किसी न किसी रस विशेष से होता है, वहीं एक ही राग में कई रसों का समागम भी एक साथ हुआ करता है। उदाहरणार्थ राग दरबारी कांहड़ा में कई रसों का समागम भी एक साथ हुआ करता है।

यथा - ध़॒ नी़॒ स रे ग॒ ऽ रे स ध़॒ ऽ ऽ ऽ स्वर समूह करूण रस की है, ग॒ म रे स ध़॒ नी़॒ रे स रे ग ऽ ऽ श्रृंगार रस की, म प ध॒ ऽ ऽ नी॒ ऽ प, शांत अथवा भक्ति

रस की ओर गं मं रें सं·ध ऽ नी ध ऽ नी नी प म प नी ग ऽ म रे स उल्लास या उमंग के भाव हैं।

सच तो यह है कि रसों का वास्तविक जन्मदाता स्वयं कलाकार हुआ करता है। वह अपने अभ्यास तथा अपनी सूझबूझ के आधार पर शांत रस के राग से भी रस की सृष्टि कर सकता है और करुण रस के रागों में उल्लास व उमंग भर सकता है।

यदि हम अपनी मानसिक शक्ति आरोपित करेंगें, तो संगीत संगीत नहीं रह जायगा, वह गणितीय सूत्र का रूप धारण कर लेगा। यह तो हम निर्णय कर सकते हैं कि भैरवी का मालाकेंश गाने से हममें उत्तेजना क्यों नहीं जागृत होती, शक्ति का बोध क्यों होता है। मल्हार गाने से हममे स्फूर्ति क्यों आती है, हमें दुःख क्यों नहीं होता। समय को प्रतिबन्ध के रूप में न देखकर यदि विवेक की सहायता से स्वानुभूति के आधार पर उसे पथ प्रदर्शक के रूप में देखा जाये तो इससे संगीत जगत का वास्तविक लाभ होगा अथवा नहीं।

संगीत में सिद्धान्त काल्पनिक हैं, इसके लिए कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है, किन्तु रागों के विशाल समूह में रागों का क्रम बनाये रखने के लिए तथा पाठ्यक्रम की सुविधा की दृष्टि से रागों का अपने समय पर गाना बजाना उचित समय पर प्रतीत होता है।

यों तो सभी ऋतुओं का संगीत में स्थान है, किन्तु बसंत एवं ग्रीष्म ऋतु संगीत की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्रियात्मक दृष्टि से अधिकतर रागों का विधान उक्त तीन ऋतुओं के अन्तर्गत किया गया है।

राग भारतीय संगीत की मौलिक एवं महत्वपूर्ण कल्पना है। राग तथा उनके गायन समय में गहरा सम्बन्ध है।

कालिदास जैसा महान कवि तथा नाटककार ने भी समय, ऋतु, सिद्धान्त को कम महत्वपूर्ण नहीं समझा। उन्होंने अपने प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान शाकुंतलम में ऋतु के अनुसार गायन का निर्देश दिया है। नाटक में नान्दी के पश्चात जब सूत्रधार प्रवेश करता है तब सभा में बैठे हुए श्रोताओं को आनन्दमग्न करने के लिए अभी अभी आरम्भ हुए उपभोग योग्य ग्रीष्म ऋतु के अनुसार गीत गाने का नटी को आदेश करता है।

सूत्रधार :-

किमन्यदस्याः परिषदः श्रुति प्रसादनतः ? तदिममेव

तावदचिरप्रवृत्तमुप भोगक्षमं ग्रीष्मसमयधिकृत्य गीयताम्।[1]

---

1. अभिज्ञान शाकुंतलम, प्रथम अंक, पृ0 4 से उद्धृत ।

इस प्रकार राग के आरम्भिक अवस्था में तथा उससे पहिले ग्रंथकारों ने तथा कवियों ने इस सिद्धान्त को महत्व दिया, फिर राग जैसे विस्तृत विषय के साथ इसे कैसे छोड़ा जा सकता है।

राग गायन प्रचार में आने पर संगीतज्ञों ने रागों का गायन समय तथा ऋतुओं से सम्बन्ध स्थापित किया।

प्राचीन काल के अंतिम ग्रंथकार पं0 शारंगदेव ने सभी वर्गों के रागों का सम्बन्ध ऋतुओं तथा विभिन्न समय से स्थापित किया है, उदाहरण स्वरूप पं0 शारंगदेव का राग ऋतु सम्बन्ध इस प्रकार देखा जा सकता है।

षडज ग्राम राग का प्रयोग वर्षा ऋतु में होता था, उसी प्रकार अन्य राग
भिन्न कौशिक - शिशिर ऋतु में,
गौड़ पंचम - ग्रीष्म ऋतु में ।
भिन्न षडज - हेमन्त ऋतु में ।
हिंदोल - बसंत में तथा
बसंती को- शरद में गाने का उल्लेख है।

इसके अतिरिक्त अन्य रागों के गायन समय का निर्देश भी रत्नाकर के रागों में है, जिससे विदित होता है कि प्राचीन काल के ग्रंथकारों को रागों को उनके

नियत समय पर गाना या बजाना मंजूर था। रत्नाकर ने दिन तथा रात्रि के भिन्न-भिन्न समय में गाये या बजाये जाने वाले रागों का तथा भिन्न-भिन्न ऋतुओं में गाये जाने वाले रागों का उल्लेख है।

कुछ विशेष अवसरों पर गाये जाने वाले रागों का उल्लेख भी ग्रंथकारों ने अपने ग्रंथ में किया है, जैसे मतंग ने यज्ञकाल के समय गायी जाने वाली भाषा का उल्लेख किया है : -

मध्यमांशा धवैतांशा षाडवा ऋषभान्विता।

गीतये यज्ञकाले या सा ख्याता वाह्य षाडवा।[1]

शारंगदेव ने टक्क राग का वर्णन किया है, जिससे टक्क राग का समय युद्ध के समय नियोजित था, ऐसा प्रतीत होता है : -

वीर रौद्राद भुतर से युद्धवीरे नियुज्यते।[2]

सोमेश्वर ने अवसर के अनुसार गाये जाने वाले गीतों का वर्णन किया है। विवाह के मंगलपूर्ण गीत, भक्तों के समक्ष सद्धोत्पादक गीत गाने का आदेश

---

1. मतंग कृत वृहद्देशी से उद्धृत ।
2. शारंगदेवकृत संगीत रत्नाकर से उद्धृत ।

दिया है : -

शुभवाक्यैर्युतं गीतं शुद्ध पञ्चमनिर्मितम्
विवाहाद्युत्सवे गेयं मंगलं महिला प्रियम्
देवतास्तुति संयुक्तं तत्प्रभावबोधकम्
अस्तिक्योत्पादनं गीत स्तोत्रं भक्तजनप्रियम्।

भक्ति काल में कुछ कवि हुए, जिन्होंने अपने काव्य में रागों का उल्लेख किया है। जैसे कबीर, मीरा, कुंभनदास, सूरदास, तानसेन, तुलसीदास।

राग का प्रभाव यह है कि दुष्ट और सन्त, छोटा और बड़ा, वृद्ध अथवा युवक जो कोई सुने वह आनन्द को प्राप्त हो, इस लक्ष्य को अपनी दृष्टि में रखकर ऋतु और उसके राग कहता है।

षट ऋतुएं इस प्रकार हैं - बसन्त ऋतु, अर्थात चैत और वैशाख, ग्रीष्म ऋतु - ज्येष्ठ और आषाढ़, सावन और भादों - शरद ऋतु, असोज - क्वार तथा कार्तिक, हेमन्त ऋतु - अगहन और पोश शिशिर माह तथा फालगुन।

षट ऋतुओं का वर्णन करने के बाद उनमें राग रागिनियों एवं पुत्रों का वर्णन किया जाता है। बसंत ऋतु में हिंडोल राग तथा रागिनियों एवं पुत्रों को गाया

जाता है।

ग्रीष्म ऋतु का राग दीपक है। पावस का राग मेघ है और शरद का श्री राग है। हेमन्त का मालकौंस तथा शिशिर का भैरव राग है। इस प्रकार औरंगजेब के सूबेदार फकिरूल्ला के राग ऋतु सिद्धान्त से आधुनिक ऋतु सिद्धान्त भी कुछ-कुछ मिलता जुलता है।

संगीत दर्पण में रागों का ऋतुओं से सम्बन्ध भी बताया गया है -

श्री रागो रागिनी युक्तः शिशिरे गीतये बुधैः
बसन्त सहायस्तु बसन्ततौ प्रगीयते।[1]

अर्थात श्री राग तथा उसकी रागिनियों को पंडित जन शिशिर ऋतु में गाते थे। बसंत तथा उसका परिवार बसन्त ऋतु में भैरव ता उसका परिवार ग्रीष्म ऋतु में गाया जाता था। मेघ राग तथा उसकी रागिनियों को वर्षा ऋतु में गाया जाता था। इस प्रकार राग तथा उसके परिवार का सम्बन्ध विभिन्न ऋतुओं के साथ जोड़ा गया है। अन्त में दामोदर पण्डित कहते हैं कि : -

यथेच्छया वा गातव्याः सर्वतुर्षु सुखप्रदाः [2]

---

1. संगीत दर्पण श्लोक 27, पृ0 77 से उद्धृत ।

2. संगीत दर्पण, श्लोक 30, पृ0 77 से उद्धृत

अर्थात अपनी इच्छा से गाने से कोई भी राग सभी ऋतुओं में सुख प्रदान करेगा।

पं० दामोदर के उपर्युक्त कथन से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि रागों का समय सिद्धान्त उस समय प्रचलित था, किन्तु उसके नियम इतने कठोर थे कि उनका उल्लंघन न किया जा सके।

संगीत के इतिहास में जितने भी ग्रंथकार हुए हैं, प्राय. सभी राग के समय सिद्धान्त को स्वीकारते हैं।

पं० लोचन ने रागों के अर्वाचीन तथा प्राचीन गायन समय को बताया है। लोचन द्वारा बताये हुए राग तथा उसके गायन समय के सिद्धान्त से आधुनिक समय पर प्रकाश पड़ता है, जैसे -

भैरव तथा रामकली को प्रातः काल में गाया जाता था।

आसावरी को दिन के तृतीय प्रहर में ।

केदार - महानिशि अर्थात अर्ध रात्रि में ।

अड़ाना - रात्रि के तीसरे प्रहर में ।

कर्नाट - रात्रि के द्वितीय प्रहर में ।

तोड़ी - को दोपहर में गाया जाता था।

आधुनिक काल में भी इन रागों का गायन समय प्रायः यही है। कुछ थोड़ा सा अन्तर है, जैसे तोड़ी को दोपहर में न गाकर प्रायः बारह बजे से पहले-पहले गाया जाता है।

पं0 अहोबल ने अपने संगीत पारिजात में रागों के समय चक्र का उल्लेख किया है। वे अपने रागों का वर्णन करते समय राग के गायन समय का तथा उनका ऋतओं से सम्बन्ध इस प्रकार स्थापित करते हैं। मेघ मल्हार के वर्णन में -

मल्लारो वर्षासु सुखदायकम्

यतो वर्षासु गेयोऽयं मेघ इत्यपि कीर्तितः

अकाल राग गानेन जातदोष हरत्ययम्

इस प्रकार मेघ को वर्षा ऋतु के साथ जोड़ा गया है। आधुनिक समय में मल्हारों के वर्षा ऋतु के अतिरिक्त रात्रि में गाया बजाया जाता है।

अठाहरवीं शताब्दी के ग्रंथकार श्री कंठ ने भी राग ऋतु तथा समय सिद्धान्त को स्वीकारा है। श्री कंठ के अनुसार सायंकालीन राग - मालव गौड़, बहुली, पाली, गौड़ी तथा कल्याण है।

प्रातःगे राग - गुर्जरी, पंचम, भैरव, ललित, विलावल, मल्हार।

दिन के अन्तिम समय में गाये जाने वाले राग श्री, कर्नाट, गौड़ तथा शुद्ध नट थे।

दिवस के उदय के समय - तोड़ी शंकराभरण

सर्वकालीन राग - घण्टारव, नट्ट नारायण

प्रातः काल में - बसन्त

रात्रि में - कामोद

मध्यान्त में - शारंग

इसी प्रकार रागों के लिए ऋतुएं भी निर्देशित की गयी हैं : -

भूपालः शिशिरे बसंत समये गेयोबंसतो मुदा

ग्रीष्मे भैर बसंज्ञकोऽति सुभगो वर्षासु मेघामिधः

रागो राग विद्यां वरैः किल शरत्काले पुनः पंचमो

हेमन्ते च नटात्परोऽति रूचिरो नारायणाख्य क्रमात - इति ऋतु रागः।

उपयुक्त संगीतज्ञों के वर्णन में हमने देखा कि राग ऋतु तथा राग समय सिद्धान्त को ग्रंथकारों ने स्वीकारा है। इन ग्रंथकारों के समय में स्वरों की संख्या भिन्न-भिन्न थी, तथा रागों के रूप भी अलग-अलग थे। अतः इन ग्रंथकारों ने अपने अपने मतानुसार रागों का सम्बन्ध समय तथा ऋतुओं से स्थापित किया। किसी ने एक राग तथा उससे सम्पूर्ण परिवार को एक ऋतु में विभाजित किया तो किसी ने अलग-अलग रागों को अलग-अलग ऋतुओं में। राग गायन समय के विषय में इन विद्वानों का क्या सिद्धान्त है, यह स्पष्ट नहीं होता, किन्तु रागों को भिन्न समय में गाया जाता होगा,

यह तो ग्रन्थों से पूर्ण रूपेण स्पष्ट होता है।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के सर्वसाधारण नियमों के अन्तर्गत यह भी नियम है कि राग अपने नियत समय पर गाया जाने पर ही अधिक शोभनीय होता है

यथाकाले समारब्धं गीतं भवति रञ्जकम्

अतः स्वरस्य नियमात् रागेऽपि नियमः कृतः। [1]

तात्पर्य यह है कि जब यह मान लिया गया कि अमुक समय में अमुक प्रकार के स्वर अधिक रंजक होते हैं, तब उन स्वरों के अनुसार रागों का समय नियत करना अपने आप सिद्ध हो जाता है।

आधुनिक संगीत में राग ऋतु सिद्धान्त का विशेष महत्व नहीं रहा है, किन्तु ऋतुओं में बसंत तथा वर्षा राग के गायन तथा वादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण ऋतुएं हैं, जिनके अनुसार आधुनिक संगीत में राग गायन प्रचलित है।

निश्चित समय में गाने या बजाने से राग का पूर्ण असर श्रोताओं पर होता है, यह अनुभव सिद्ध बात है कि वे तथ्य आधुनिक राग व्यवस्था को देखते हुए प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

प्रातः काल में गाये, बजाये जाने वाले भैरव, कालिंगड़ा या जोगिया को

दिन में या सायंकाल गाने से इसके सौन्दर्य वृद्धि में बाधा पड़ती है। उसी प्रकार मध्याह्न में गाये बजाये जाने वाले मधमाद सारंग या वृन्दावनी सारंग को रात्रि में गाने से श्रोताओं में हास्यास्पद घटना होगी।

ऋतुओं के साथ भी इस सम्बन्ध को नकारा नहीं जा सकता। गरजते हुए मेघ तथा उमड़ी हुई घटा को देखकर किस गायक का वादक का मन न होगा कि वो मल्हार के सुर न छेड़े, मल्हार तथा उसके प्रकारों को वर्षा ऋतु में विशेष रूप में किसी भी समय गाया बजाया जाता है। मल्हार के लिए वर्षा सुसुखदायकः इस प्रकार कहा गया है।

प्रकृति में सुदूर तक फैले हुए भिन्न फूलों के सौन्दर्य को देखकर तथा प्रकृति में फैली हुई बहार को देखकर बरबस ही गले से बसंत बहार के स्वर फूट पड़ते हैं।

बसंत, बहार, बसंत बहार ये राग विशेषतः बसंत ऋतु में गाये बजाये जाते हैं। इन रागों के लिए 'वसंततौ सुखप्रदः' कहा गया है।

मध्यकालीन ग्रन्थकार पं0 शुभंकर ने रागों के गायन समय को कुछ नवीन ढंग से प्रस्तुत किया है तथा अन्त में कहा है कि रंगभूमि पर तथा राजाज्ञा होने पर

राग के समय सिद्धान्त में उल्लंघन से दोष नहीं होता।

पं0 शुभंकर के अनुसार -

श्री पच्चक्याः समारम्य यावत स्याच्छयनंहरे.

तावद् बसन्त रागस्य गानमुक्तं मर्नीषिभिः

इन्द्रोत्थानात् सामारम्य यावद्रदुर्गामहोत्सवम्

गेया तावद्रबुधैर्नित्यं मालसी सा मनोहरा

प्रातर्गेयास्तु देशांगो ललितः पठमंजरी

विभाषो भैरवी चैव कामोदो गौण्डकिर्यापि

एका वराडी मध्याह्ये सायं कर्णाटमालवौ

लाटश्चैव विशेषेण शेषा गेयास्तु सर्वदा

हिंदोलश्च वसंतश्च बसन्ते रक्तिदायक·

लाटो गौड़ी वराडी च गुर्जरी देशी रेव च

पूर्वाह्रे गानमेतेषां निषिद्धिमिति ताद्विद

नैवापराह्ये गातव्यौ भैरवी ललितौ क्वचित्

रंगभूमै नृपाज्ञायां कालदोषोन विधेते

औरंगजेब के सूबेदार फकिरूल्ला ने अपने राग दर्पण में किस ऋतु में कोन सी राग रागिनी या उनके पुत्र गाये जांये, इस विषय पर एक छोटा सा अध्याय ही लिख डाला है।

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत अन्य कुछ रागों का समावेश होता है, जिन्हें सर्वकालीन राग कहा जाता है, इनका प्रयोग किसी भी समय में किया जा सकता है, जैसे आधुनिक संगीत में भैरवी, आधुनिक संगीत में भैरवी का गायन-वादन प्रायः संगीत सभा की समाप्ति के बाद किया जाता है, जब कोई कलाकार अपना मंच प्रदर्शन समाप्त करता है, तब वह अंत में भैरवी प्रस्तुत करता है। वैसे भैरवी का गायन समय प्रात. काल कहा गया है, किन्तु इसे किसी भी समय में गाया बजाया जाता है। इस श्रेणी के रागों का उल्लेख मध्यकालीन ग्रंथकार श्री कण्ठ ने अपनी रस कौमुदी में तथा अहोबल ने संगीत पारिजात में किया है।

किसी विशेष अवसर के अनुसार गाये जाने वाले रागों का समावेश भी इस प्रकार के रागों की श्रेणी में होता है। आज भी महाराष्ट्र में विवाहादि के समय पर मन्त्रोच्चार एक विशेष प्रकार की धुन या राग में होता है। इसी प्रकार अन्य प्रदेशों में भी भिन्न-भिन्न अवसरों पर विशिष्ट प्रकार की लोकधुनों का प्रयोग होता है।

रागों को अपने नियत समय पर या ऋतु विशेष में गाना पूर्णतः संस्कारों का परिणाम है। अहोबल कालीन भूपाली में म नी वर्जित तथा रे ध कोमल है यथा-

मनि वर्ज्या तु भूपाली री-धौ यत्र च कोमलौ।[1]

---

1. संगीत पारिज, पृ0 145, श्लोक 375

जिससे अहोबल की भूपाली का सप्तक सरेगपधसं होगा। यह हमारे आधुनिक संगीत में प्रयुक्त विभास के सप्तक के समान है तथा दोनों ही रागों का समय प्रातःकाल कहा गया है। किन्तु प्रचलित भूपाली में सरेगपधसं प्रयुक्त होते समय इसका गायन समय रात्रि में कहा गया है।

प्रचलित संगीत में रागों के लिए निश्चित किये गये समय का पालन आधुनिक साधनों जैसे रेडियो, टेलीविजन पर भी कुछ सीमा तक किया जाता है। उसी प्रकार कोई भी प्रतिष्ठित गायक या वादक अपने सुबह के मंच प्रदर्शन के लिए सुबह के राग जैसे - तोड़ी व तोड़ी के प्रकार, ललित, बिलावल तथा अनेक प्रकार के प्रातःकालीन रागों को चुनेगा न कि रात्रि के समय गाये बजाने वाले यमन, दरबारी, मालकौंस, मारू विहाग इत्यादि रागों को।

हमारा आज का श्रोता वर्ग भी रागों के गायन समय से परिचित है। अतः उसे सुनने में भी वे राग अच्छे लगते हैं, जो वह उस समय में सुनने के आदी हों। अतः राग की रंजकता को ध्यान में रखते हुए यह उचित ही है कि रागों को उनके निश्चित समय पर ही गाया बजाया जाय।

xxx

अध्याय - सप्तम

'राग संगीत में देवताओं की परिकल्पना व उनका ध्यान'

हर भारतीय शैली में हर राग और रागिनी का स्वरूप निश्चित था। शैली और चित्रकार की मौलिकता के अनुसार पहनावे, रंग, स्थापत्य संपुजन (कम्पोजिशन) और अंकन में भेद तो हुआ ही है, लेकिन मूल भाव एवं विषय सदा ही एक रहे हैं, लेकिन भेद होने का एक और भी कारण है कहीं-कहीं एक ही राग रागिनी के रूप भिन्न हैं, जैसे दक्षिणी राजस्थानी और पहाड़ी चित्रों में एक ही राग रागिनी के चित्रण में विभिन्न ध्यान या रूप मिलते हैं।

रागों का विमोचन -

शिवशक्ति समायोगा द्रावाणां सं भवो भवेत्
पंचास्यात् पंच रागाः स्युं षष्ठास्तु गिरिजामुखात्
सद्योवक्रान्तु श्री रागो वामदेवाद्वसंतकः
अघोराद् भैरवोऽभून्तत्पुरूषात् पंचमोऽभवत्
ईशानख्यान्मेघरागो नाट्यरम्भये शिवादभूत
गिरिजायां मुखाल्लास्ये नट्टनारायणोऽभवत्।[1]

---

1. संगीत दर्पण रागाध्याय पृ0 79, श्लोक 8, 9, 10 से उद्धृत

अर्थात शिव तथा शक्ति इन दोनों के योग से राग उत्पन्न हुए। महादेव जी के पांच मुखों में से राग उत्पन्न हुए और छठां राग पार्वती जी के मुख से निकला। महादेव जी ने जब नाट्य (नाच) शुरू किया तब उनके 'सद्योवक्त्र' नामक मुख में से 'श्री राग', वामदेव मुख में से बसंत निकला। अघोर मुख में से भैरव, तत्पुरूष मुख में से पंचम और ईशान मुख में से मेघ राग तथा नृत्य के प्रसंग में पार्वती जी के मुख में से नट्ट नारायण राग उत्पन्न हुआ।

टीका -

यहां पर हमारे संगीत की उत्पत्ति कही गयी है और यहां देवताओं के साथ उनका सम्बन्ध जोड़ा गया है।

'राग' के स्वरों का मेल आरोह प्रधान होता है। यानि कोमल स्वर कम होते हैं, परन्तु रागिनी में स्वर अवरोह प्रधान होते हैं। यानि की स्वर मेल अधिक कोमल होते हैं।

स्त्रीलिंग राग (रागिनी) का सर्वप्रथम उल्लेख नारद लिखित 'संगीत मकरंद' में हुआ है। इसमें रागों का विवेचन इस प्रकार बताया गया है- 1. पुलिंग राग, 2. स्त्रीलिंग राग, 3. नपुंसक राग।

रागिनियों में (राग में स्त्रीलिंग रूप की कल्पना सर्वप्रथम उत्तर भारत के संगीत में ही हुयी)।

पुल्लिंग रागों में आश्चर्य, साहस और क्रोध व्यक्त करते हैं। स्त्रीलिंग रागों में प्रेम, हास और दुख व्यक्त करते हैं। नपुंसक रागों में भय व्यक्त करते हैं।

देशी और विदेशी संगीत दोनों में ही संगीत की स्वर संगति विभिन्न रसों को व्यक्त करने की चेष्टा करती है, जैसे बसंत में मधु ऋतु के कारण उत्पन्न उल्लास को व्यक्त किया जाता है। 'मेघ' में वर्षा ऋतु के आगमन पर आनन्द मनाने की लालसा प्रकट होती है।

आसवारी में दुख निवेदन पाया जाता है। भैरवी में प्रेम और भक्ति युक्त विवेचन होता है और मधु माधवी में ग्रीष्मकालीन वर्षा के प्रति विस्मयकारी आक्रोश व्यक्त किया जाता है।

स्वर संगति के निर्धारित प्रयोग की सहायता से ही संगीतज्ञ अपनी आराधना के द्वारा राग रागिनी के काल्पनिक देवी रूप को स्वर्ग से भूतल पर बुला सकता है।

राग और रागिनी की कल्पना नायक और नायिका के रूप में की गयी है और उनका स्वरूप इस प्रकार तय किया गया है।

और राग रागिनियों के नाम बड़े ही विचित्र हैं। कुछ के नाम तो प्राचीन जातियों के आधार पर पड़ गये जैसे शक राग शकों से, अमीरी अमीरों से।

कुछ राग रागिनियों का नामकरण उनके ऋतु या पर्वों से सम्बन्ध होने के कारण पड़ गया, जैसे मेघ, बसंत और श्री राग।

पुष्पों से भी इनके नाम लिये गये जैसे कुसुम, नीलोत्पाद, कुमुद मालती आदि। पशु पक्षियों ने भी रागों के नामों में सहयोग दिया, जैसे मयूरी, हंसधारी।

कुछ रागों का नामकरण कवियों की कल्पना मात्र से हुआ है, जैसे विभास और ललित।

इन्हीं श्रेणियों में पूजा अर्चना के भी राग हैं, जैसे जोगी और भैरवी।

रागों का नामकरकण संगीतकारों के नाम पर भी हुआ है, जैसे रामकली एवं सारंग।

संगीतकारों ने हर राग के गाने की ऋतु और ताल तक को बड़ी ही बारीकी से निश्चित किया है, क्योंकि प्रत्येक राग रागिनी निर्धारित समय और ऋतु में गाने से ही अच्छी लगती है और वांछनीय असर डालती है।

राग भैरव

राग तोड़ी
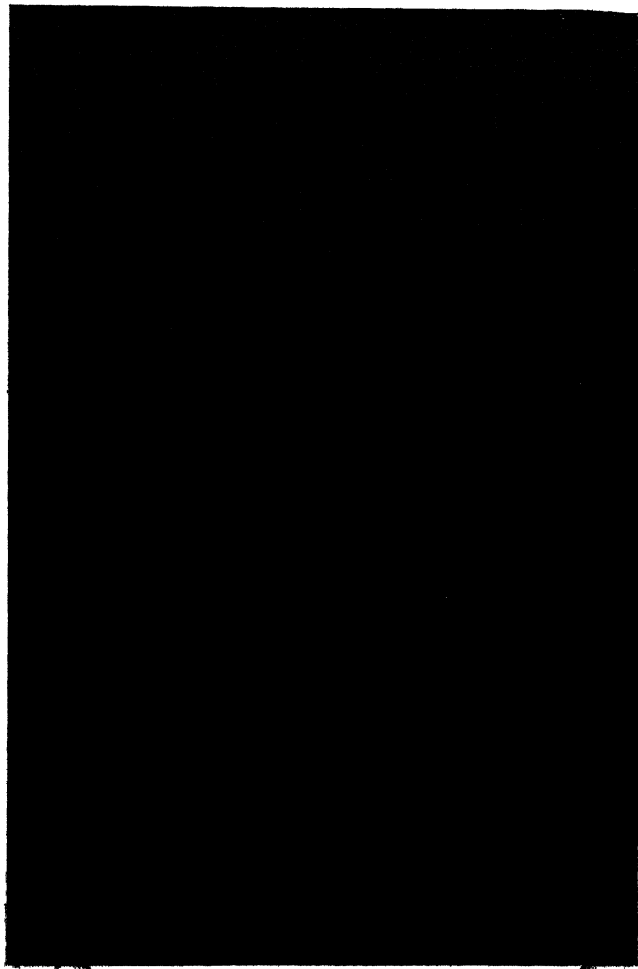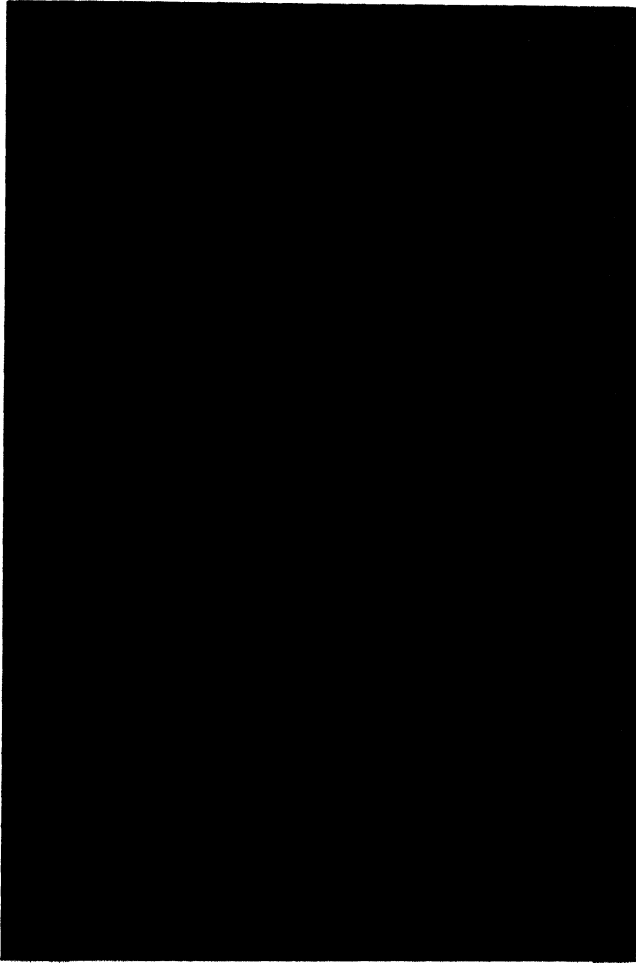
राग माला के चित्रों की बड़ी विशेषता है, प्रकृति चित्रण। बिना प्रकृति के सहयोग के तो कलाकार शायद इतनी सफलता प्रापत कर ही नहीं सकता।

पशु पक्षियों भी चित्र के नायक नायिका के साथ बड़े ममत्व और सहयोग दिखाते हुए बनाया गया है।

भैरव -

जिसके मस्तकं में से गंगा बहती है, चंद्रकला का तिलक, जिसके कपाल पर है, जिसके तीन आंखे हैं, सर्प जिसके शरीर पर सर्प शोभायमान है, जिसने हस्तिचर्म अपने शरीर पर धारण कर रखा है और जिसके हाथ में त्रिशूल है, गले में मुण्डमाल है, जिसके वस्त्र सफेद हैं, ऐसा आदि राग भैरव है। राग भैरव के गम्भीर एवं रौद्र को उनके प्रतीकात्मक देवता शिव द्वारा व्यक्त किया गया है।

टोड़ी -

यह शायद किसी किसान कन्या के खेतों पर गाये जाने वाले गीतों की धुन थी, जिन्हें खेत पर बैठे-बैठे हरिण, कौए और अन्य पशु पक्षियों को भगाने के लिए गाती होगी। शायद वह गाते वक्त वीणा जैसा कोई वाद्य यंत्र बजाती हो, जिसकी तानों को सुनकर हरिण खेतों को छोड़कर उसके समीप चले आते हैं। इस विषय का चित्रण टोड़ी, रागिनी में होता है। जिसमें कोई सुंदरी हरिणों को अपनी धुन से आकर्षित कर अपने पास बुला लेती है। इन चित्रों में बड़े ही सुन्दर और मार्मिक कल्पनाओं का समावेश होता है। जैसे - विभास में जिसको प्रातः काल गाया जाता है, तो प्रेमियों के बिछड़ने का बड़ा ही मार्मिक चित्रण होता है। इसमें प्रातःकाल होते ही मुर्गे की आवाज से रूष्ट हो प्रेमी को उसे तीर से बींधने के लिए प्रस्तुत दिखाया जाता है।
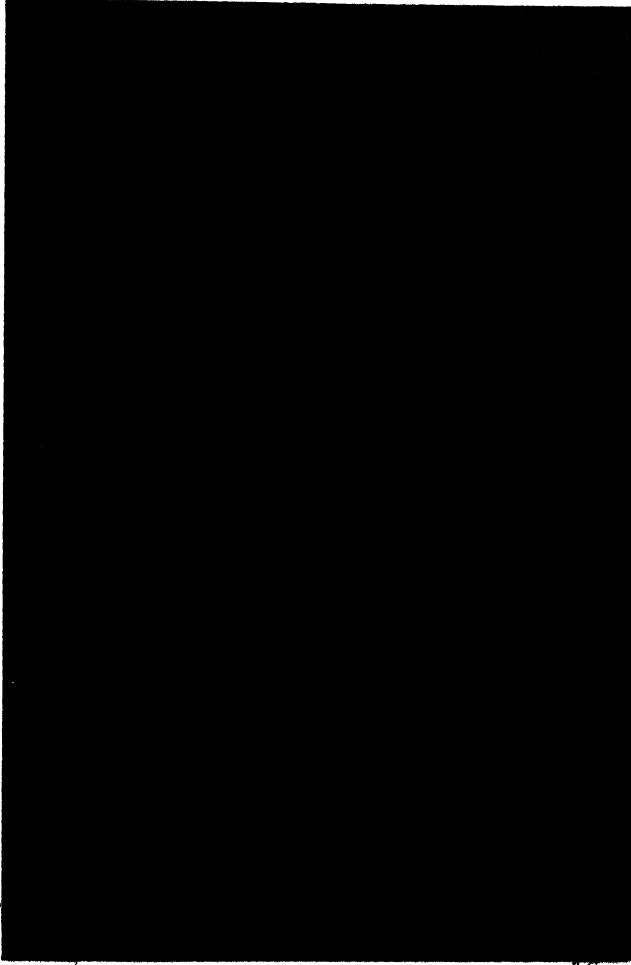
राग भैरवी
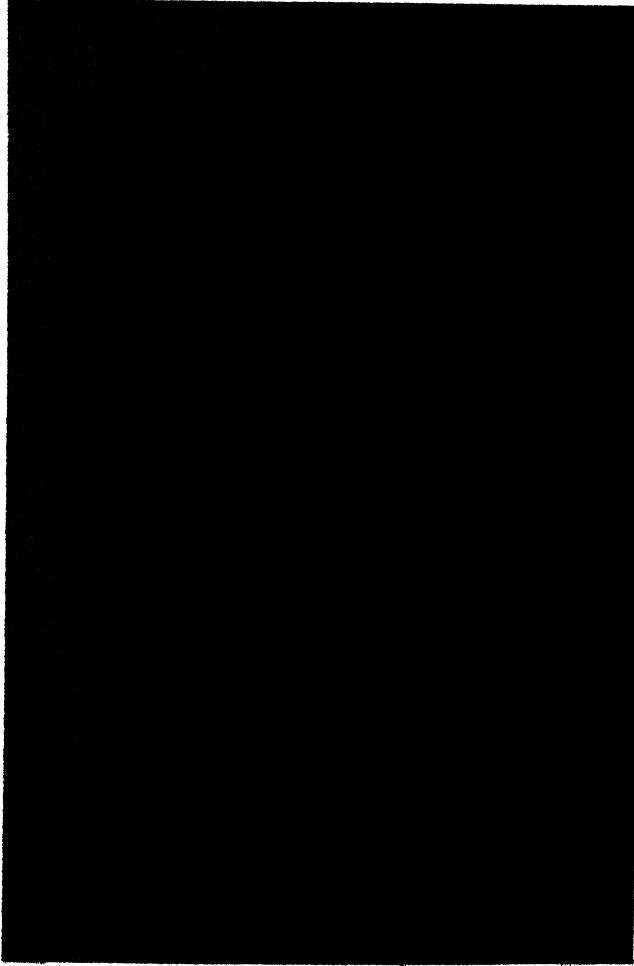
राग आसावरी

भैरवी -

इसमें पार्वती के रूप में रागिनी की कल्पना की जाती है। चित्र में पार्वती को शिव की पूजा करते हुए सफेद मंदिर में दिखाया जाता है। यहां पर सुन्दर निर्मल प्रेम की कल्पना है।

आसावरी -

सांपों को अपनी मधुर बीन की धुन सुनाकर सपेरे मोहित कर लेते थे। इसी से इस रागिनी का ध्यान निश्चित हुआ। यह रागिनी आम तौर पर एक भीलनी की तरह होती है, जो सदा मोर के पंखों का वस्त्र कटि प्रदेश में पहने रहती है।

राग सिंधवी
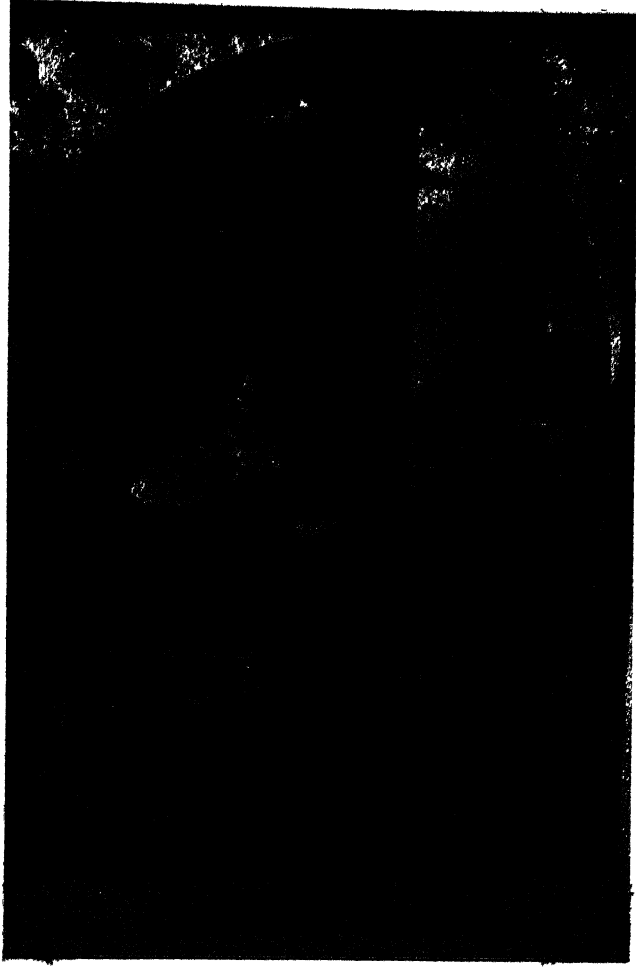
राग बिलावल

राग हिंडोल

सैन्धवी -

जिसके हाथ में त्रिशूल है, जो शिव भक्ति में अपने को भिगोये हुए है, जिसके वस्त्र लाल है, जिसने बंधुजीव (दुपहरिया के वृक्ष) वृक्ष के पुष्प धारण किये है, जिसका क्रोध अत्यन्त प्रचण्ड है और वीर रस से भरे हुए है। यह रागिनी सैंधवी है।

इसमें नायिका को अपने प्रेमी से मिलने के लिए तैयार होती हुई, नायिका को रागिनी के रूप में चित्रित किया जाता है।

हिंडोल -

जिसे स्त्रियां मंद-मंद झोंके लेकर हिंडोले के ऊपर झुला रही हैं, और जिस (हिंडोले) की डोरियां छोटी हैं, जो सुख भोगने वाला और काम से युक्त है, जो कपोत की कांति के समान है, वह राग हिंडोल है।
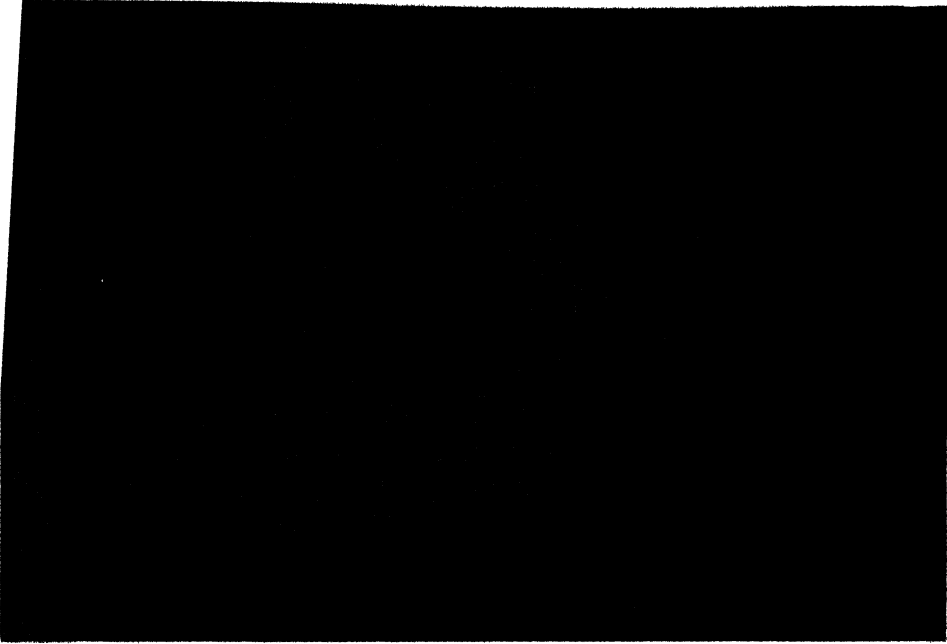
राग मालकौंस
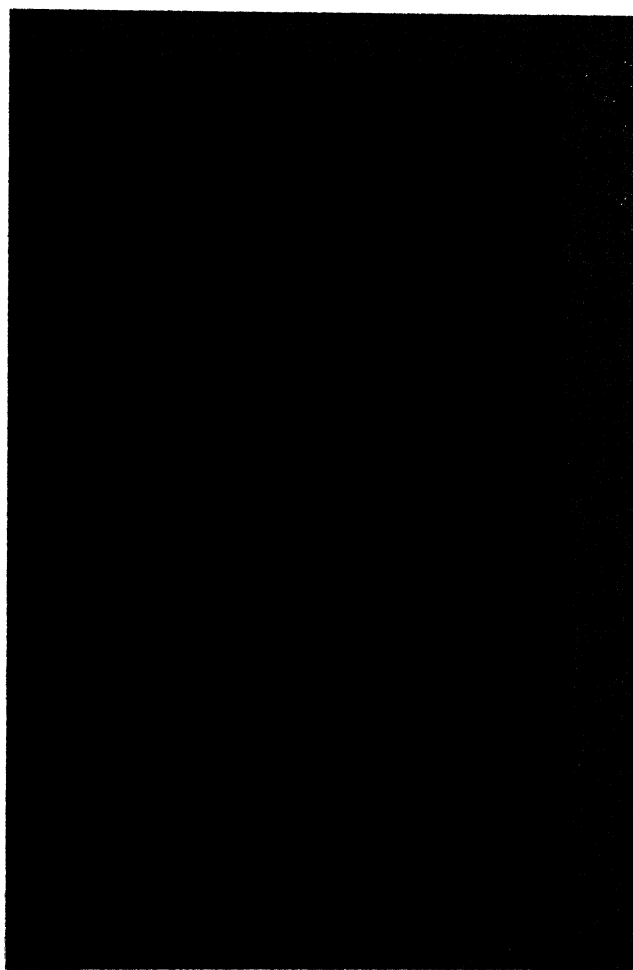
राग दीपक
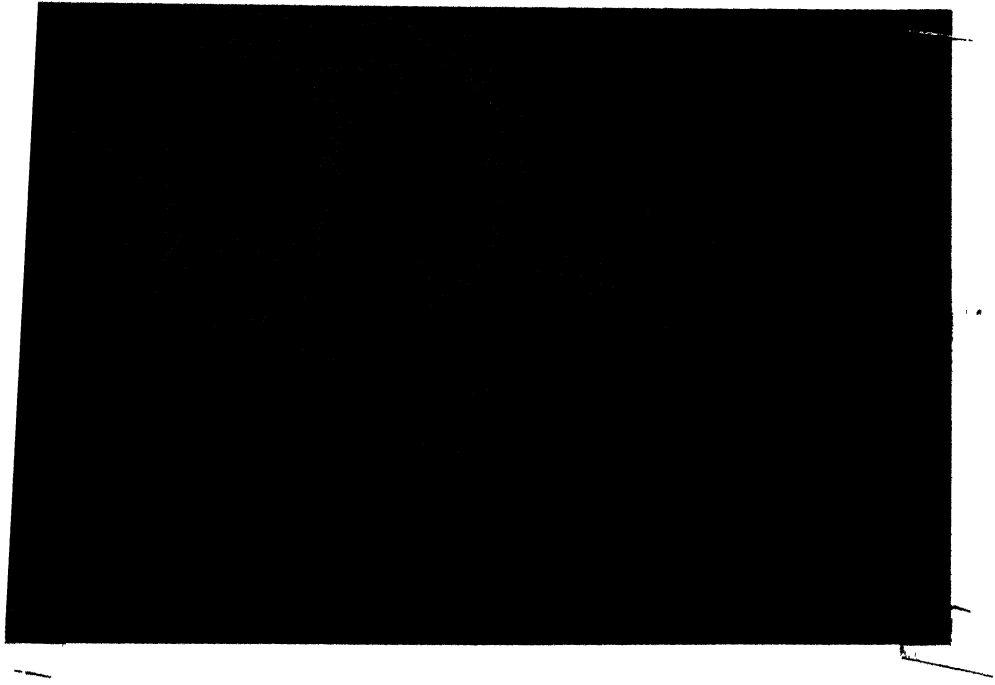
राग दीपक
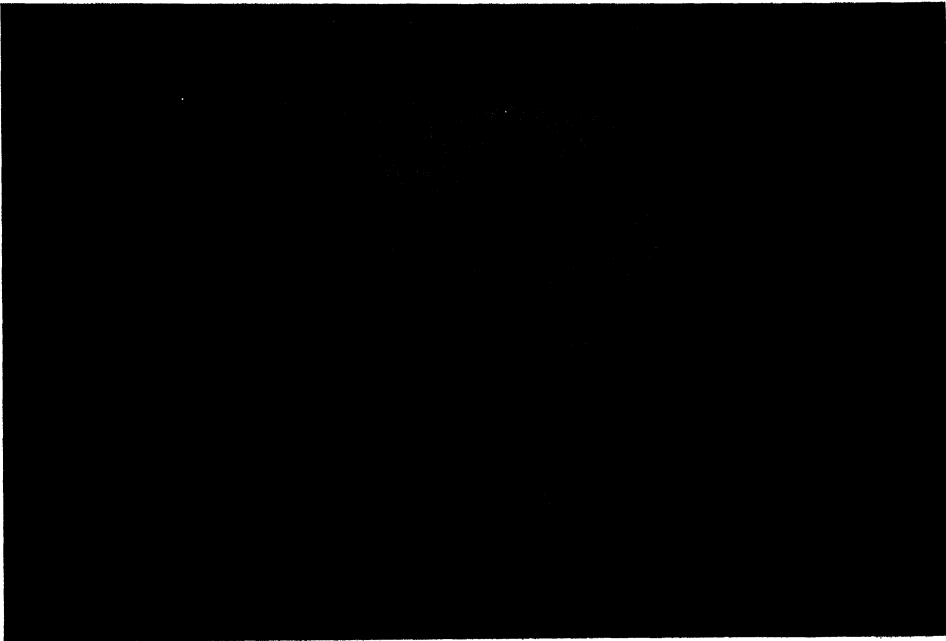
राग शंकरा

दीपक -

इसमें छोटी-छोटी आग की लपटें निकल रही हैं, एक पुरूष गले में माला पहने सामने वीणा रखकर वायुयान जैसे पक्षी पर बैठा उठता जा रहा है। इस पर भी आग की लपटें हैं, ये पुरूष दीपक राग का प्रतीक है। राग दीपक से सम्बन्धित हमें 2 चित्रों की प्राप्ति होती है।

मालकौंस -

इसमें एक यमराज जीव रूप में दिखाया गया है, जिसके हाथ में तबला है और ये रौद्र रस का प्रतीक है।

शंकरा -

इसमें शिव और पार्वती को एक साथ बैठकर दिखाया गया है।

राग मेघ

मेघ -

जिसका अंग नील कमल के समान है, चन्द्रमा के समान जिसका मुख है, जिसके वस्त्र पीले रंग के हैं। तृष्णा से व्याकुल वन का चातक पंछी जिसकी याचना करता है, और जिसका अमृत के समान मधुर मंद हास्य है, जिसका निवास मेघ में है, वीरों में सुशोभित होने वाला तरूण ऐसा मेघ रागिनी है।

भैरवी -

भैरवी रागिनी के चित्र में भैरवी को देवी पार्वती बताया है, तथा उनका ध्यान बताया है, एक तालाब है, जिसके मध्य एक स्फटिक मणि का मन्दिर बना है। तालाब में कमल के फूल खिले हुए हैं, उन फूलों को लेकर पार्वती जी शंकर की पूजा कर रही हैं तो पार्वती नहीं भैरवी राग ही है।

इसी प्रकार हर राग के स्वरूप नादमयी और भावमयी, नादमयी रूप उसका शरीर है और भावमयी रूप से उस शरीर की आत्मा है और ध्यान का मतलब है कि अपनी चित्त को अपने इष्ट में तदात्म्य कर लेना, किसी भी राग की मूल प्रवृत्ति के अनुसार उसकी आवृत्ति की मानसिक रूप से अनुभूति करना ही राग ध्यान है।

उपासना में देवता के आवाहन करने के लिए हम ध्यान करते हैं। ध्यान में वर्णित देव स्वरूप उस राग के ध्यान का बीज मंत्र होता है। यहां पर किसी के मन में ये प्रश्न उठ सकता है कि राग के देवता से क्या अभिप्राय है। इसके उत्तर में हम इतना ही कह सकते हैं कि प्रत्येक राग में एक विशेष मनोभाव का व्यंजन होता है और राग का देवता उसी मनोभावों का प्रतीक है, जिसमें राग की प्रवृत्ति मूर्तिमान हो सकती है।

संगीत कल्पद्रुम, संगीत दर्पण आदि पुस्तकों में रागों का ध्यान यथेष्ट रूप में पाया जाता है।

राग मेघ मल्हार

राग बागेश्री
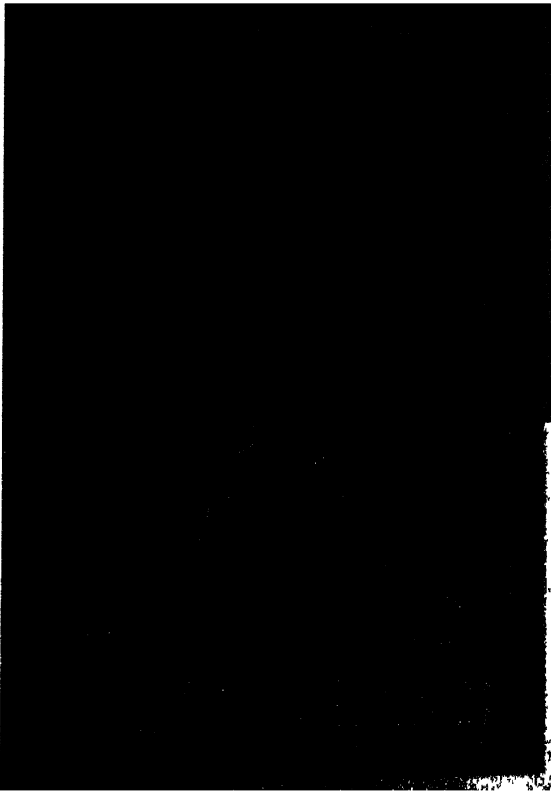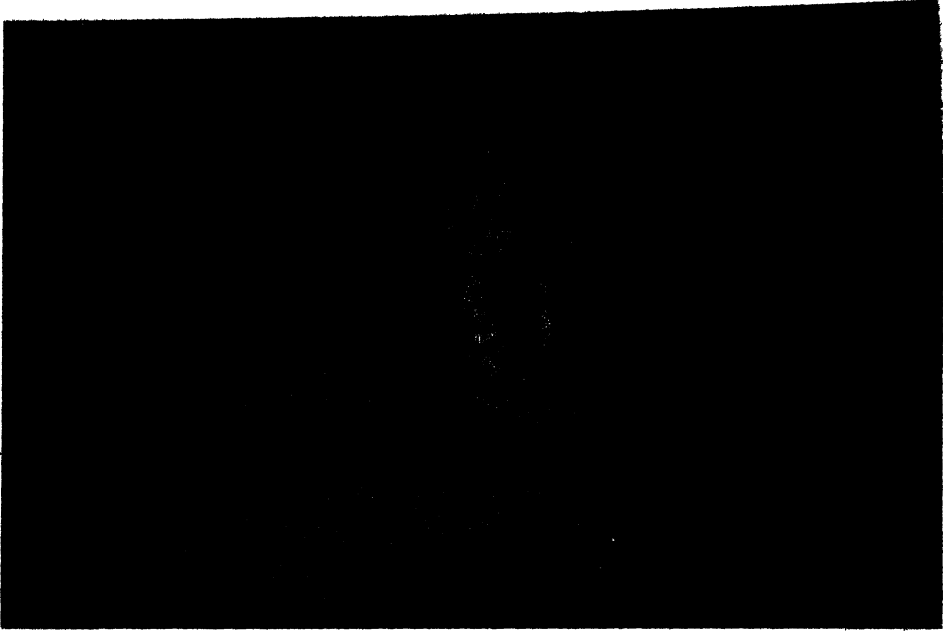
बागेश्री का ध्यान -

वीणा विनोदनी सुन्दर और गान कमल नयनी

करवतारन मुखे स्थितः नितम्बे निबोपोष्ट भूषणः

रतन विचिते बागेवरी द्वितीय फहराये समये कौशिकः

रागनीयः धनराश्री कान्हड़ा युक्तनायकीः मिश्रित

स्वरावाद्ये स्वरारूपी अति विलक्षणः गीयते बुधे

बुधे गांधऽसि गृहे न्यास सम्पूर्ण बागेश्वरी

म म ध नी स रे गायतः भरताः मताः इति बागेश्वरी।

मेघ मल्हार का ध्यान -

त्रिथक कुत्ररामनी मेघ मल्हार कीः काम सौर्यस्लिसे अति सुंदरी

अंग की लाट् मैगटीसुहावेः भूषन अंग रावजरधर

मोर निचिनवरोज निभावै3 हाथ मे गजरा लीये

यरता समए एइ मोर चुगायैः सौ यह मेघ मल्हार

रागिनी है क कुंते सुंनाम कहावैः

राग कल्याण
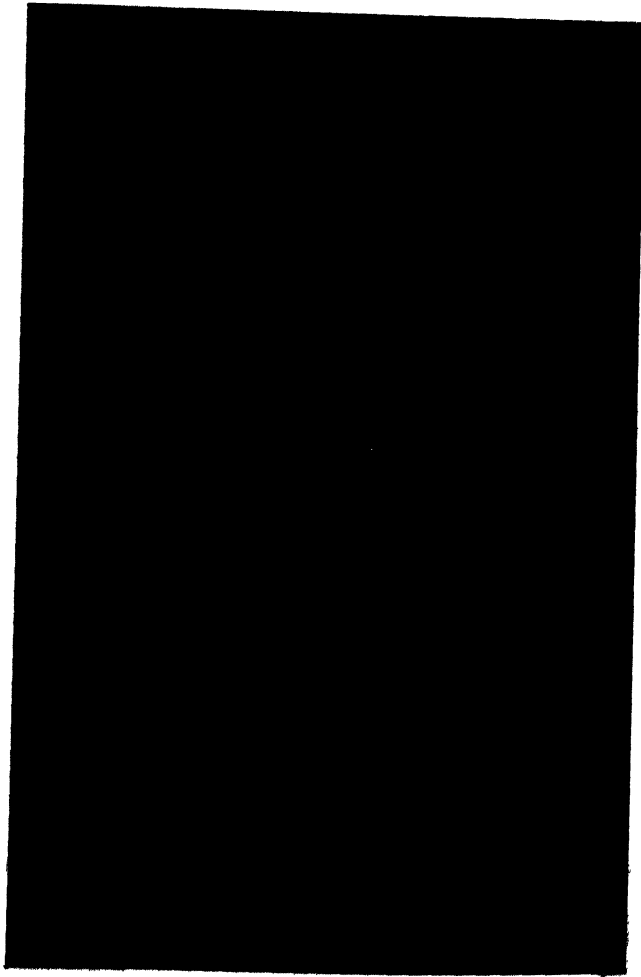
श्री राग

राग कल्याण का ध्यान -

मुक्ता रत्न सुवर्ण वस्त्र रचिते सिंहासने सुस्थितः

छत्रं शोभित मस्तके परिजनैः संवीज्यते चामरैः

ताम्बूलं सुगंधितं वपुः कण्ठेषु रत्नावली

कल्याणो विशंदांशुक श्रपल दृक कल्याण दो भू भुजाम्।

राग श्री

श्री रागः सच विख्यातः सत्रयेण विभूषितः

पूर्णः सर्वगुणोपेतां मूर्च्छना प्रथमा मता

के चित्तु कंथत्येन ऋषभ संयुतम्।

(संगीत दर्पण)

अर्थात यह प्रसिद्ध ही है कि श्री राग में षडज ग्रह अंश और न्यास स्वर हैं, यह सम्पूर्ण होकर सर्वगुण सम्पन्न है। मूर्च्छना पहली है, कुछ लोग कहते हैं, इसमें रिषभ स्वर ग्रह अंश और न्यास है।

जोगिया ध्यान -

काली कराली भाषिण रूपणीय के कानश्चि रूप

त्रिशूल: धारणीय संग्राम भूमये: जीवन्ति रक्तावीज्ञ:

धारिता: जोगनी यत्र इति रागिनी।

चित्रकला के माध्यम से राग रागिनियों के भावात्मक, कल्पनात्मक, रागात्मक चिन्ह इन चित्रों में भली भांति किया गया है। राग रागिनियों के चित्रों द्वारा संगीत काव्य और चित्रकला को एक सूत्र में बांधा।

राग के अमूर्त व्यक्तित्व को मूर्त बनाने के लिए चित्रकारों ने रागों के चित्र बनाये हैं।

रागों के चित्र से हमें कोई बातों की जानकारी प्राप्त होती है। जैसे कि रागों का गायन समय क्या है? दिन या रात, वर्षा या बसंत ऋतु में गाने वाले राग के चित्र में बादल दिखते हैं और भगवान का भी आभास होता है।

राग कुकुम्भ में पीछे संगमरमर का महल बना हुआ है, जो कुछ दूरी पर है, महल के आगे एक छोटी सी झील का किनारा है, जिसमें एक नाव खड़ी है। वीणा लिये एक स्त्री जिसके हाथ में मेंहंदी पांव में महावर वाटिका में खड़ी है, चारों ओर फूल हैं, स्त्री के चारों ओर हंस खड़े उसे देख रहे हैं, मोर नाच रहे हैं। महल

के पीछे सुन्दर एवं प्रसन्न का वातावरण है।

संगीत के राग रागिनियों के चित्र अधिकतर हमें 17वीं शताब्दी तथा 18वीं शताब्दी में मिलते हैं।

प्रत्येक राग के लिए प्रत्येक रंग का उल्लेख किया है। भारत की भांते यूरोप में भी इस सदी में उत्कृष्ट संगीत रचनाओं को मूर्त रूप देने का प्रयास हुआ है पर भारतीय चित्रकारों ने संगीतकारों और कवियों के सहयोग से 'रागमाला' की जो चित्र निधि हमें दी है, इसकी तो कल्पना भी अपूर्व है।

इतनी सरल अभिव्यक्ति, स्पष्टता, ताजगी, सप्राण आकृतियां भाव और रस इन्हें भारतीय चित्र में बहुत उंचा स्थान दिलाती हैं।

xxx

अध्याय - अष्टम

भारतीय चित्रकला में रागों का चित्राभिव्यंजन तथा विभिन्न चित्रकला परम्पराओं में रागों का स्वरूप।

भारत की चित्रकला का इतिहास अजन्ता से आरम्भ होता है। भारतीय कलाओं में जितनी समता चित्रकला और संगीत के राग रागिनियों में है, उतनी अन्य कला में देखने को नहीं मिलती है। संगीत और चित्रकला का सदा से घनेष्ठ सम्बन्ध रहा है। इसका प्रमाण इतिहास के पन्ने इसके साक्षी हैं।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के चित्रसूत्रम में चित्रसूत्रकार ने अच्छा प्रकाश डाला है, उसका कथन है कि किसी व्यक्ति को चित्रकला सीखने के पहले संगीत का अभ्यास करना चाहिए, तभी वह चित्रांकन में पारंगत हो सकता है। चित्र और संगीतकला का यह संधि स्थल है, जबकि दोनों एक दूसरे के अभिन्न अंग बन जाते हैं।

उच्चकोटि की कला पत्रिका जो अंग्रेजी में प्रकाशित होती थी, उसमें राग चित्रों का प्रकाशन देखकर यह लगता है कि जैन चित्रशैली में ही राग चित्रों की रचना का सूत्रपात हो चुका था। इस प्रकार जैन शैली से ही राग चित्रों के निर्माण की कल्पना साकार होने लगती है। सच बात तो यह है कि ये चित्र उन स्वरों से उत्पन्न भाव रसों की एक विशेष स्थिति है, जिसके आधार पर चित्रकारों ने इन

राग चित्रों को जनम दिया है। स्वरों की सूक्ष्मता को, जिसकी कल्पना मन में उठती है, रेखा रंगों से मूर्त कर राग चित्रों में उतारा जाता है। क्योंकि स्वरों के प्रभाव की क्षमता चित्रकला के रेखा रंगों में हुआ करती है। इन चित्रों का उद्देश्य कोई कथा कहानी नहीं होता, बल्कि रंगों का एक भावमय स्वरूप अंकित करना होता है। गुजराती शैली का एक चित्र राग धनाश्री इसी कोटि का है।

बहुत से रागों का सम्बन्ध ऋतुओं से रहता है। अतः ऋतु चित्रों के निर्माण की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से कला के क्षेत्र में आ जाती है और ऐसे चित्रों में रस राज और बारहमासा आदि उत्कृष्ट चित्रों की रचनायें होने लगती हैं।

प्रचलित रागों में भैरवी, आसावरी, रामकली, गौड़ सारंग, ललित, गौरी बसंत और मल्हार आदि चित्र को देखने से लगता है कि चित्रकार ने रागात्मक वातावरण उत्पन्न करने के लिए राग ध्यान से अलग हटकर अपनी प्रतिभा और कल्पना से चित्रों को सजीव करने की कोशिश की है।

राजपूत शैली के चित्रकारों ने अपनी भक्ति भावना को मूर्त बनाने के लिए उसका धारावाहिक चित्रण आरम्भ कर दिया, जिसे रागमाला के नाम से विभूषित किया गया। इसमें संगीत सम्बन्धी भावों का वर्णन रंगों और रेखाओं द्वारा किया गया। राधा और कृष्ण की प्रेमलीला और उनके मिलन और विरह की गाथा विभिन्न रूपों में चित्रित की गयी। लेकिन यदि हम रागमाला की चर्चा करने से पहले हम राग रागिनियों की परिभाषा

और उनके ऐतिहासिक विकास की समीक्षा कर लें। राग शब्द की उत्पत्ति रंग से हुयी है, जिसका अर्थ है, रंग जाना, रंग से लाल हो जाना, चमकना, प्रभावित होना, प्रेरित रस या भाव के आवेश में बह जाना। इसीलिए भारतीय संगीत में राग का अर्थ है मन का रंजन अर्थात् मनोभाव से है।

इस प्रकार राग और रागिनियाँ केवल विशिष्ट परिभाषा के द्वारा ही ज्ञात नहीं है, बल्कि अपनी अभिव्यंजना और आह्वान की शैली पर उनका स्वरूप टिका हुआ है।

संगीत रत्नाकर के पं0 शारंगदेव ने कुछ उन रागों के नाम बताये हैं और उनका वर्णन रागमाला में भी मिलता है।

अब कुछ ऐसे रागों की चर्चा उपयुक्त करेंगे, जिनके द्वारा विशिष्ट भावों की सृष्टि होती है। राग माल श्री से वीरता, उत्तेजना और आश्चर्य उत्पन्न करते हैं।

राग टोड़ी के द्वारा आह्लाद की सृष्टि होती है।[1] राग भैरव[2] के द्वारा अरूचि और त्रास उत्पन्न होते हैं और राग हिंडोल[3] के द्वारा वीरता और आश्चर्य

के भाव जाग उठते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि संगीत रत्नाकर के कुछ रागों को राग माला के चित्रण का आधार बनाया गया है पर उनके द्वारा जिन भावों की सृष्टि होती है, वे वहां नहीं हैं, जो मौलिक रूप में शारंगदेव को अभीष्ट थे। इन अंतर का कारण स्पष्ट है वैष्णववाद की उत्ताल तरंगों ने प्रेमभाव के सामने अन्य सभी रसों को दबाकर अपने अधीन कर लिया था। संगीत वैष्णव अनुष्ठान का एक अंग बन गया, जिसके द्वारा राधा कृष्ण की प्रणय लीला, कलह, पुनर्मिलन और विरह की सुन्दर अभिव्यक्ति हुयी। चित्रकारों ने भी इसी का अनुसरण किया। अतः यह स्वाभाविक था कि राग माला में भी प्रेम (शृंगार) रस को अन्य रसों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है।

राग रागिनियों को चित्रण का रूप देने के लिए ध्यान मंत्र सामान्यतः हिन्दी में लिखे जाते थे। यद्यपि कभी-कभी संस्कृत श्लोकों का व्यवहार भी हुआ है। यहां कुछ अधिक प्रचलित संस्कृत श्लोकों के सारांशों का उल्लेख उपयुक्त होगा, जो रागमाला की कुछ राग रागिनियों के आधार प्रतीत होते हैं।

भैरवी -

स्फटिक शिला निर्मित एक सुंदर भवन में जो एक झील के बीच में स्थित है, विशालाक्षी भैरवी रागिनी कमल पुष्पों से शिव की पूजा करती है। उसने अपने गान में शुद्ध स्वर का प्रयोग किया है। इस प्रकार रागिनी भैरवी है।[1]

2. आसावरी -

इस रागिनी का वर्णन हनुमान ने इस प्रकार किया है - वह श्री खण्ड पर्वत के श्रृंग पर विराजमान है। उसका वस्त्र मयूर पंख से निर्मित है। गजमुक्ता निर्मित सुंदर माला उसके गले में शोभायमान है। चन्दनवृक्ष से आकृष्ट होकर सर्प उसके शरीर पर आ लिपटे हैं। यही नील वर्ण आसावरी है।[2]

2. रामकली - इसका नीलमणि के समान शरीर स्वर्णाभूषणों से चमक रहा है। यद्यपि उसका पति उसके चरणों पर गिरा हुआ है, फिर भी रामकली ने अपना गर्व स्थिर रखा है।[2]

4. मालवीश्री -

आम वृक्ष के नीचे रक्त कमल धारिणी विराजमान है। उसका सीधा शरीर आभायुक्त है। उसके होठों पर मंद मुस्कान है, यह मालवश्री है।

प्राचीनकाल में इस प्रकार की चित्रकला के सम्बन्ध में हम निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते, लेकिन फिर भी कला और नृत्यं सम्बन्धी विशिष्ट विषयों के साहित्य में ऐसे उल्लेख हैं, जो इस प्रकार की चित्रकला के अस्तित्व के द्योतक हैं।

---

1. संगीतसार संग्रह पृ0 78,
2. वही पृ0 45

कुछ रागिनियों के चित्रण में नायिका की प्राप्ति के लिए योग की रहस्यपूर्ण प्रवृत्तियां दिखायी गयी हैं। इस प्रकार रागिनी देवगंधारी अपने नायक का प्रेम प्राप्त करने के उद्देश्य से उसके नाम का जप करती हुई योगाभ्यास में तल्लीन दिखायी गयी है। इसी प्रकार की प्रवृत्ति रागिनी मलारी के चित्रण में भी दिखायी देती है, जो विरह से पीड़ित होकर योगाभ्यास करती है।

'रागमाला' के चित्रों में मानव स्वरूप का चित्रण करने में सहानुभूति पूर्ण समझ से काम लिया गया है। पुरूषों का चित्रण हिन्दुओं की प्राचीन परम्परा के अनुसार ही हुआ है। वे लम्बे चौड़े स्कंधों वाले चौड़ी छाती वाले दिखाये गये हैं। महिलाओं का चित्रण को भी उसी प्रकार प्रदर्शित किया गया, जो प्राचीन परम्परा के अनुसार दिखाये गये हैं। उनका आकार, मध्यम, कटि प्रदेश क्षीण, स्तन उन्नत और नेत्र विशाल है। उनकी कोमलता और सलज्जता में प्राचीन चित्रकला का स्पष्ट प्रभाव दिखता है। राजपूत कालीन शैली के चित्रकारों के लिए स्त्री के चित्रण का श्रृंगारात्मक मूल्य था और वे उनके सिर के प्रत्येक पहलू, हाथ के इशारे के द्वारा शरीर की प्रत्येक वक्र रेखा को चित्रित करने में पूरा श्रम करते थे। उनके लिए स्त्रियां भगवान की आश्चर्यजनक और आकर्षक सृष्टि थी। स्त्रियों के प्रति यह पूज्य भाव सारी भारतीय चित्रकला में अजन्ता के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलता।

जयदेव ने अपने अमर गीत काव्य 'गीत गोविन्द' में गानों के अभिप्राय से रागों का उपयोग एक निश्चित और मौलिक उपकरण है। जयदेव ने बसन्त राग का उपयोग बसन्त सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए अतिरिक्त राधा कृष्ण की प्रणय

राग बसंत
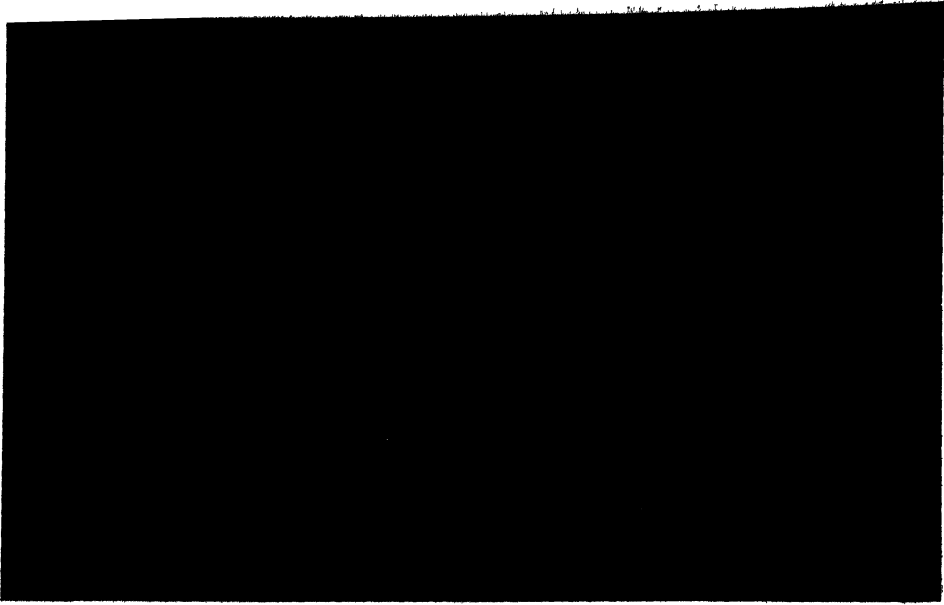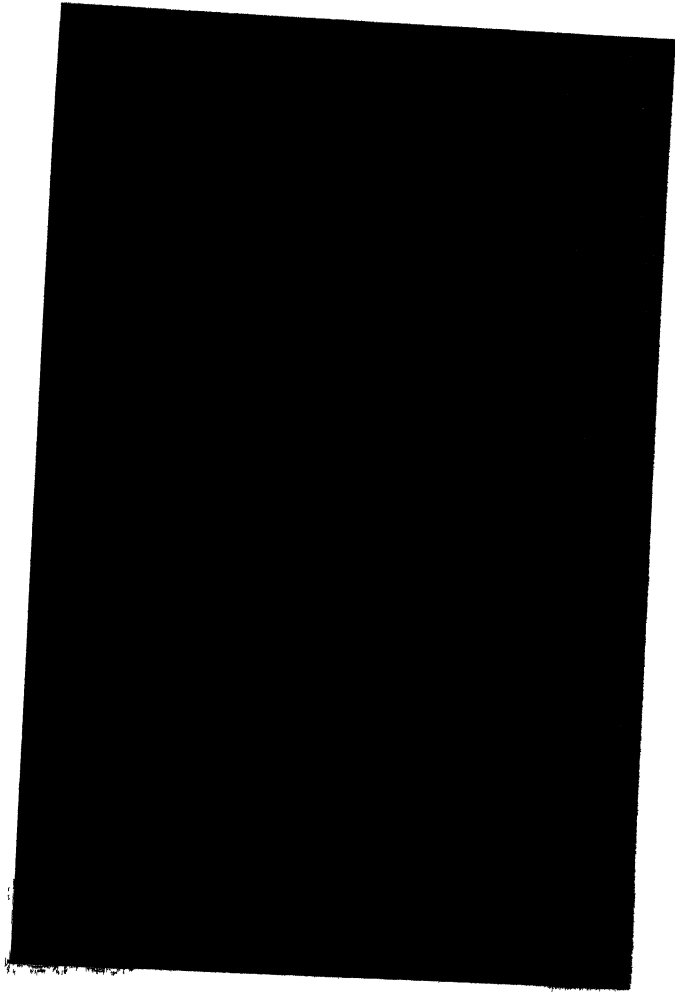
राग कामोद

लीलाओं का भी वर्णन किया है।[1]

केदार राग में कवि ने कृष्ण से मिलने के लिए राधा के दृढ़ विश्वास का वर्णन किया है।[2]

मालव राग का उपयोग गीत गोविन्द में केवल दो बार किया गया है और वह भी विरोधी अर्थों में।[3] एक तो भगवान के आह्वान और स्तुति में दूसरा कृष्ण मिलन के लिए राधा की प्रबल आकांक्षा में ।

गौड़ मालव[4] राग का उपयोग राधा कृष्ण के मिलन वियोग का विलाप प्रगट करने के लिए किया गया है।

राग रागिनियों के इतिहास में दूसरे महत्वपूर्ण व्यक्ति हैं शारंगदेव जिनके अनुसार रागों की संख्या दो सौ चौंसठ है।[5]

---

1. गीत गोविन्द पृ0 7, 14
2. गीत गोविन्द पृ0 5, 11
3. गीत गोविन्द, पृ0 1, 1 और 11, 6
4. गीत गोविन्द, पृ0 7, 13
5. संगीत रत्नाकर पृ0 2, 19

राजस्थानी चित्रशैली के 17वीं, 18वीं शदी के चित्रों को देखने से लगता है कि उस समय तक संगीत शास्त्र में राग रागिनियों के ध्यान निश्चित कर दिये थे। राजस्थानी चित्रकार कल्पना की किस उंचाई तक पहुंच गये थे, राग भैरवी का ध्यान इसका उदाहरण है।

स्फटिकरचितपीठे रम्यकैलासश्रृंगे, विकचकमलपत्रैरर्चयंती महेशम्।
करतल धृतवीणा पीतवर्णायतांक्षी, सुकवि भिरेयमुक्त, भैरवी भैरवस्त्री।

लक्षण गीत में भैरवी को प्रथम प्रहर की रागिनी माना गया है। सचमुच इस रागिनी के भीतर जितनी कोमलता है, उतनी चंचलता भी है। इसलिए जन मानस को वह अपने वश में कर लेती है। चित्रकार ने भी ऐसे ही मनोहारी दृश्यों का अंकन कर वातावरण को सजीव करने की कोशिश की है, जिसमें उसे सफलता भी मिली है, यदि राग ध्यान के आधार पर ही वह चित्र अंकित करता तो निश्चय ही भैरवी का यह सम्मोहक रूप हमारे सामने न आ पाता। चित्र में मानव से लेकर प्रकृति आदि सभी चीजें आलंकारिक सूत्र में एक दूसरे से सुसंबद्ध होकर हृदय में मधु. भावना का संचार कर रही हैं। प्रकृति के उल्लासित वातावरण में गान, वाद्य और नृत्य के साथ राग का सम्यक् स्वरूप उपस्थित किया गया है।

राग रागिनियों के विकास में सबसे अधिक प्रगति सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में हुयी। रागमाला सम्बन्धी अधिकांश चित्र भी इसी काल के हैं।

सत्रहवीं अट्ठारहवीं

शताब्दी के

चित्र

राग मारवा

राग काफी

राग बिहाग

राग पूर्वी

राग भीमपलासी
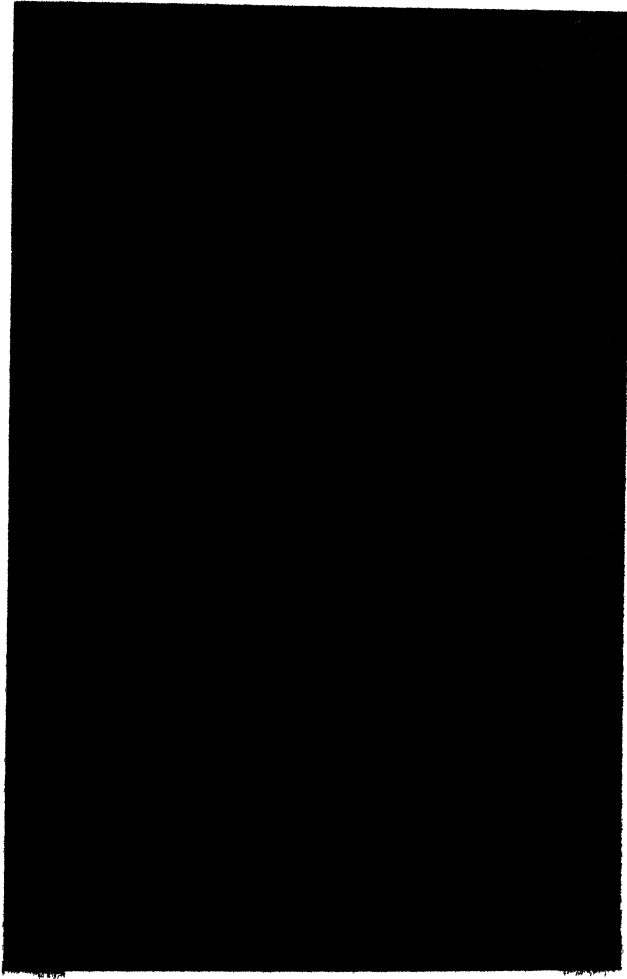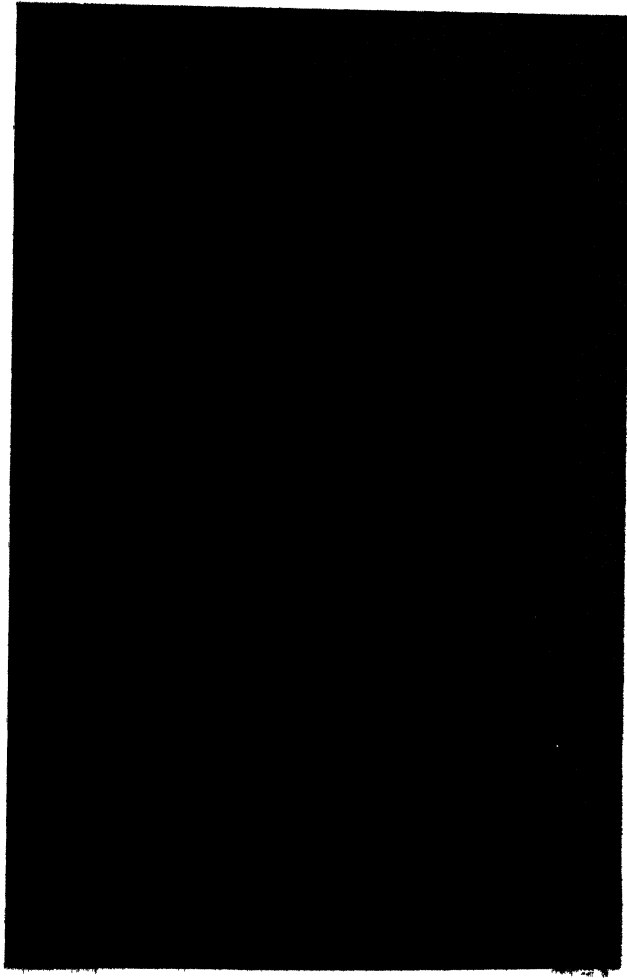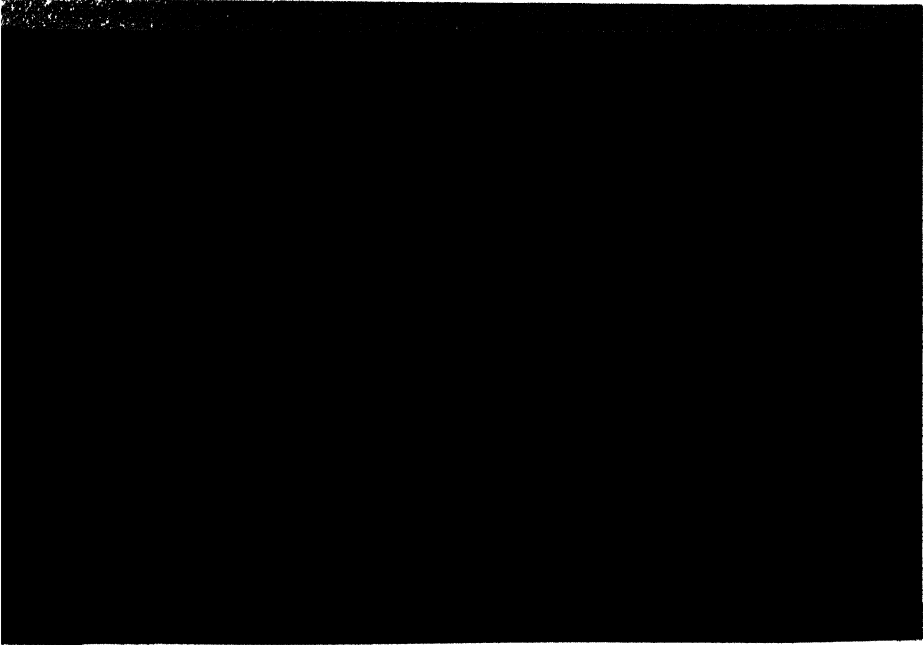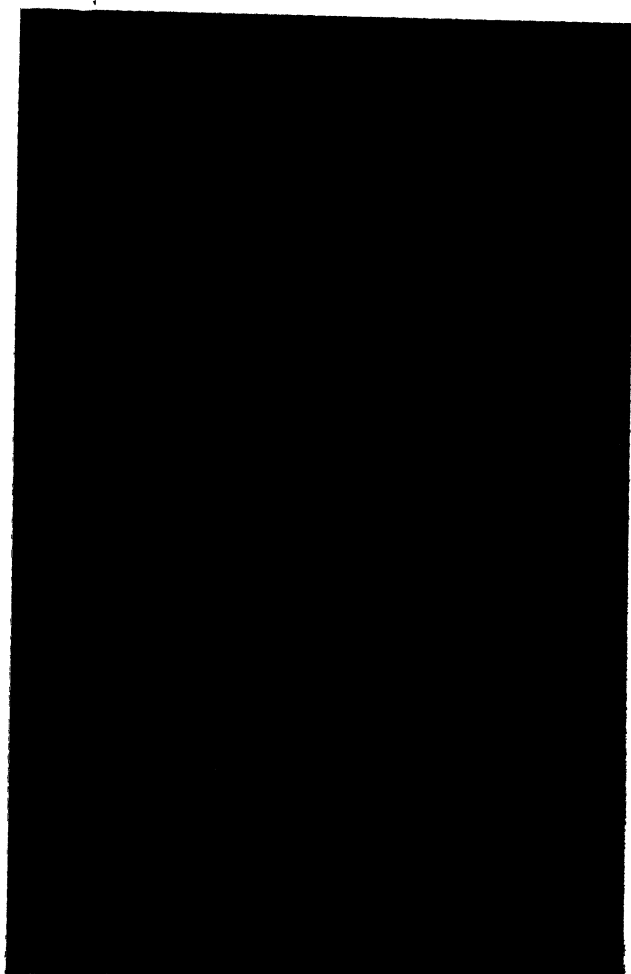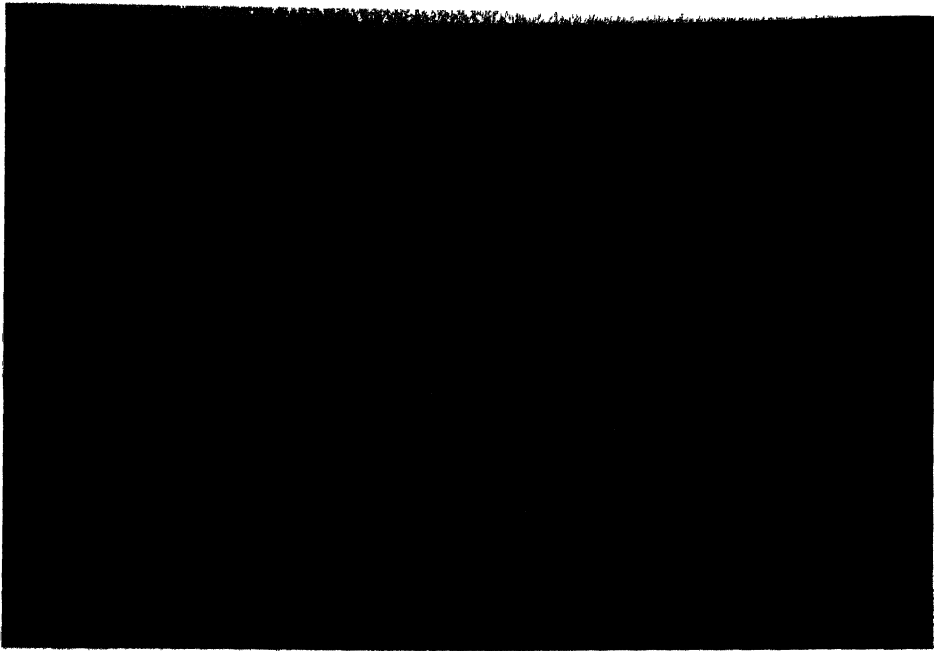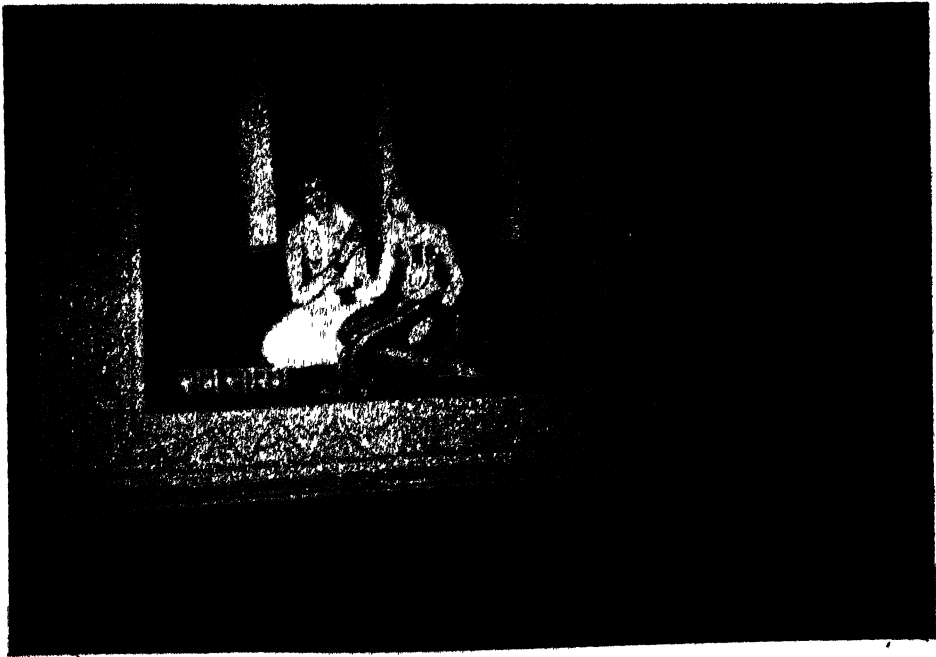
सांरगा

राग चित्रों की बाढ़ आ जाने के कारण उस समय तक हिन्दी छन्द में राग ध्यान, उपलब्ध होने लग जाता है। राजस्थानी और बुंदेल राजाओं की विशेष रूचि होने के कारण असंख्य राग चित्रों का निर्माण उस समय होने लगता है। यदि हम मारवा, काफी, विहाग, पूर्वी, श्री, भैरवी और तोड़ी, आसावरी, हिंडोल, सारंग, शंकरा, भाम पलासी, कल्याण राग चित्रों को देखें तो हमें चित्रकार की कल्पना का अपूर्ण दर्शन प्राप्त होता है.

उन्नीसवीं शताब्दी राग माला चित्रण का ह्रास काल है और इस अवधि के चित्र ब्रिटिश म्यूजियम की एड0, 26, 550, आर0 883, 8 और आर0 8839 चित्रावलियों में सुरक्षित हैं। ये चित्र पुराने चित्रों की प्रतिलिपियां प्रतीत होते हैं। उनमें एक स्वरता और संजीवता का अभाव है और वे उन सामान्य चित्रों के सदृश प्रतीत होती हैं, जिन्हें प्रमुख वैष्णव तीर्थ नाथ द्वारा के बाजारों में खरीदा जा सकता है।

कांगड़ा के चित्रकारों ने राग-रागिनियों के विषय को नहीं अपनाया और वहां से अभी तक कोई अंकित राग चित्र प्राप्त नहीं हुआ। यद्यपि कांगड़ा के पहाड़ी चित्रों में अभिसंधिता नायिका के प्रदर्शन का हेत्वाभास राजस्थानी रागमाला का रामकली रागिनी आदि चित्रों के ही रूप में किा गया है। मधु माधवी के समय में रागिनी ककुंभ का विषय प्रदर्शित करने के लिए महिला और मयूर के हेत्वाभाव को कांगड़ा[1] के चित्रकारों ने भी अपनाया है।

- -

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रभात काल से ही राजपूत कालीन शैली का चित्रकला का ह्रास आरम्भ हो गया। आरम्भिक राग मालाओं की भाव प्रधान शैली सत्रहवीं और अट्ठारहवीं शताब्दी की अधिक सांसारिक और सजावट की शैलियां अग्राह्य हो गयी और इसके फलस्वरूप जिस शैली का विकास हुआ वह अपारेमार्जितता की ओर अधिक झुकी। उस काल के चित्रों मे मानव रूप का चित्रण स्पष्टत: अपारेमार्जित है और रंगों में वह ताजगी और चमक नहीं रह गयी जो आरम्भिक चित्रों में थी.

इस प्रकार भारतीय चित्रशैलीयों में राग चित्रण का यह स्वरूप है, जो कि संगीत के सर्वतोमुखी विकास के लिए विशेष अध्ययन और खोज की अपेक्षा रखता है।

xxx

अध्याय - नवम

राग और नृत्य

राग रागिनियों का नृत्य संगीत जगत को एक नूतन भेंट है। राग रागिनयों के शास्त्रीय स्वरूप को लय एवं तालबद्ध कर नृत्य के तोड़ों के रूप में ढाल दिया गया है, चूंकि प्राचीन राग रागिनियां साकार थी। अतः उनके श्रृंगार रूप गुण आदि की अभिव्यक्ति नृत्य के द्वारा सम्भव है।

राग रागिनियां हनुमत मत्त के अनुसार और उनके स्वरूप ग्रथाधारित हैं।

भैरव राग -

[x]जैटाऽजूट ऽटबिच गंऽगाऽ सोऽहत। [2]भाऽलटू ऽजचंऽ दाऽमन मोऽहता।

[0]करत्रिशू ऽलढुम रूऽगल भुजंऽग। [3]कटिबाऽ घंऽबर अरूभऽ स्मअंऽग

[x]जेऽकेऽ लाऽसीऽ अविनाऽसीऽमेऽ। [2] रवऽऽ हेऽ जेऽकेऽ लाऽसीऽ।

[0]अविवाऽसीऽमेऽ खऽऽ हेऽ।। [3]जेऽकेऽ लाऽसीऽ अविनाऽ सीऽमेऽ ।। रव

भैरव की पांच रागिनियां

भैरवी: चंऽद्रमु खीऽमेऽ रवीमृग नेऽनीऽ। आतिलाऽ वऽण्यव तीऽमधुबेऽनीऽ।

शुऽभ्रव सनरऽ क्तिमकंऽ चूकितन। धाऽरेऽ बेऽठीऽ रछत्नसिं हाऽसन।।

शिवसम ऽक्षपूऽ जतप्रस ऽन्नमन। लिएऽहा ऽथकर ताऽलब जाऽवत।।

भेऽरव कीऽनाऽ रीऽऽऽ भेऽरव। कीऽनाऽ रीऽऽऽ भेऽरव कीऽ नाऽ।। री (सम)

2. **बैराड़ी -**

तनकम नीऽयके ऽशकंऽ चितरति। भाऽवमु खनपन लाऽयर हीऽऽऽ।

करमेंऽ लेऽकर कमलचा ऽपशुम। वदनाऽ पियाऽरि झाऽ पर हीऽऽऽ।।

करमेंऽ लेऽकर कमलचा ऽशुभ। वदनाऽ पियाऽरे झाऽरे हीऽऽऽ।।

मदिरम दिरकँग नाऽखन काऽएऽ। बैऽराऽ डीऽमैऽ रवअर धांऽगीऽ।

त्रामतत थेईतत थेई त्रामतत थेईतत थेइ त्रामतत थेईतत।। थेई (सम)

3. **मधुमाधवी:**

श्रतिप्रींऽ ताऽमधु माऽऽध-वीऽऽऽ। जाऽवत सत्ररीऽ रेऽऽन ऽऽऽऽ।

तलाऽकुं ऽजबिच केऽलिर तऽऽऽ। काऽमाऽ तुरद्देऽ नैऽऽन ऽऽऽऽ।।

होऽनिशं ऽकप्रिय उरपर सऽऽऽ। अधराऽ मृतकर पाऽऽन ऽऽऽऽ।

नीऽलव ऽस्त्रबिच गौऽरव नऽऽऽ। धनबिच विऽज्जुस माऽऽन ऽऽऽऽ।।

देऽखछ टाऽमैऽ रवरम पीऽकीऽ। नैऽनाऽ हैऽबयाऽ कुलब्याऽ कुलब्याऽ।

कुलऽऽ ऽऽव्याऽ कुलव्याऽ कुलव्याऽ। कुलऽऽ ऽऽब्याऽ कुलब्याऽ कुलव्याऽ।।

3. **सिंधवी :**

बाऽटपि याऽकीऽ जेऽहर हीऽमन। हीऽमन क्रोऽधित वऽक्रभृ कुटिकर।

मेऽत्रिसू ऽलरऽ क्तिमअंऽ बरधर। काऽनन बंऽधुक पुऽष्परू चिररस।।

वीऽरब सैऽमुखं अरूणन यनसिऽ। धवीऽउ ऽत्रमैऽ रवबनि ताऽमाऽ।

निनीऽबि रहदऽ ग्धाऽमाऽ निनीऽबि। रहदऽ ग्धाऽमाऽ निनीऽबि रहदऽ।। ग्धऽ(सम)

5. **बंगाली :**

शीऽश जटाऽ तनव ऽलकल। गरमें ऽद्विज सूत्र लसैऽ।

सुऽद रतन रूचिर छबिऽ। बिरह ज्वाऽल मेऽझु लसैऽ।।

कमला ऽसन पैऽबि राऽज। मैऽर व कोऽ घ्याऽन किएऽ।

अतिसुं ऽदर बंऽगा ऽलीऽ। बैऽठी.ऽहैऽ जोऽग लिएऽ।।

मनमेंऽ ऽविऽ खाऽस अतुल। नैऽनों ऽमेंऽ आऽस यहीऽ।

आऽवें ऽमेऽ प्रीऽत मत्याऽ। रेऽऽ ऽप्याऽ रेऽऽ ऽप्याऽ।। रे (सम)

2. **मालकौंस राग -**

यौऽवन मऽत्तबी ऽरस सिंऽचित। शुऽभ्र दनकर खंऽमसु।

शोऽभित। रऽक्तव सनलाऽ जतप्रवा ऽलोऽ। रूऽपअ नंऽगदे ऽरवीय

ऽलकोऽ। शिकऽऽ ऽऽपर वीऽनमा ऽलकोऽ। शिकऽऽ ऽऽपर वीऽनमा

ऽलकोऽ। शिकऽऽ ऽऽपर वीऽनमा ऽलकोऽ।। शिक.(सम)

मालकौंस की पांच रागिनियां

टोड़ी -

अंऽग अंऽग मेऽअ नंऽग। छविछ हरत तनसु रंऽग।

सुऽभ्र वसन मुखई ऽदुऽ। ताऽवि चश्याऽ मलबिं ऽदुऽ।।

कुचक ठोऽर नाऽग वेऽणि। सुंऽद रताऽ रतिस माऽन। बीऽन हाऽथ

लिऽ तोऽड़ी। पीऽके ऽगुन करति गाऽन। विहर तिहैऽ काऽन नविच।

ताऽन सुनत नाऽच तमृग। त्राऽक्त थेइत थेईऽ त्राऽक्त।

2. गौरी:

चंऽद्रमु खीऽकम नीऽयका ऽमिनीऽ। गजगाऽ मिनिपिय
कीऽअनु राऽगिनि। श्वेऽतब सनमन हरआऽ भूऽषण। आऽभ्रमं ऽजरीऽ
कऽर्णधा ऽरिणीऽ।। गुंऽफित पुऽष्पशी ऽराकीऽ वेऽणीऽ। मकराऽ कृतकुंऽ
डलछबि न्याऽरीऽ। चलीऽपि याऽसेऽ मिलनेऽ गौऽरीऽ। माऽनेनि माऽलकौंस
ऽसकीऽ प्याऽरीऽ।। ताऽथेई थेईतत आऽथेई थेईतत। थंऽथुऽ तत्तत्
तिंधाऽति धाऽदिगदिग। थेईदिगदेग थेईतिधा ऽतिधाऽ देगदेग थेई।
दिगदिगथेई तिधाऽति धाऽदिगदिग थेईदेगदिग।। थेई (सम)

3. गुनकली -

कृशवदं जीऽप्रीऽ तमवियो ऽगिनीऽ। धधकेऽ हृदयबि रहकीऽ अगिनीऽ।
मुखमली ऽननैऽ नाऽनित बरसे। बाऽलवि योऽगेन योऽगेन पीऽकोऽ तरसेऽ।।
बिथुरीऽ अलकेंऽ छबिमुर झाऽईऽ। पलिकाऽ लिगुन कलीसेर नाऽईऽ।
शरददे वसकेऽ प्रथमप्र हरमेंऽ। झुलसर हीऽहैऽ बिरहाऽ नलमेंऽ।।
भाऽलाकौं ऽसकीऽ प्याऽरीऽ गुनकलि। काऽऽऽ ऽऽदेखो भाऽलकौ ऽसकीऽ।
प्याऽरीऽ गुनकलि काऽऽऽ ऽऽदेखो। मालकौंस ऽसकीऽ प्याऽरीऽ गुनकाले। का(सम)

4. **खंभावती:**

तनकुंऽ दनअरू ऽक्तव सनकुच। परशोऽ भितहैऽ हारेतव ऽस्त्रमर।

मुऽक्ताऽ माऽलाऽ शोऽभित हैऽऽऽ। शरदन्न तुऽकीऽ अऽर्द्धने शाऽमैऽ।।

बीऽनब जाऽवत नाऽचत गाऽवत। पुष्पयरं ऽबमेऽ रंऽजेत हैऽऽऽ।

मनोऽमु ऽग्धकाऽ रीऽताऽ नोऽसेऽ। चतुराऽ ननकोऽ रझाऽर हीऽहैऽ।।

भाऽलकों ऽसकीऽ खंऽभाऽ वतीऽति। याऽऽऽ प्याऽरीऽ माऽलकों

ऽसकीऽ। खंऽभाऽ वतीऽति याऽऽऽ प्याऽरीऽ। माऽलकों ऽसकीऽ

खंऽभाऽ वतीऽति।। या (सम)।

5. **कुंकुंभः -**

पहरके सरियाऽ वसनरा ऽविनीऽ। कुकुभजो ऽहतीऽ वाऽदापे याऽकीऽ।

जाऽगीऽ साऽरीऽ रैऽनआ ऽसमेऽ। पीऽरन फिरभीऽ गईऽहि याऽकीऽ।।

सघनकुं ऽजबिच रोऽवत बैऽठीऽ। परिरंऽ भनमेंऽ दरकीऽ अंगेयाऽ।

शरदरै ऽनकेऽ अंऽत्यप्र हरमेऽ। जबबोऽ लतपीऽ पीऽकोऽ यालियाऽ।।

नैऽनब हाऽवत बिरहाऽ कुलहोऽ। माऽलकों ऽसकीऽ तिरियाऽ बोऽलेऽ।

आऽनमि लोऽसज नाऽऽऽ आऽनमि। लोऽसज नाऽऽऽ आऽनमि लोऽसज।।न (सम)।

3. **हिंडोल राग -**

परमप्र वीऽणहिं डोऽलरा ऽगकाऽ। रूऽपअ तिऽमन हाऽरीऽ हैऽऽऽ।

रंऽगक पोऽलल सैंऽसब अंऽगन। मुखकीऽ सुषमाऽ न्याऽरीऽ हैऽऽऽ।।

पीऽतव सनतन परसोऽ हतहैऽ। स्वऽर्णहि डोऽलाऽ मनमोऽ हतहैंऽ।

बसंऽत ऋतुदिन प्रथमप्र हरमेंऽ। मधुरंगी ऽतगाऽ करकाऽ मिनिया।।

झुलाऽर हीऽहैंऽ हिंऽडोऽ लेऽकोऽ। झूऽमझू ऽमकर बीऽनब

जाऽवत। रसप्रवी ऽणहिंऽ डोऽऽल रसप्रवी। ऽणहिंऽ डोऽऽल

रसप्रवी ऽणहिंऽ।। डोल (सम)

हिंडोल राग की पांच रागिनियां

रामकली -

कंऽचन वरनरा ऽमकली केऽतन। नीऽलनव ऽस्त्राअति

शोऽभित्त हैऽऽऽ। अंऽगअं ऽगआऽ भूऽषण उरमेंऽ। मोऽतीऽ

माऽलवि राऽजत हैऽऽऽ।। रूऽपगु माऽनभ रीऽतिय माऽनिनि।

प्रियतम सेऽअति रोऽषक रैऽऽऽ। अनुनय बिनयपि याऽकर हाऽरेऽ।

माऽनत नाऽहिति याऽऽऽ नाऽहिति।। याऽऽऽ नाऽहिति याऽऽऽ

माऽनत। नाऽहिति याऽऽऽ नाऽतिहि यांऽऽऽ। नाऽहिति याऽऽऽ

माऽनत नाऽहिंति। याऽऽऽ नाऽहिंति याऽऽऽ नाऽहिंति। या (सम)

2. **देशाख :**

कुंऽदन साऽहैऽ गाऽतम नोऽहर। केऽसर चंऽदन से ऽआऽ च्छाऽदित।

धीऽरम ईऽअति वीऽरस बलभुज। दंऽडदे ऽखतन होऽरोऽ मांऽचित।।

वाऽदन सेऽमन आऽवेऽ ष्ठितहोऽ। करनिना ऽदतन रोऽमकं पाऽवैऽ।

मऽल्लरू ऽपदेऽ शाऽखरा ऽगिनीऽ। तेऽराऽ रूऽपस बैऽमन

भाऽवैऽ।। दिग तदि गतगि थोंऽदिंग दिगथोंऽ। ताऽथेई धीमताऽ

थिलांऽग थरिंऽग। थेई धीमताऽ धीलांऽग थरिऽग। थेई

धीमताऽ थिलांऽग थरिंऽग। थेई (सम)

3. **ललिता: -**

स्वर्णिम वदनदी ऽप्पतमुख राऽकाऽ। रऽक्तव सनसऽ वांऽगसुं

ऽदरीऽ। करमेंऽ शोऽभित्त पुऽष्दं ऽडवऽ। वक्षऽस्थल हुलसत

कमलमा ऽलानिशि।। जाऽगीऽ प्रीऽतम संऽगप्रा ऽतनिक।

सीऽमंऽ दरसौंऽ अतिप्रस ऽन्नलेऽ। करमन मेंऽनूऽ तनउ में

ऽगविह। रतहुल सतअति मोऽदभ रीऽललि।। ताऽललि

बाऽललि ताऽबिह रतहुल। सतअति मोऽदभ

रीऽललि ताऽललि। ताऽललि ताऽबिह रतहुल सतअति।

मोऽदभ रीऽललि ताऽललि ताऽललि। ता (सम)

4. विलावल -

मुखहै ऽचंऽ दाऽस माऽन। शुभदु कूऽल पारिऽ धाऽन।

आऽभू ऽषण युऽक्त अंऽग। ध्याऽन धरति हैऽअ नंऽग।।

उन्मु ऽक्ताऽ माऽल सोऽहे। रसांसि गाऽर मनमो ऽहेऽ।

ऋतुब संऽत द्वितिय प्रहर। बिहर तपीऽ तमके संऽग।।

अतिप्र सऽन्न बेऽला ऽवल। राऽग नीऽऽ अतिप्र सऽन्न

बेऽला ऽवल राऽग नीऽऽ। अतिप्र सऽन बेऽला ऽवल। रा (सम)

5. पटमंजरी -

कृशतन मुखमली ऽनदिय दऽग्धाऽ। पिऽबियो ऽवमेंऽ हुईऽबा ऽवरीऽ।

पीऽसौऽ तिनसौऽ नेऽहक रतुहैऽ। जाऽनदु खीऽअति होऽयजा ऽतरीऽ।।

बाऽलबि योऽगिन नीऽरब हाऽवत। बिरहाऽ कुलसिर धुिनिपछ ताऽवत।

धूऽलधू ऽसरित अंऽगरस माऽएऽ। कपकप आऽनअ नंऽबअ नंऽबअ।।

नंऽऽब ऽऽऽऽ ऽऽऽस माऽएऽ। कणकण आऽनअ नंऽबअ नंऽबअ।

नंऽऽब ऽऽऽऽ ऽऽऽस माऽएऽ। कपकप आऽनस आऽनअ नऽबअ नऽबअ। नंब (सम)

4. **दीपक राग -**

वीऽतच लीऽहैऽ अग्निध्वनि शाऽचहुं। ओऽरछा ऽरहाऽ अंऽधका ऽरअप।

नेऽराति मंऽदिर मेंऽदीऽ पकराति। सीऽनाऽ रीऽसंग करतके ऽलेरत।।

काऽमक लाऽमेऽ वहप्रवी ऽनदम। कतमपि मुकुटादि वाऽकर साऽर्छबे।

देऽरवदी ऽपिकाऽ हैऽमली ऽनत्राम्। ताऽथेई थेईतत आऽथेई थेईतत।।

दिग्धाऽदिगदिग थेईतिग्धाऽदिगदिगथेई तिग्धाऽदिगदिग। थेई बाम्

तिग्धाऽदिगदिग थेईतिग्धाऽ। दिगदिगथेई तिग्धाऽदिगदिग थेई बाम्।

दिग्धंऽदिगदिग थेई तिग्धाऽ दिगदिगथेई तिग्धाऽदिगदिग।। थेई (सम)

दीपक राग की पांच रागिनियां

1. **देसी -**

कुंऽदन केऽसमा ऽनतन सुंऽदर। मुखचंऽ दाऽसाऽ

उजियाऽ राऽऽऽ। अंऽगअ ऽगअल साऽयमं ऽददूग। सोऽयर होऽप्रीऽ

तमप्याऽ राऽऽऽ।। गीऽतगा ऽयझक झोऽरिज गाऽवति। देऽसीऽ अतेआऽ

तुरबाऽ लाऽऽऽ। जाऽगेपि याऽतोऽ केऽलिक रेऽसीऽ। तलहोऽ जोऽवन

कीऽज्वाऽ लाऽऽऽ।। धाकिटध किटधुधु किटताकि टाथेकेट क्राऽवक्रा

ऽनकिटतक धाऽकिटतक धाऽकिटतक। धाऽऽऽ ऽऽ, किटतक धाऽकेट तक

धाऽकिटतक। धाऽऽऽ ऽऽकिटतक धाऽकिट तक धाऽकिट तक।। धा (सम)

2. **कोमोदी:**

धवतअं ऽगपट पीऽतसु हाऽवैऽ। मुखपंऽ कजमुर झाऽयर होऽबन।

बनडोऽ तलबिर हिनबन करपिक बैऽनन हींऽमन भाऽयर होऽतज।।

हाऽसला ऽसठाऽ हीऽउदा ऽसढूंऽ। ढतहैऽ पीऽकोऽ कुंऽजकुं ऽजनिम।

काऽमोऽ दीऽबिर हिनऽऽ काऽमोऽ। दीऽबिर हिनऽऽ काऽमोऽ

दिऽबिर।। हिन (सम)

3: **नट: -**

धूऽमर हीऽहैऽ युऽभू ऽमिपर। कंऽचन कीऽआ माऽलेऽ करऽऽ।

तनशोऽ णितसेऽ हैऽरेऽ जितमुख नींऽरोंऽ जैऽसाऽ आऽलोऽ कितऽऽ।।

युऽद्धभ याऽनक देऽखहो ऽरहीऽ। तनिकन हींऽतेरि याऽबिचलितऽऽ।

बीऽराऽ गनाऽन टीऽऽऽ वीऽरांऽ। गनाऽव टीऽऽऽ बीऽरांऽ गनाऽन।। टी (सम)।

4. **केदारा -**

भाऽल चंऽद्र शीऽश गंऽग। भऽस्म रमत अंऽग अंऽग।

शोऽभि तहैऽ गलभु जंऽग। तनकुं ऽदन साऽसु रंऽग।।

धाऽर पकर सिवस्व सऽप। केऽदा ऽराऽ छबे नूऽप।

दृगन मूंऽद धरत ध्याऽन। प्रीऽत मसोंऽ रक्योऽ प्राऽन।।

केऽदा ऽराऽ दीऽप ककीऽ। नाऽर ऽऽऽ केऽदा ऽराऽ।

दीऽप कलीऽ नाऽर ऽऽऽ। केऽदा ऽराऽ दीऽप ककीऽ।। नार (सम)

5. **कान्हरा -**

धनसमा ऽनश्याऽ मलशरी ऽरदऽ। क्षिणंकर मेंऽकर

वाऽललि एऽभुज। वाऽमधु ऽभ्रगज दंऽतध रेऽसोऽ।

तीऽकीऽ माऽलाऽ वऽमलि एऽरस।। वीऽरछ कीऽस भूऽमेब

सैऽगुन। गाऽवत चाऽरन सुरउचा ऽरसुन। काऽनका

ऽन्हराऽ अतिहुल तेऽऽऽ। ततततत् थेई तत् तत् थेई

ततततत्।। थेई (सम)।

5. **श्री राग -**

जोऽबन मदभेंऽ चूऽरकि शोऽरसु। धीऽरअ नंऽगको रूऽपल जाऽवत।

काऽमक लाऽपर बीऽनप्र पयकीऽ। वीऽना सोंऽतरूं नीऽनरि झाऽवत।।

शोऽभित तनपर अंऽबर लाऽलर। साऽलकी मंऽजरी काऽनसु

हाऽवत। रूऽपस रूऽपस नूऽसब न्योऽसीऽ। सब राऽ गनमेऽ

भूऽपक हाऽवत।। शुऽष्कद्रु मनकोऽ हरितक रेऽश्रीऽ।

राऽऽग ऽऽऽऽ शुऽष्कद्रु मनकोऽ। हरितक रेऽश्रीऽ राऽऽग ऽऽऽऽ।

शुकष्द्रु मनकोऽ हरितक रेऽश्रीऽ।। राग (सम)

श्री राग की पांच रागिनियां

1. **मालवी:**

माऽऽल वीऽमधु काऽऽमि नीऽऽऽ। करषोऽ ऽषश्रृंऽ गाऽऽर ऽऽऽऽ।

सांऽसस मयरनि वाऽऽस मेंऽऽऽ। जाऽबैंऽ ठीऽमनु हाऽऽर ऽऽऽऽ।।

छैऽलछ बीऽलीऽ छरहरी ऽऽऽऽ। शुकसमा ऽनशुचि गाऽऽत ऽऽऽऽ।

प्राऽनपि याऽकोऽ निरखके ऽऽऽऽ। होऽतहि याऽउऽ छाऽऽत ऽऽऽऽ।।

काऽमक लाऽपर वीऽतपि याऽसंग। केऽलिक रततरू नीऽपर वीऽनांपे।

याऽसंग केऽलिक रततरू नीऽपर। वीऽनहिप याऽसंग केऽलिक रततरू।। नी (सम)

2. **धनाश्री -**

दूऽर्वाऽ दलसम श्याऽमगा ऽतविर। हाऽकुल होऽप्रिय होऽप्रिय चिऽत्रांले

खेऽऽऽ। श्वेऽतक पोऽलब हतदृग जलभीऽ। जतउरो ऽजषऽ

न्नाऽसिरि केऽऽऽ।। धिरधिरकिटतक धिरधिर किट तक धिरधिरकेटतक

धिरिधिरकिटतक। धाऽक्ड़ाऽन धिरधिरकिट तक धिरधिर किटतक

धिरधिरकिट तक धिरधिरकिट तक धाऽ क्ड़ाऽन्। धिरधिरकिट तक

धिरधिरकिटतक धिरधिरकिट तक धिरधिरकिट तक।। धा (सम)

3. **बसंत -**

विहर तद्रम कुंऽज बीऽच। बनउ पवन काऽन नमेंऽ।

श्रीऽश धरेऽ मोऽर पंऽख। उरिबि चमोऽ तिनमा ऽलाऽ।।

पीऽत बसन नीऽल बरन। कऽर्ण मंऽज रीऽर साऽल।

फूऽल झड़ीऽ हाऽथ लिएऽ। नृऽत्यकरत मधुबाऽ ऽलाऽ।।

ताऽथे ईथेई चलत चाऽल। प्रीऽत मकोऽ तर्नारे झाऽत।

राऽगि नीऽद संऽत राऽगि नीऽब संऽत राऽगि नीऽब।। संत (सम)

मालश्री -

तनदम कतकुंऽ तनसमा ऽनमुख। चंऽद्रछ टाऽछहू राऽवत हैऽकर।

कमलघ रेऽकृश गाऽतन परऽ। क्तार्डीब सनफह राऽवत तैऽसुन।।

प्रऽमकी बाऽतल जैऽतिरि याऽपैऽ। मनहीऽ मनमुस काऽवत हैऽबैऽ।

ठऽसुवि शाऽलर साऽलत लेऽतिय। माऽलसि रीऽम्न झाऽवत हैऽऽऽ।।

कऽतिट कऽतिट धधेतिट धे धेतिट। धिऽतड़ा ऽन्नधाऽ दीऽताऽ क्रधाऽना।

धाऽऽत् धाऽदीऽ ताऽक्रधा ऽनधाऽ। ऽत्धाऽ दीऽताऽ क्रधाऽन धाऽऽत्।। धा (सम)

5. **आसावरी -**

मलयाऽ गिरिके बनबिच वहतीऽ। शीऽतल जलकीऽ निऽर्झर पीऽऽऽ।
मोऽरपं ऽखसम वऽस्त्रप हरकर। बैऽठीऽ तटसुं दररम पीऽऽऽ।।
तनरंग श्याऽमल रूऽपम नोऽहर गरशोऽ भितगज मुऽक्ताऽ माऽलाऽ।
चंदन तरूकीऽ नाऽगिन कोऽकर। मेंऽलपे ऽटप्रभु दितहैऽ बाऽलाऽ।
आऽसाऽ वरिप्याऽ रीऽप्याऽ रीऽप्याऽऽ। रीऽऽ श्रीऽतेय आऽसाऽ।।
वरिप्याऽ। रीऽप्याऽ रीप्याऽ रीऽऽऽ श्रीऽतिय। आऽसाऽ वारेप्या
रीऽप्याऽ रीऽप्याऽ।। री (सम)।

6. **मेघ राग -**

नीऽलक मलसम तनअति सुंऽदर। ताऽपैऽ पीऽतदु कुऽलसु हा?वैऽ।
ध्वंनजोऽ बनमद माऽतम दनसम। मेऽघरा ऽगनाऽ रीऽमन भाऽवै।।
चतुंऽओ ऽरधन घोऽरध टाऽरथ। बैऽठमे ऽघनभ मेऽमेऽ राऽवैऽ।
धनगर जनधन घोऽरत ड़ातड़ा। धीऽताऽ किटतक शोऽरम चाऽवै।।
धहरध हरवर सतधह राऽवत। मनोऽइं ऽद्रगिर दंऽगब जाऽवत।
धेड़धेड़ धेड़धेड़ धिकिटत गदिगन। ताऽधाऽकिटतक दीऽगड़धाऽ।
किटतक गदिगत धाऽकिटतक।। गजिगनधाऽ किटतकगदिगन धाऽ।।
ताऽधाऽकिटतक। दीऽगड़धाऽ किटतकगदगन धाऽकिटतक गदिगनधाऽ।
किटतकगदिगन धाऽ ताऽधाऽकिटतक दीऽगड़धाऽ। किटतकगदिगन

मेघ राग की पांच रागिनियां

1. टंक -

कमल से ऽजबिच ।ड़ीऽका ऽमिनीऽ। बिरहाऽ नलमेंऽ अंऽगज राऽएऽ।

सखिगुला ऽबजल मेंऽचंऽ दनघिस लेऽपक रेंऽतन मनसित लाऽवैं।।

ताऽहिस मयपिय आऽयगं चौऽदेऽ। खतसब तनकेऽ ताऽपन साऽवेऽ।

अतिआऽ नऽदभ ईऽकाऽ मिनियाऽ। नाऽचत मगनजि याऽसुख पाऽवैऽ।।

तार्थुंगाता धुंगादिगदिग थेईतथे इतथेई। तिथाऽति याऽत्राम् थेइयथे

इयथेई। थेई ऽऽत्राम् थेईयथे इयथेई। थेई ऽऽत्राम् थेइयथे

इयथेई।। थेई (सम)

2. मल्लारी -

तनकीऽ दुतिकंऽ चनसीऽ झलकेऽ। जोऽबन परअनं ऽगमद छलकेऽ।

दीऽनम नीऽनति याऽमुर झाऽवत। झरतनै ऽनपीऽ कीऽसुधि आऽवत।।

बीऽनध रेऽकर मेंऽअकु लाऽवत। बाऽलवि योऽगभ रीऽमऽ ल्लाऽरीऽ।

पीऽविन नीऽरब हाऽऽय पीऽबिन। नीऽरब हाऽऽय पीऽबिन नीऽरब।। हाय (सम)

3. गूजरी -

मलयाऽ गिरिकेऽ शीऽतल वनमेंऽ। पल्लव कीऽशैऽ याऽमेंऽ सोऽईऽ।

नीऽलव दनपर रऽक्तव सनपर। वीऽनति याऽरति रंऽगभि जोऽईऽ।

करमेंऽ लेऽकर बीऽनाऽ गाऽवति अपनेऽ मनभाऽ वनगुन गाऽयाऽ।

4. **भूपाली -**

चंऽद्र मुखीऽ चंऽप ईतन। केऽश रियाऽ चूर डाऽल।

जोऽब नबिच लटहुं लसत। करधों ऽभित रंऽग लाऽल।।

देऽख तमग प्रीऽत मकेऽ। धरके ऽउर बीऽच धीऽर।

अंऽग अंऽग मेऽअ नंऽग। छाऽयो ऽहैऽ बनके पीऽर।।

अतिम नहर राऽभि निभुवि। पाऽलि ऽऽऽ अंतिम नहर।

राऽभि निभुवि पाऽलिऽऽऽ। अतिम नहर राऽभि निभुवि।। पालि (सम)

5. **देशकारी -**

चंऽपक वदनम् नोऽहर ताऽपर। चंऽदन लेऽपसु हाऽयोऽ हैऽऽऽ।

मुखपूऽ नमचंऽ दाऽसमा ऽनधन। केऽराघ टाऽधह राऽयोऽहैऽऽऽ।।

कंऽचन कलशस माऽनउ रोऽजअ।' नंऽगहि याऽबिच छाऽयोऽ हैऽऽऽ।

बेंऽदीऽ भाऽलन यनमेंऽ काऽजर। मोऽतिव माँऽगस जाऽयोऽ हैऽऽऽ।।

मेऽघरा ऽगसंग केऽलिक रतहैऽ। प्राऽणप्र णयतन मनसब हाऽरीऽ।

नाऽरदे ऽशंकाऽ रीऽऽऽ नाऽरदे। ऽशकाऽ रीऽऽऽ नाऽरदे

ऽशकाऽ।। री (सम)

xxx

---

1. निबन्ध संग्रह से उद्धृत पृ0 47।

अध्याय - दशम्

कर्नाटक पद्धति में राग संगीत का स्वरूप एवं उत्तरी भारतीय रांग संगीत से उसकी तुलनात्मक समीक्षा।

भारत वर्ष में इस समय शास्त्रीय संगीत की दो पद्धतियां हैं, हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति ओर कर्नाटक संगीत पद्धति। विद्वानों का विचार है कि प्राचीनकाल में सम्पूर्ण भारत में एक ही संगीत पद्धति प्रचलित थी पर भारत पर 1000 ई0 के आस-पास अरबों और पारसियों के आक्रमण होने लगे, जिससे उत्तर के लोग इन दोनों विदेशी संस्कृतियों के प्रभाव में आ गये। लगभग 200 वर्ष बाद तक मुसलमानों का साम्राज्य बन गया। उत्तर भारत की भाषा, कला, संगीत सभी पर उनका प्रभाव पड़ना बिल्कुल ही स्वाभाविक था। अतः उत्तर भारत के संगीत पर फारसी संगीत के प्रभाव से जो वर्ण शंकर संगीत उत्पन्न हुआ, वही आज हिन्दुस्तानी संगीत कहलाता है। दक्षिण भारत में यह प्रभाव बहुत कम पड़ा। फलस्वरूप उधर का संगीत बहुत कुछ अपने मूल रूप में है, किनतु तब भी समय की गति के साथ कुछ न कुछ तो परिवर्तन हुआ ही है।

दक्षिण भारत की प्राचीन संगीत प्रणाली पर प्रकाश डालने के लिए उपलब्ध ग्रन्थों में सिलप्पदीकारम्, तिवाकरम् तथा परिपादल आदि ग्रन्थों में संगीत विषयक सामग्री प्रचुर मात्रा में मिलती है।

'सिप्पदीकारम' नामक तमिल नाटक में तामिल देश के प्राचीन संगीत का विवरण मिलता है। नाटक की कहानी कोवल नामक श्रीमान् वर्णिक तथा नर्तकी माधवी के प्रणय-सम्बन्ध पर आधारित है। नाटक का महत्व इसी में है कि वह समस्त भारत में प्रवर्तमान एक ही संगीत शैली का दिग्दर्शन करता है। संगीत के लिए 'इसइ' संज्ञा है तथा इसके अन्तर्गत गीत वाद्य तथा नृत्य तीनों का समावेश है। नाट्य शास्त्र के समान कर्नाटक संगीत में एक सप्तक के अन्तर्गत 22 श्रुतियां तथा शुद्ध विकृत स्वर मिलाकर एक सप्तक के अन्तर्गत 12 स्वर माने जाते हैं तथा षडज - पंचम एवं षडज - मध्यम भाव का स्पष्ट संकेत है। सूक्ष्मतम ध्वनि अर्थात् श्रुति के लिए 'अलकू' संज्ञा है। संस्कृत के वादी, संवादी, अनुवादी तथा विवादी स्वरों के तामिल में कर्नाटक संगीत में क्रमशः इनइ, किलइ, नटपु तथा पगइ संज्ञा पायी जाती है। मूर्च्छना के आरम्भिक स्वर के लिए 'कुरल' संज्ञा है। 'अलकू' के विभिन्न अन्तरों से जिन मूर्च्छना-सदृश स्वरावलियों का निर्माण होता है, उनके लिए 'याल' संज्ञा है। ऐसे मूर्च्छना प्रकार मुख्यतः चतुर्विध हैं तथा इनका श्रुति विभाजन निम्न प्रकार है : -

1. मरूथ याल - 4.4 3.2 4.3.2
2. कुरिंजीयाल - 2.4 3.2 4.4.3
3. नेयथल याल - 4.3.2 4.4 3.2
4. पालइ याल - 3.2.4 3.2 4.4

इन मूर्च्छनाओं के आरम्भिक स्वर क्रमशः अगमिलाई अर्थात षडज, परमिलाई अर्थात गन्धार, अरूगियाल अर्थात पंचम तथा पेरूगियाल अर्थात निषाद माने गये हैं।

इन यालों अर्थात्त मूर्च्छनाओं में से प्रत्येकशः चार 'पन' अर्थात् मूलभूत रागों की उत्पत्ति बतलायी है।

सिलप्पदीकारम् के अनुसार ध्वनि की उत्पत्ति मूलाधार से होकर जिह्वा, नासिका, दन्त आदि स्थानों को स्पर्श करते हुए क्रमशः 'इसइ' (संगीतानुकूल स्वर) में परिणत हो जाती है।

सप्तक के अन्तर्गत श्रुति संख्या के सम्बन्ध में प्राचीन तमिल ग्रन्थों में वैसा ही तीव्र मतभेद पाया जाता है, जैसा प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में। 'इसइ भरवु' नामक ग्रन्थ के अनुसार विभिन्न ग्राम रागों में 22 श्रुतियों के अन्तर्गत असंख्य सूक्ष्म श्रुत्यान्तर उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिए 'आयपलाइ' नामक मूर्च्छना में श्रुतियों की संख्या 12 है। 'वतपलाई' नामक मूर्च्छना में श्रुति संख्या 24 है, 'पिरिकोन पलाइ' नामक मूर्च्छना में श्रुतियां 48 हैं तथा 'चंथुरपलाई' नामक मूर्च्छना में श्रुतियां की संख्या 96 है। सिलप्पदीकारम के अनुसार कुल अलकू संख्या(श्रुति संख्या) 24 है तथा उनका प्रयोग विभिन्न पनों (रागों) में षडज पंचम संवाद के आधार पर होता है। इसी से उपयुक्त संवाद के आधार पर उलइ (पंचम) की उद्भूति होती है। उलई से कुरल (रि) कुरल ने इलि (ध) इलि से तुद्म (ग) तुद्म से विलरि (निषाद) तथा विलरि से कैबिकलइ (मध्यम) क्रमशः इसी संवाद तत्व से निर्मित होते हैं।

इस प्रकार स्वर स्थापना के लिए श्रुतिशास्त्र विषारद संगीतज्ञ की आवश्यकता मानी गयी है।

सिलप्पदीकारम् तथा अन्य तमिल ग्रन्थों के आधार पर कुछ दक्षिणी संगीतज्ञ विद्वानहरिकाम्बोज अर्थात् उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत का खमाज राग तमिल संगीत का आदिम एवं शुद्ध मेल मानने के पक्ष में है।

कुछ अन्य विद्वानों की सम्पत्ति से तमिल का चेमपलाई जो कि उस प्रदेश का प्राचीनतम एवं शुद्ध मेल राग माना गया है। हरिकाम्बोज न होते हुए धीरशंकराभरण अर्थात उत्तर का बिलावल राग है।

संगीत रत्नाकर से स्पष्ट है कि दक्षिण संगीत में मुखारी राग की परम्परा प्राचीन काल से प्रचलित रही है।

सिलप्पदीकारम् के प्राय: समकालीन अन्य ग्रन्थ तिवाकरम् में तमिल स्वरों के साथ संस्कृत षडज आदि स्वरों का उल्लेख हैं : -

	कर्नाटक	हिन्दुस्तानी
1.	षडजम्	षडज
2.	ऋषभम्	ऋषभ
3.	गांधारम्	गांधार
4.	मध्यम्	मध्यम
5.	पंचमम्	पंचम
6.	धैवतम्	धैवत
7.	निषादम्	निषाद

कर्नाटक संगीत में सप्तक को स्थायी कहते हैं। कर्नाटक संगीत में पर्यायवाची शब्द है (पल्लवि) में बारह स्वर स्थान होते हैं।

कर्नाटक संगीत में प्रधानतः 72 मेल कर्त्ता होते हैं। प्रमुख राग, सम्पूर्ण राग, जनक राग आदि मेल कर्ता के पर्यायवाची शब्द हैं, सारे रागों के लिए ये मेलकर्ता ही आधारभूत हैं।

कर्नाटक संगीत में स्वरलेखन पद्वति बहुत ही सुचारू है। अक्षरों, चिन्हों और संकेतों के साथ लिखी गयी किसी भी संगीत कृति को आसानी से पढ़कर ठीक ठाक से गाया जा सकता है।

कर्नाटक संगीत में श्रुति के लिए 'मात्रा' संज्ञा है और ऐसी मात्राएं सप्तक में 22 बतायी गयी हैं। स्वर संख्या के अनुसार रागों के सम्पूर्ण, षाडव तथा औड्व के प्रकारों का उल्लेख इसमें उपलब्ध है। सम्पूर्ण रागों के लिए 'पन' संज्ञा है, षाडव और औडव रागों के लिए 'तिरम' संज्ञा है।

कर्नाटक के संगीत कार्यक्रमों में कीर्तनों की भरमार पायी जाती है। राग ताल आदि के नियमों में बद्ध अर्थ गम्भीरता लिये हुए साहित्य के साथ रसिक लोगों के दिल पर प्रभाव करने वाले राग भाव सहित गायी जाने वाली एक विशेष कृति है कीर्तनम्। कर्नाटक संगीत के सभी श्रेष्ठ पहलुओं का 'गागर में सागर' की तरह

कीर्तनम् में समावेश होता है। कीर्तनम् को सुनकर ही रसिकों को पूरी तृप्ति होती है।

कर्नाटक संगीत में कल्पना संगीत अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कर्नाटक संगीत में कल्पना संगीत को गुंजाइश देने वाले प्रधान अंग ये हैं, राग आलापना, तानम्, पल्लवि, निरबल, कल्पना स्वर, राग मालिका वृत्तम् आदि।

किसी राग को लेकर स्वर संचारों को शास्त्रीय ढंग से गाकर उसका विस्तार करना 'राग अलापना' कहलाता है। इसी को 'रागम्' गाना भी कहते हैं।

कर्नाटक संगीत में स्वर लेखन बड़ा ही मूल्य रखता है। स्वर लेखन पद्धति के माध्यम में स्वर सम्बन्धी विभिन्न मुद्दे ध्यान रखने आवश्यक हैं।

1. स्वर का भेद तथा नक्षत्र चिन्ह इसमें राग का नाम आरोहण, अवरोहण उसके जनक मेलकर्ता का नाम उसका ताल और रचियता का नाम दिये जाते हैं। जब किसी मेलकर्ता स्वरों के अलावा कोई दूसरा स्वर आवे तो वह अन्य स्वर कहलायेगा और ✱ (नक्षत्र चिन्ह) द्वारा सूचित किया जायेगा। यदि मेच कल्याणी (यमन थाट) का जन्य राग है तो प्रतिमध्यम ही उसका अपना (स्वकीय) स्वर है। शुद्ध मध्यम अन्य स्वर है रिगमनिस में शुद्ध मध्यम ही होता है, इसलिए उसके ऊपर ✱ का चिन्ह लगाया जायेगा।

अगर किसी स्वर को गमक के साथ गाया जाये तो उसके नीचे 'ᨓ' ऐसी वक्र रेखा खीचीं जाती है जैसे नी '' ' अर्थात्त इसका स्थान निश्चित न होकर निषाद और षडज के नीचे झूलता रहा है। यह रेखा ᨓ गमक को सूचित करती है। अतः इसे गमक रेखा भी कह सकते हैं।

आरोहणम् (आरोह) के लिए संक्षिप्त रूप से 'आ' तथा अवरोहणम् (अवरोह) के लिए 'अ' लिखा जाता है।

कई कर्नाटक रागों में द्वाविंशति श्रुतियों में पाये जाने वाले अति सूक्ष्म विकृत श्रुति स्थानों का प्रयोग होता है। जिन्हें लिपिबद्ध करने के लिए उपयुक्त पद्धति में गुजांइश नहीं है। यह आसान बात भी नहीं है और इसके लिए नये चिन्हों का अविष्कार करना होगा।

कर्नाटक संगीत की कृतियां हैं स्वरावली, अलंकारम् स्वरजाति जातिस्वरम्, गीतम्, प्रबन्धम्, वर्णम्, कीर्तनम्, तिल्लाना जावली पदम् आदि निबद्ध संगीत है। निबद्ध संगीत को गाने के लिए एक निश्चित स्वरबद्ध रूप होता हे, वह निबद्ध संगीत कहलाता है।

स्वरावली

नौसिखियों को स्वर स्थानों का ठीक-ठीक ज्ञान होने के लिए रचित विभिन्न

प्रकार के स्वर संचार क्रम स्वरावली कहलाते हैं। हिन्दुस्तानी संगीत में इसे पल्टे कहते हैं। साधारणतः इनकी संचार परधि मध्य षडज से लेकर तार षडज तक होती है।

अलंकारम्

अलंकार भी एक प्रकार की स्वरावली है, जहां सारी स्वरावलियां आदि ताल में ही बिठाई गयी हैं, वहां अलंकार विभिन्न तालों में बिठाये गये हैं। चूंके प्रधानतः सप्त ताल होते हैं, उनमें सात प्रमुख अलंकार भी बने हैं, जो सप्त ताल अलंकार कहलाते हैं।

स्वरजाति

किसी निश्चित राग और ताल में उस राग के उपयुक्त संचार तथा ताल की विभिन्न जातियों का सुन्दर समन्वय करके बनायी गयी एक कृति है। यह प्रधानतः भरतनाट्यम के लिए बनी है। भरतनाट्यम में पैरों का संचालन विभिन्न प्रकार से होता है, उसके लिए स्वर जातियां बहुत ही सहायक है। स्वर जातियों के भी तीन अंग होते हैं। पल्लवि (स्थाई) अनुपल्लवी (अन्तरा) तथा चरणम्। स्वर जाति का साहित्य (मातु बोध) अक्सर ईश्वर स्तुति सम्बन्धी या श्रृंगार सम्बन्धी या संगीत के आश्रयदाताओं की प्रशंसा सम्बन्धी होता है।

जातिस्वरम्

यह स्वर जाति से केवल इस बात में भिन्न होता है कि जहां स्वर जाति के धातु तथा मातु (स्वर तथा साहित्य) होती है। जाति स्वर के केवल धातु ही होती है, मातृ नहीं होती, इसे स्वरपल्लवी भी कहते हैं। स्वर जाति तो कभी-कभी संगीत कार्यक्रम में भी गाया जाता है। पर जाति स्वर तो नाट्य के लिए बना है।

गीतम्

स्वर साहित्य के साथ राग स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए रची गयी एक कृति है। गीत के पल्लवि, अनुपल्लवी, चरण आदि अंग नहीं होते। इसमें कठिन संचार 'संगीत' (राग स्वरूप प्रकट करने वाला, स्वरों का विशिष्ट संचार) वक्र संचार आदि नहीं पाये जाते।

प्रायः धातु (स्वर) बहुत ही आसान होती है। साहित्य में प्रधान तथा 'इय' 'ईय' वा 'तीय' 'एम' 'अम' 'रेरे' आदि शब्द दिखाई पड़ते हैं, जो मातृकापद कहलाते हैं।

प्रबंध

स्वर साहित्यों के साथ 'तकतिकि' आदि 'चोल्लुक्कटटु' (बोल या जाति) के चतुर सम्मिश्रण के साथ रची गयी एक कृति विशेष है।

वर्णम्

अभ्यास गान की कृतियों में यह प्रमुख है, इसमें राग भंव को पूर्णरूपेण व्यक्त करने वाले रंजक प्रयोग विशेष संचार आदि भरे होते हैं। वर्णम् के चार भेद होते हैं : -

1. चौक वर्णम्
2. पद वर्णम्
3. ध्वरूवर्णम्
4. तानवर्णम्

चौकवर्णम्

इसके पल्लवी, अनुपल्लवी, चरणम् (चरणम् का दूसरा नाम एल्लुक्कडै) है, चौक वर्णम् के सभी स्वरों के लिए साहित्य होता है।

पदवर्णम्

यह बनावट में लगभग चौकवर्णम् के समान ही है। पर इसमें स्वर साहित्य वाले चिट्टे स्वरों की प्रचुरता होती है, तिस पर इसके मध्य में राग आलापन के लिए गुंजाइश रहती है।

हैं।

घरूवर्णम्

इसमें स्वर साहित्य, जाति, राग, ताल, रस, आदि छः अंग पाये जाते हैं। पल्लवि, अनुपल्लवि तथा चरण के साथ-साथ, चिट्टेस्वरों के बीच में 'चोल्लुक्केट्टु' भी होते हैं, जिनकी भरमान होती हे, जैसे धनीधप - किमिकिट ... इसका साहित्य श्रृंगार रस प्रधान होता है।

जावलि

यह कृति साधारणतः मध्यकाल में गायी जाती है। इसका साहित्य भी श्रृंगार रस प्रधान ही होता है। यह नायिका या उसकी सखी के विचारों को प्रकट करने वाली होती है। इसमें भी पल्लवि, अनुपल्लवि चरण आदि अंग होते हैं। जावलियां साधारणतः मशहूर प्रचलित रागों में आसान तालों में ही रची गयी हैं।

तिल्लाना

चोल्लुक्केट्टु के रूप में ताल की विभिन्न गतियों को तथा पेचीदा स्वर संचारों को चमत्कारपूर्ण रीति से ग्रंथकार द्रुतकाल में गाया जाने वाली एक कृति विशेष है तिल्लाना। साधारणतया पल्लवि तथा अनुपल्लवी में चोल्लुक्कट्टु ही पाये जाते हैं। चरण में साहित्य तथा चोल्लुक्केट्टु आंशिक रूप में मिले होते हैं। श्री स्वाति, तिरूनाल, महाराजा, आदि लोगों ने तिल्लाना रचा है।

पृथ्वी का प्रत्येक अंग अपने में एक नवीनता तथा मौलिकता को ग्रहण किये हुए है। यह न्यूतनता भौगोलिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि है। भाषा का अन्तर आने से साहित्य तथा रीति रिवाज में भेद आ जाता है। और इस परिवर्तन से पता चलता है कि पृथ्वी पर होने वाले छोटे-छोटे परिवर्तन समय पाकर एक विशाल रूप ग्रहण कर लेते हैं। इस परिवर्तन का प्रभाव कला पर भी पड़ता है। कला परिवर्तन निम्नलिखित बातों से है। भौगोलिक वातावरण के ऊपर शब्द निर्भर हो जायेगें। पहाड़ी स्थान का संगीत प्राकृतिक वातावरण को लेकर बनेगा। जिस देश का जैसा इतिहास होगा, वैसा ही वहां की व्यक्तियों का स्वभाव होगा।

यह सभी वातावरण गायन शैलियों को जन्म देते हैं और इन्हीं शैलियों से घराने की उत्पत्ति होती है।

भारत वर्ष में सबसे पहले 712 ई0 में मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध पर आक्रमण किया। महमूद गजनबी ने ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में भारत पर 17 बार आक्रमण किया। विदेशी लोग भारत को सोने की चिड़िया के नाम से पुकारते थे। बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक मुसलमानों ने दिल्ली को अपना केन्द्र बनाकर इस्लाम धर्म प्रचार करना शुरू किया। पूरे देश में सूफी लोग छा गये, जिनका सम्बन्ध राजनीति से गुप्त रूप से रहता था। क्योंकि मुसलमान शासकों को इनसे सहायता प्राप्त होती थी। इन सूफियों द्वारा भी संगीत कला का विकास भी होता रहा, क्योंकि उनकी सेवा में अच्छे-अच्छे कौवाल उपस्थित रहते थे। मुगल साम्राज्य के विकास के साथ

हि सब कलाओं को राजाश्रय प्राप्त होता गया और नये नये ग्रन्थों की रचना हुयी। उत्तर भारत के बहुत से विद्वान एवं कलाकार अपने प्राणों की रक्षा के लिए दक्षिण भारत भागकर आये ताकि उनके ग्रन्थ एवं उनकी कला दुश्मनों के स्पर्श से दूषित हो जाये। दक्षिण भारत क्योंकि पहाड़ों, नदियों, मैदानों एवं समुद्रों से घिरा हुआ था अतः दुश्मनों के आक्रमण उधर नहीं हो पाये। काश्मीर के विद्वान पं0 शारंगदेव के पूर्वजों ने भी दक्षिण भारत में आकर शरण ली थी और यहीं आकर पं0 शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर ग्रन्थ की रचना की जो संगीत जगत के लिए आज अमूल्य देन है।

भारतीय संगीत का उत्तरी भारतीय संगीत और दक्षिणी भारतीय संगीत इन दो सम्प्रदायाओं में विभाजन का सूत्रपात इसी युग की महत्वपूर्ण घटना है। दक्षिण भारत क्योंकि विदेशियों से मुक्त रहा और वहां का संगीत विदेशी प्रभाव से मुक्त होकर निर्बाध रूप से विकास करता रहा।

उत्तरी भारतीय संगीत और दक्षिणी भारतीय संगीत में अनेक राग और गायन शैलियों के चलन तो एक से हैं, लेकिन उनके नाम अलग-अलग हैं और ऐसे ही कुछ के नाम तो एक हैं, लेकिन स्वरूप अलग-अलग हैं। पं0 भातखण्डे ने व्यंकटमुखी के 72 मेलों में 10 मेल चुनकर उन्हें थाट नाम दिया और उनका उत्तर भारत में जिन मुख्य दस रागों में साम्य था, उन्हें आश्रय राग मानकर थाटों का नामकरण किया। मेल या थाट पर्यायवाची शब्द हैं।

क्रमांक	हिन्दुस्तानी पद्धति के थाट राग नाम	कर्नाटक पद्धति के मेल व राग नाम
1.	कल्याण	मेच कल्याणी
2.	बिलावल	धीर शंकरा भरण
3.	खमाज	हरिकाम्बोजी
4.	पूर्वी	काम वर्धनी
5.	मारवा	गमन प्रिय
6.	भैरव	मायामालव गौणम्
7.	काफी	खरहर प्रिया
8.	आसावरी	नटभैरवी
9.	तोड़ी	शुभ पंतु वराली
10.	भैरवी	हनुमत तोड़ी

इसी प्रकार अनेक रागों के नाम तो बिल्कुल एक हैं, लेकिन स्वर स्वरूप बिल्कुल भिन्न हैं, जैसे हिन्डोल, सोहनी, श्री आदि राग दोनों ही पद्धतियों में समान हैं, लेकिन स्वर रूप की दृष्टि से सर्वथा भिन्न हैं।

उत्तर भारत का हिंडोल राग कल्याण थाट का है, जबकि दक्षिणी भारत का हिंडोल हनुमत तोड़ी जो उत्तर भारत के (भैरवी) में (थाट) का है, जो हमारे यहां मालकौंस राग से मिलता है। उत्तर भारत में सोहनी, मारवा थाट से उत्पन्न

से जन्य है।

उत्तर भारतीय संगीत में तोड़ी स्वयं एक जनक या थाट राग है। कर्नाटक संगीत में यह केवल जन्य राग है। कर्नाटक की तोड़ी उत्तर भारत की भैरवी है। उत्तर की भैरवी दक्षिण की हनुमत तोड़ी राग है।

इसी तरह कुछ राग नामों की दृष्टि से भिन्न है, किन्तु स्वर और चल की दृष्टि से सर्वथा समान है। उत्तर भारत का भूपाली, मालकौंस, दुर्गा, दक्षिण संगीत के क्रमशः मोहनम्, हिंदोलम् तथा शुद्ध सावेरी के समान है।

मुख्य अन्तर यही है कि दक्षिणी संगीत में राग प्रदर्शन के अन्तर्गत वादी, संवादी, जैसे स्वरों का कोई महत्व नहीं है, जबकि उत्तर भारतीय संगीत की प्रमुख विशेषता है। दोनों ही संगीत पद्धतियों के कुछ रागों के स्वरूप इस तरह से हैं:-

	कर्नाटक पद्धति	उत्तरी पद्धति
1.	हिंडोल	मालकौंस
	आरोह - सम गम ध नी सं	आरोह - नि स ग म ध नी सं
	अवरोह - सं नी ध म ग स	अवरोह- सं नी ध म ग म ग स
2.	मोहनम्	भूपाली
	आरोह - स रे ग प ध स	आरोह - स रे ग प ध स

उत्तरी और दक्षिणी भारतीय संगीत पद्धति के कुछ रागा एक ही नाम से प्रचलित हैं और इनका स्वरूप भी लगभग एक सा है।

1. आभोगी -

आरोह - स रे ग म ध सं

अवरोह - स ध म ग रे स

2. चारुकेशी -

आरोह - स रे ग म प ध नी सं

अवरोह - सं नी ध प म ग रे स

3. कीरवाणी

आरोह - स रे ग म प ध नी सं

अवरोह - सं नी ध प म ग रे स

4. नारायणी

आरोह - स रे म प ध सं

सं नी ध प म रे स

इसी तरह से ऐसे बहुत से राग हैं, जो कर्नाटक संगीत के हैं, जो उत्तर भारतीय राग में अपना लिये गये हैं।

दोनों पद्वतियों की पृथकता का एक कारण ताल गति भी है। हिन्दुस्तानी संगीत के अति विलम्बित आरम्भ में दक्षिण श्रोता की दिलचस्पी नहीं रही, जबकि कर्नाटक संगीत के आरम्भ द्रत लय के कारण दोनों में समान आधार नहीं मिलता। हिन्दुस्तानी संगीत में एक पंक्ति का साहित्य रहता है और उसी पर गायक को काफी समय तक राग विस्तार करना पड़ता है, यह बात बड़े और छोटे ख्याल दोनों पर लागू होते हैं।

हिन्दुस्तानी संगीत में संगतिकार को विशेष परिस्थिति को छोड़कर एकाकी प्रदर्शन का कम अवसर मिलता है, जबकि दक्षिण में संगतिकार को कला प्रदर्शन का काफी अवसर मिलता है।

व्यावाहारिक पहलू में इस स्पष्ट विलगाव के कारण स्थानीय आदतें तथा प्रणालियां हैं, जिनके कारण क्षेत्र से क्षेत्र अलग प्रतिभासित होता है और अन्य कारण उत्तर और दक्षिण प्रान्त की भाषाएं भी हैं, क्योंकि इनमें कोई समानता नहीं है।

उत्तर भारत के संगीतज्ञ कर्नाटक संगीत कार्यक्रम को पूर्णतः अरूचिकर मानते हैं और दक्षिणी संगीतज्ञ हिन्दुस्तानी संगीत की धीमी गति को सहन नहीं कर सकते। बड़ी ही अजीब बात है कि दोनों एक ही भण्डार से निःसृत होते हुए तथा समान सिद्धान्त की स्वीकृति और अनेक बातें समान होते हुए भी प्रस्तुतीकरण में दोनों प्रणालियों में ऐसी खायी है, जो हटायी नहीं जा सकती।

उपसंहार

प्रस्तुत प्रबन्ध में राग संगीत की उत्पत्ति एवं उसके एतिहासिक विकास की विस्तृत व्याख्या की गयी है। यदि पूरे प्रबन्ध का पुर्न विवेचन किया जाये तो कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने आते हैं।

प्रथम अध्याय में राग संगीत का अर्थ और उसकी व्याख्या ऐतिहासिक पारिप्रेक्ष्य में विभिन्न ग्रंथकारों के ग्रन्थों के आधार पर उनकी विचारधाराओं का समन्वयक किया गया है। राग संगीत का अर्थ और उसका निर्धारण और उसमें अन्तरनिहित सूक्ष्म विशेषताओं का विवेचन विभिन्न परिभाषाओं को प्रस्तुत करते हुए स्वमत से राग संगीत का अर्थ की परिभाषा को थोड़ा विस्तृत किया गया है।

द्वितीय अध्याय में राग शब्द की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न ग्रन्थकारों की विचारधंराओं का समन्वय किया गया है। राग की विभिन्न पारिभाषाओं को प्रस्तुत करते हुए राग की परिभाषा को थोड़ा विस्तृत किया गया है। जिससे राग की व्याख्या तथा राग में प्रयुक्त होने वाले लक्षणों का ज्ञान होता है।

प्राचीन ग्रन्थकारों की राग की बदली हुई परिभाषा का रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है।

योऽयं ध्वनि विशेषस्तु स्वर वर्णा विभूषितः

तथा च जाति नाश ग्रहांशादि दश (त्रयोदश)

लक्षणैः लक्षितः

रञ्जको जन चित्तानां स च. राग उदाहृतः।

राग परिभाषा में इस द्वितीय पंक्ति के उल्लेख से राग की उत्पत्ति की जाती से तथा जाति ग्रहाशदि लक्षण का राग में विद्यमान होना स्वयं सिद्ध होता है।

द्वितीय अध्याय में राग संगीत की उत्पत्ति एवं क्रमिक विकास प्राचीन, मध्य और आधुनिक काल में राग संगीत के प्रचार के विषय में भिन्न-भिन्न मतों का खंडन करते हुए राग संगीत की पारिभाषिक रूप में प्रचार चौथी, पांचवीं शताब्दी में हुए 'कश्यप' नामक ग्रन्थकार के समय से हुआ है, यह सिद्ध किया गया है।

राग संगीत का ऐतिहासिक विकास कश्यप से लेकर आधुनिक काल के पंडित भातखण्डे जी के समय तक किया गया है। परिभाषिक रूप में राग प्रचार में आने से पूर्व जिन ग्रन्थों से राग का उल्लेख होता है, उनका विवेचन प्रस्तुत किया है। राग विस्तार के लिए जिन तत्वों का वैदिक काल से उल्लेख होता है, उनको प्रस्तुत करने का हर संभव प्रयास किया गया है।

राग अभिव्यक्ति की स्वरदेह एवं भावदेह बनाने वाले आवश्यक तत्वों पर जोर दिया गया है।

हृदय के भावों को स्वरों द्वारा मूर्तरूप देना और तदनुरूप रसानुभूति का आस्वादन करना और कराना यही राग का मूल उद्देश्य है।

राग संगीत का विस्तार जिन तत्वों से होता है, उनका तथा रागों का सम्बन्ध तृतीय अध्याय में वर्णित है।

राग परिवार अत्यन्त विशाल एवं समृद्ध है। अतः उनके वर्गीकरण हेतु प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक समय में प्रचलित विभिन्न वर्गीकरण की पद्धतियों का वर्णन किया गया है। साथ ही यह दर्शाने का प्रयत्न किया गया है कि वर्गीकरण की मेल राग पद्धति तथा राग रागिनी पद्धति के बीज वृहद्देशी में अन्तर्निहित है।

राग तथा रंजकता का सम्बन्ध अभिन्न है। अतः राग तथा रस की दृष्टि में रखकर राग रस की चर्चा की गयी है। छठें अध्याय में राग तथा उसके गायन समय में सम्बन्ध बताया है।

राग परम्परा प्राचीन एवं अत्यन्त समृद्ध है, जनरूचि के अनुसार इसमें समय-समय पर परिवर्तन हुए हैं, प्राचीन काल में राग गायन में ध्रुवा आदि का तथा

प्राचीन गीतों का प्रयोग पश्चात प्रबन्धं गायन, मध्यकाल में ध्रुपद तथा उसके पश्चात् ख्याल गायन की अन्य शैलियों जैसे ठुमरी, चतुरंग, सादरा आदि का क्रमशः विकास हुआ।

राग की इसी प्राचीन परम्परा का प्रचलन आज की हिन्दुस्तान संगीत की विजय वैजयन्ती को सर्वत्र फहरा रहा है।

लोकरूचि सर्वथा भिन्न है, जो सदैव परिवर्तन चाहती है। रागों के नामों तथा रूपों में परिवर्तन का कारण लोकरूचि कहा जा सकता है। प्रबन्ध में उल्लेखित राग नामों से ज्ञात होता है कि मतंग के समय में प्रचलित रागों में शारंगदेव के समय तक आते-आते कई रागों का समावेश हो गया था तथा कुछ रागों का लोप भी हो गया।

इसी प्रकार का परिवर्तन कुम्भ के परवर्तीकाल में भी हुआ जो निरंतर होता आ रहा है और जो हमेशा होता रहेगा। इसी प्रकार के परिवर्तन को हम आधुनिक प्रचलित राग मारू विहाग तथा शुद्ध सारंग में देख सकते हैं। इन दोनों ही रागों में दोनों मध्यम तीव्र एवं शुद्धम दोनों मध्यमों का प्रयोग एक साथ करने लगे हैं।

जैसे शुद्ध सारंग नीसरेमेंऽमेरे तथा मारू विहाग में सम, मग मैप इसी प्रकार राग जोग में दोनों गन्धारों का प्रयोग सगमग गऽस इस प्रकार होने लगा है।

जिनका कारण लोकरुचि ही कहा जा सकता है।

राग संगीत में देवताओं की परिकल्पना और उनका ध्यान को भी प्रस्तुत प्रबन्ध में वर्णित किया गया है। रागों के देवता उसी मनोभावों का प्रतीक है, जिसमें राग की अभिव्यक्ति मूर्तिमान हो उठती है। राग में लगने वाले स्वर नादमयी शरीर की आत्मा है और वही देवमयी स्वरूप है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में देवताओं की परिकल्पना का तात्पर्य यह है कि राग की प्रवृत्ति या उसके देवमय रूप क्षेत्र को इस तरह समाहित किया जाये कि वो नादमयी रूप में उभर आये।

इस प्रक्रिया का मूल प्रयोजन राग की अलौकिक आनन्दवर्धन शक्ति से उसे संजीवकर राग की नादमयी एवं देवमयी दोनों स्वरूपों को स्वीकार किया है।

चित्रकला के माध्यम से राग रागिनियों के रेखाओं और तूलिकाओं के सहारे राग रागिनियों की आत्मा को प्रतिष्ठित किया गया है। राग चित्रों से रागों के द्वारा उस समय की सांस्कृतिक वेशभूषा तथा आचार व्यवहार का आभास मिलता है।

रागों के शास्त्रीय स्वरूप को तालबद्ध कर नृत्य एवं तोड़ों के रूप में उनकी अवतारणा प्रबन्ध में प्रस्तुत किया गया है। राग रागिनियों के शास्त्रीय स्वरूप को लय एवं तालबद्ध कर नृत्य के तोड़ों के रूप में ढाल दिया गया है।

शारंगदेव के रागों में भैरव, वराटी, गुर्जरी, बसन्त, देशी, भैरवी, छायानट्टा मल्लार आदि का निर्देश है। ये राग हमारी आज की संगीत पद्धति में भी प्रचलित है, परन्तु इन प्राचीन तथा प्रचलित रागों के रूपों में अन्तर है। यह हम पहले भी देख चुके हैं, किन्तु प्राचीन राग के नामों के कुछ रूपांतर वर्तमान में प्रचलित है। जैसे कर्नाटक को कान्हड़ा, मालव कौशिक को मालकौंस बेलावती को विलावल आदि इन्हें केवल नाम के साम्य की दृष्टि से देखा जा सकता है।

राग संगीत के इतिहास में समय-समय पर नये रागों का निर्माण होता रहा है। मानव मस्तिष्क क्रियाशील है, तथा वह जीवन में सदैव नवीनता का अनुभव प्राप्त करना चाहता है। आधुनिक कलाकार पं0 अमजद अली खां, पं0 रविशंकर ने कई रागों का निर्माण कर उन्हें प्रचलित किये जिनमें राग प्रियदर्शनी, सिंहेद्र विक्रम, मलय मारूतम् आदि का नाम उल्लेखनीय है।

ऐसे ही रागों के निर्माण में पण्डित अमीर खां का द्वारा निर्मित जन सम्मोहनी कहा जाता है।

रागों की सुन्दरता या रंजकता को ध्यान में रखते हुए प्रचलित हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में दक्षिण के रागों का समावेश करके उन्हें हिन्दुस्तानी संगीत में प्रचलित किया गया है। ऐसे ही कुछ रागों को पंडित भातखण्डे जी ने क्रमिक प्रात्तक-मालिका

में प्रस्तुत किया गया है, जिनमें आभोगी, हंसध्वनि आदि उल्लेखनीय है। इसी प्रकार के अन्य रागों में चारूकेशी, वियोगवराली को अभिनव गीत मंजरी में वर्णित किया गया है, जो आज हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में भी प्रचलित है।

संकेत सूची

1. ना0शा0 — नाट्य शास्त्र
2. ना0शि0 — नारदीय शिक्षा
3. नान्य0 — नान्यदेव
4. भ0भा0 — भरत भाष्यम्
5. भ0को0 — भरत कोश
6. रा0वि0 — राग विबोध
7. नि0सं0 — निबन्ध संग्रह
8. रस0कौ0 — रस कौमुदी
9. रा0तरंगिनी — राग तरंगिनी
10. रस0द0 — राग दर्पण
11. भा0सं0शास्त्र — भातखण्डे संगीत शास्त्र
12. अ0न0 गीतांजली — अभिनव गीतांजलि
13. भा0क्र0पु0मा0 — भातखण्डे क्रमिक पुस्तक मालिका
14. शारं0 — शारंगदेव
15. सं0र0 — संगीत रत्नाकर
16. सं0स0सार — संगीत समयसार
17. कल्लि0 — कल्लिनाथ
18. अभि0शाकुं0 — अभिज्ञान शांकुतलम्

19.	अ०सं०र०	अनूप संगीत रत्नाकर
20.	बृ०दे०	बृहद्देशी
21.	सं०द०	संगीत दर्पण
22.	सं०म०	संगीत मकरंद
23.	रा०मा०	राग माला
24.	सं०प०तुल०अध्य०	संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन
25.	सं०पा०	संगीत पारिजात
26.	सं०चू०	संगीत चूड़ामणि
26.	सु०	सुधा कलश
28.	गी०गो०	गीत गोविन्द
29.	कर्ना०सं०अं०	कर्नाटक संगीत अंक
30.	म०ति०ग्रं०ग्रन्थ०	मतिराम ग्रन्थावली
31.	सं०द०ह०व०	संगीत दर्पण हरि वल्लभ
32.	रा०रत्न०	राग रत्नाकर

xxx